।। श्रीः ।।

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

१३४

महाकविशक्तिभद्रविरचितः

आश्चर्य-चूडामणिः

मा' 'मालती' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतः

व्याख्याकारः—

श्री पं० रमाकान्त झा एम० ए०

(व्याकरण-वेदान्त-साहित्याचार्यः)

प्राध्यापक : आर्य महिला डिग्री कालेज, वाराणसी

खम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

१९६६

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, संवत् २०२२ वि०

मूल्य : ४-५०

Phone : 3076

प्रधान कार्यालय:—

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

गोपाल मन्दिर लेन,

पो० आ० चौखम्बा, पोस्ट बाक्स नं० ८, वाराणसी-१

THE

VIDYABHAWAN SANSKRIT GRANTHAMALA

134

ĀS'CHARYA CHŪḌĀMAṆI

OF

MAHĀKAVI S'AKTI BHADRA

Edited with

The 'Ramā' and 'Mālatī' Sanskrit and Hindi Commentaries

By

Pt. Ramā Kānt Jhā M. A.

Vyākaran-Vedānta-Sahityāchārya, Lecturer : Sanskrit Department,

Arya Mahila Degree College, Varanasi.

THE

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

VARANASI-1

1966

First Edition
1966
Price : 4–50

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers & Antiquarian Book-Sellers
P. O. Chowkhamba, Post Box 8, Varanasi–1 (India)
Phone : 3145

परमपूज्य पिताजी

के

करकमलों

में

सभक्ति

समर्पित

●

विनीत

रमाकान्त

निवेदन

महाकवि शक्तिभद्र विरचित 'आश्चर्यचूडामणि' नामक नाटक रामचरित पर लिखे गये दृश्यकाव्यों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। नाटक की प्रस्तावना से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस नाटक से पूर्व दक्षिण भारत में नाट्यात्मक काव्य-रचना का अभाव सा था। इसी नाटकरत्न की पहली किरण-रेखा ने कुलशेखर प्रभृति अन्य परवर्ती नाटककारों के माध्यम से दक्षिण भारत के नाटकीय रङ्गमञ्च को उद्भासित किया है। प्रस्तुत नाटक के नवीन सम्पादक एस. कुप्पू स्वामी ने अपनी भूमिका में रामचरित पर आधारित दृश्यकाव्य में उत्तररामचरित के बाद इसे ही सर्वाधिक समादर दिया है।

प्रस्तुत नाटक के सम्पादन का सौभाग्य चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी के अध्यक्ष महोदय के अनुरोध के फलस्वरूप प्राप्त हुआ। इस नाटक की संस्कृत-हिन्दी टीका के सम्बन्ध में अध्यक्ष महोदय के कुछ आवश्यक निर्देश थे अतः टीका करते समय उनका ध्यान रखना पड़ा है। संस्कृत-टीका को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करते हुए मूलग्रन्थ से असम्बन्धित विषयों का सन्निवेश न कर पद्यभाग की सुबोध व्याख्या अन्वयमुख से ही की गई है।

अर्थ की स्पष्टता के लिए भावार्थ-योजना का विधान आवश्यक समझ कर किया गया है। साथ ही अलङ्कारों तथा छन्दों का निर्देश भी

यथास्थान किया गया है। हाँ, गद्य भाग में व्याख्यायोग्य अंश ही टीका की विषयकोटि में आने का अवसर पा सके हैं।

हिन्दी-टीका के सम्बन्ध में वर्तमान लोकरुचि के अनुसार यह आवश्यक था कि उसका स्वरूप व्याख्यात्मक हो, किन्तु अनुवाद और व्याख्या में स्पष्ट भेद है, अनुवाद में व्याख्या का सन्निवेश संभव नहीं, इसीलिए इसमें मध्यममार्ग का सहारा लिया गया है। मूलग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद करके अपेक्षित व्याख्या के लिये 'विमर्श' शीर्षक की पृथक् योजना कर ग्रन्थ के स्वारस्य को अभिव्यक्त किया गया है। प्रस्तुत टीकाद्वय में पाण्डित्यप्रदर्शन की अपेक्षा कोमलमति छात्र-समुदाय के हित तथा सुविधा का विशेष ध्यान रखा गया है। भूमिका के लिए अपेक्षित पर्याप्त सामग्री के अभाव में स्वतन्त्रविचारशक्ति का आश्रय लिया गया है। यह विचार-सरणि कहाँ तक शास्त्रीय है, इसका निर्णय तो सुविज्ञ सहृदय ही कर सकते हैं। फिर भी जिन मनीषियों की विचार-सम्पत्ति का संकेत मिल सका है उनके प्रति कृतज्ञ और श्रद्धावनत होना कर्तव्य है।

मैं सर्वप्रथम अपने पूज्यपाद गुरुदेव पं० रामदेवझा जी (न्यायव्याकरणाचार्य) भूतपूर्व प्रधानाचार्य, सं० महाविद्यालय, पातेपुर (मुजफ्फरपुर) के चरणों में नतमस्तक हूँ, जिनके संशोधन और आवश्यक निर्देश से संस्कृत-टीका पाठकों के समक्ष आने में समर्थ हो सकी है। टीका की पाण्डुलिपि तैयार करने में अपने सहायक तथा परममित्र पण्डित विद्यानाथ मिश्र 'न्याय-व्याकरण-साहित्याचार्य' को इस प्रसंग में भूलना स्वयं को भूल जाना है।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ तथा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी के अध्यक्ष महोदय के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने इससे पूर्व मेरे द्वारा सम्पादित 'कादम्बरी शुकनासोपदेश' तथा 'अभिलेखमाला' को प्रकाशित कर प्रस्तुत नाटक के सम्पादन का अनुरोध कर मेरे उत्साह को बढ़ाया है। अन्त में साहित्यिक कार्यप्रसंग में मेरी लेखनी को निरन्तर सक्रिय रखने में प्रेरक अपने अभिन्नहृदय डॉ० गंगा सागर राय एम० ए० पी० एच० डी० का शब्दतः नहीं, हृदय से आभारी हूँ।

मैं इस विश्वास के साथ अपने वक्तव्य से विराम ले रहा हूँ कि सुधीजन नीर-क्षीरविवेकन्याय से नाटक के प्रस्तुत विवेचन की हेयोपादेयता का निष्पक्ष निर्देश कर अनुगृहीत करेंगे। शुभमस्तु।

होली
वि० सं० २०२२

निवेदकः—
रमाकान्त झा

भूमिका

नाटककार–शक्तिभद्र

परिचय—संस्कृत-साहित्य के अन्य कालिदासप्रभृति मूर्धन्य कवियों की भाँति 'शक्तिभद्र' भी अपने जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में मौन ही हैं। केवल प्रस्तावना में उनके दाक्षिणात्य होने की चर्चा है। इस नाटक के रचयिता शक्तिभद्र दक्षिण-भारत के केरल प्रदेश के निवासी थे। "आर्ये। दक्षिणापथादागतमाश्चर्यचूड़ामणिं नाम नाटकमभिनयाम्रेडितसौभाग्यमभिलषाम इत्यार्यमिश्राणां शासनम्"। प्रस्तावना के उपर्युक्त अंश से यह ज्ञात होता है कि दक्षिण-देश का यह सर्वप्रथम नाटक था। दक्षिण-देश में नाट्य-प्रबन्ध की संभावना के विषय में सूत्रधार और नटी की पारस्परिक बातचीत से यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि उस समय तक यही नाटक प्रसिद्ध था। प्रस्तावना में ही पुनः "उन्मादवासवदत्ताप्रभृतीनां काव्यानां कर्तुः कवेः शक्तिभद्रस्येदं प्रज्ञाविलसितम्"। इस कथन के द्वारा प्रस्तुत नाटक के अतिरिक्त 'उन्माद-वासवदत्ता प्रभृति अन्य काव्य-ग्रन्थों का शक्तिभद्र की रचना के रूप में संकेत मिलता है। इस प्रकार प्रस्तुत कृति की प्रस्तावना के आधार पर शक्तिभद्र को उस समय के दक्षिण-भारत का श्रेष्ठ कवि माना जा सकता है।

प्रस्तावना के प्रसंग से शक्तिभद्र को कुलशेखर से पूर्ववर्ती माना जा सकता है। कुलशेखर केरल के राजा थे। उन्होंने केरल के नाट्य-रङ्गमञ्च में आवश्यक और उचित सुधार करके उसे संस्कृत-नाटकों के अभिनय योग्य बनाया था। कुलशेखर ने 'तपतीसंवरण' तथा 'सुभद्राधनञ्जय' नामक दो नाटक तथा 'आश्चर्यमञ्जरी' नामक एक कथा की रचना की थी। इन्हीं के समय में 'क्रमदीपिका' तथा 'अट्ट-प्रकार' नामक दो पुस्तकों की रचना हुई थी। 'अट्टप्रकार' में शक्तिभद्र तथा उनके द्वारा रचित 'आश्चर्यचूड़ामणि' का स्पष्ट उल्लेख है। इस प्रमाण के साक्ष्य पर यह सिद्ध होता है कि शक्तिभद्र कुलशेखर के पूर्ववर्ती थे और इनके बाद दक्षिण-भारत में संस्कृत-नाटकों के प्रणयन की परम्परा आगे बढ़ी।

शक्तिभद्र के कालनिर्धारण के सम्बन्ध में यद्यपि विद्वानों में मतैक्य नहीं है, फिर भी अन्तर्बाह्य उपलब्ध प्रमाण के आधार पर किसी एक समय का निर्णय किया जा सकता है।

एक किम्वदन्ती के आधार पर यह कहा जाता है कि शक्तिभद्र, अद्वैतवेदान्त के प्रतिष्ठापक जगद्गुरु शंकराचार्य के शिष्य थे और इन्होंने अपने इस नाटकरत्न को उन्हें सुनाया था। कहा जाता है कि यह नाटक एक बार आग में जल कर नष्ट हो गया था किन्तु शंकराचार्य ने अपनी तीव्र स्मरण-शक्ति से इसे लिखवाकर पुनः जीवित किया था। कुलशेखर के समय में विरचित 'अट्टप्रकार' में उल्लिखित शक्तिभद्र और उनकी कृति 'आश्चर्य चूडामणि' की चर्चा तथा शंकराचार्य की शिष्यविषयक किम्वदन्ती के आधार पर इनका समय शंकराचार्य तथा कुलशेखर के बीच में होने से नवम शती माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त नाटक के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शक्तिभद्र भास, कालिदास और भवभूति के परवर्ती कवि हैं, क्योंकि इनके नाटक में पूर्वोक्त नाटककारों की रचनाशैली तथा कथावस्तु-विन्यास की अनुकृति बहुतायत से की गयी है। नाटकीय संविधान के पर्यालोचन से यह ज्ञात होता है कि नाटककार शक्तिभद्र महाकवि भवभूति से पूर्ण परिचित हैं।

अतः भवभूति से परवर्ती, शंकराचार्य के समकालीन तथा कुलशेखर के पूर्ववर्ती होने के कारण इनका समय नवम शती मानने में कोई विशेष बाधा नजर नहीं आती।

पात्रालोचन

संस्कृत-नाटकों की रचना का मुख्य उद्देश्य रसाभिव्यक्ति है। नाटक के माध्यम से रसाभिव्यक्ति में चरित्र-चित्रण का ही अत्यधिक महत्त्व होता है। इसी दृष्टि से नाटककार अपने पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य का इस प्रकार नियोजन करता है कि उसका साक्षात् प्रभाव दर्शकों के हृदय पर पड़े बिना नहीं रह सकता। वाल्मीकि-रामायण के आधार पर रामकथा के माध्यम से शक्तिभद्र ने भारतीय आदर्श पुरुष-चरित के प्रतीक राम और आदर्श नारी-चरित की प्रतिनिधिभूता सीता के सुन्दर चरित्र का उत्तम रीति से चित्रण किया है। नाटककार को मानव-स्वभाव के अन्तर्बाह्य पक्ष को समुद्घाटित करने का सुन्दर अवसर मिला है। घटनाचक्र की तीव्रता के साथ ही पात्रों के मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन बड़ा ही दक्षतापूर्वक कराया गया है।

अब उपर्युक्त कथन की पुष्टि में हम नाटककार के प्रधान पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य का संक्षिप्त परीक्षण प्रस्तुत कर रहे हैं।

राम—'आश्चर्य चूडामणि' नाटक के नायक राम हैं। ये धीरोदात्त प्रकृति के दिव्यादिव्य नायक हैं। धीरोदात्त प्रकृति का नायक प्रायः राजा अथवा देवता

होता है। धीरोदात्त प्रकृति का नायक निरभिमानी, अत्यन्त गम्भीर, स्थिर और अविकत्थन होता है। यथा—

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ॥

धीरोदात्त नायक नायक के सम्पूर्ण आदर्शों से युक्त होता है। प्रस्तुत नाटक के प्रधान पात्र राम में धीरोदात्त प्रकृति के उपरोक्त सभी गुण विद्यमान हैं। पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर पत्नी सीता और लघुभ्राता लक्ष्मण के साथ राम वनवास की अवधि पूरी करने पंचवटी आये हुये हैं। इनका सर्वप्रथम दर्शन नाटक के प्रथम-अङ्क में गोदावरी-तट पर लक्ष्मण द्वारा निर्मित पर्णशाला में होता है। राम आनन्दमूर्ति हैं अतएव जंगल में भी मङ्गल की अनुभूति करते हैं। प्रकृति देवी की सुरम्य गोद में राजमहल के सुख का अनुभव करते हैं :—

देवि ! नगराधिवासात् सविशेष इव वनाधिवासो मे प्रतिभाति पश्य—

उद्यानं वनभूमयः कुसुमितैरुद्गन्धयः पादपैः
शैला निर्झरहासिनो जलधरश्यामा गिरिः कृत्रिमः ।
नद्यः सारसमूर्च्छितोर्मिवलया धर्माभिषेकास्पदं
शीताः शीकरसङ्गमात् सुरभयो मित्रं सरोजानिलाः ॥—१।१२

उदारचेता—हृदय उनका इतना विशाल है कि कैकेयी के अपकार को भी उपकारकोटि में ही मानते हैं। राम शालीनता की प्रतिमूर्ति हैं अतएव कैकेयी के द्वारा प्रदत्त वनवास को आत्मसंस्कार की साधना-भूमि मानकर माता कैकेयी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर आस्थापूर्ण सम्मान-भावना का मनोरम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं :—

मार्गे निर्वृतिमार्गमार्गणपरानाराधयन्तो मुनीन्
स्वैरं सेविततीर्थसिन्धुपयसो दूरं निरस्ताधयः ।
मात्रा लक्ष्मण ! केकयेन्द्रसुतया व्याजेन नीता वयं
स्वामुत्सृज्य धुरं भुवो मुनिवनं यातव्यमिक्ष्वाकुभिः ॥—१।१४

लक्ष्मण के द्वारा माता कैकेयी के प्रति उपालम्भ-वचनों से खिन्न होकर राम कैकेयी के विषय में लक्ष्मण के सभी आक्षेपों का खण्डन करके उन्हें मातृभक्त होने का उपदेश देते हैं। यह है राम-चरित के लोकोत्तर वैशिष्ट्यका उदाहरण जो अन्यत्र संभव नहीं।

एकपत्नीव्रत के अनन्य पुजारी राम के हृदय में स्त्रीमात्र के प्रति पूर्ण सम्मान की भावना है अतएव वे सुन्दरी शूर्पणखा के प्रणय-निवेदन को नम्रतापूर्वक अस्वीकार करते हैं—भद्रे। तवाऽयं व्यवसायः मयापि प्रार्थनीयः। किन्तु—

साक्षात्कृत्य समित्समिद्धमनलं यस्या गुरोराज्ञया
हस्तं दत्तमजात्मजेन मुनिना धर्मार्थमालम्बिपि।
साप्येपा प्रदमक्षरं जिगमिपोर्बन्धाय मे कल्पते
सन्नाहोऽयमतः परं सुवदने! चिन्त्यस्त्वया चिन्त्यताम्।—२।२

शरणागत उनका अपराधी ही क्यों न हो, उसे अभयदान देते हैं। शूर्पणखा अपकार करके भी राम के शरणागत हो उनसे अभयदान पाती है। इस प्रकार का संयत मनोभाव राम में ही संभव है। किन्तु धृष्टता करने पर अपराधी को दण्ड भी देने के पक्षपाती हैं। धृष्ट अपराधी को दण्ड देना वे लोक मर्यादा के अनुकूल मानते हैं—

मुनयो न वयं कृतागसि त्यज संरम्भमिदं धृतं धनुः।
करुणाविमुखाः शिलीमुखाः सततं राक्षसि! राक्षसेपु नः॥—२।९

नितान्त अभिमानिनी शूर्पणखा के नाक-कान काटने के लक्ष्मण के कार्य का समर्थन भी करते हैं :—'लक्ष्मण! युक्तं कृतम् त्वया। ननु वधस्थाने स्त्रीणामेष एव दण्डः।'

राम विलक्षण उत्साही, उत्तमकोटि के साहसी और उन्नत अग्रसोची भी हैं अतएव शूर्पणखा के कर्णनासिकच्छेदनरूप अपमान से भावी राक्षसयुद्ध की कल्पना करके भी अविचल भाव से राक्षसों के साथ इस शत्रुता को संसार कल्याण का कारण मान लेते हैं :—

त्रिभुवनरिपुरस्या रावणः पूर्वजश्चे-
दसुलभ इति नूनं विश्रमः कार्मुकस्य।
रजनिचरनिबद्धं प्रायशो वैरमेतद्
भवतु भुवनभूत्यै सर्वरक्षोवधेन॥—२।१९

इनके साहस का चरम निदर्शन सीताहरण के बाद देखने को मिलता है। वे सीता के लिये साधारण जन की भाँति रोना विलखना छोड़कर उनके उद्धार का दृढ़ संकल्प करते हैं और अपने निश्चय का संदेश शूर्पणखा के द्वारा रावण के पास निर्भीकिता पूर्वक भेजते हैं :—

नयनविषये मायासीतां विदर्श्य विलोभनं
मम धृतवता मिथ्यारूपं विधाय च लक्ष्मणम्।
त्वरितगतिना सद्यः सीता त्वया न तु वञ्चिता
नियतविधवाचारा दाराश्चिरं तव वञ्चिताः॥—३।४०

राम बड़े ही उदार हृदय, विलासिता के परित्यागी और लोकमर्यादा के रक्षक

हैं। राक्षसकुल-विनाश के बाद लङ्का का राज्य विभीषण को देकर परम शान्ति का अनुभव करते हैं।

उपर्युक्त लोकोत्तर चारित्रिक विशिष्टता के साथ ही राम में कुछ मानव-सुलभ कमजोरियाँ भी हैं। तृतीय अङ्क में मायामृग का प्रसंग उनके चरित्र को लोकोत्तर पुरुष के चरित्र की अपेक्षा मानव-चरित के सामान्य धरातल पर ले आता है। वे नीतिज्ञ होकर भी सीता के वचन को प्रमाण मानकर सुवर्णमृग का अनुसरण करते हैं। बाद में धोखा खाकर अपनी गलती के लिये पश्चात्ताप भी करते नजर आते हैं :—

कनकहरिणः क्वेयं भूमिः क्व चेत्यविचारयन्
अपि निशितधी रामो रामावचः प्रतिपन्नवान्।
इति कृतधियामासं हास्यः कृतं कृतचिन्तया
प्रभवति कुतोऽनर्थः प्रज्ञा न चेदपथोन्मुखी ॥—३।४२

अपने स्वभाव के भोलेपन के कारण राम राक्षसीमाया का शिकार तो होते हैं किन्तु पुनः उत्साहभाव से रावण को रणनिमन्त्रण देकर उसका परिमार्जन भी कर लेते हैं। उसके बाद हमें उनका दर्शन नाटक के अन्तिम अङ्क में होता है जहाँ वे रावण को विनष्ट कर सीता की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उस समय रावण-द्वारा अपहृत तथा उसकी नगरी में निवास करने के कारण सीता की चारित्रिक-शुद्धता के सम्बन्ध में लोकमत के विषय में उन्हें अन्तर्द्वन्द्व होता है। सीता के आने पर उनका आभूषणमण्डिता सा प्रतीत होना उनके चरित्र के सम्बन्ध में राम के सन्देह का कारण हो जाता है। फलतः वे अपने स्वरूप के प्रतिकूल होकर सीता को खरी-खोटी भी सुना जाते हैं।

राम के संस्कृत-स्वभाव और मर्यादित दाम्पत्य-जीवन के अनुकूल उनका सीता के प्रति व्यवहार अप्रिय सा लगता है किन्तु लोकमर्यादा की रक्षा के लिये उन्हें ऐसा करना पड़ता है, इससे राम की स्थिरबुद्धि का भी परिचय मिलता है।

विचार करने पर वह प्रसंग राम को आदर्शपति के स्थान पर आदर्श प्रजा-पालक अथवा लोकभीरु राजा बना देता है। देवर्षि नारद के रहस्योद्घाटन से राम का सन्देह दूर होता है और वे पुनः अपनी इस भूल के लिये सीता से क्षमा-याचना भी करते हैं जिससे उनका लोकपक्ष भी सुखदायक हो जाता है।

इस नाटक के चित्रपट पर राम का यही चरित उभर सका है जो मानव जीवन के लिये सर्वथा अभिनन्दनीय-अनुकरणीय है।

सीता—प्रस्तुत नाटक की स्वकीया नायिका हैं जो आदि शक्ति लक्ष्मी हैं। नाटक के अन्तिम अङ्क में नेपथ्य से दिव्यगन्धर्वों ने 'स त्वं विष्णुर्जनकतनया सा पद्माक्ष ! पद्मा' इस कथन के द्वारा सीता को लक्ष्मी का साक्षात् स्वरूप कहकर उनकी प्रशंसा की है। वे पृथ्वी से उत्पन्न राजर्षि जनक की पुत्री तथा श्रीराम की धर्मपत्नी हैं।

सीता एकमात्र राम में ही सर्वथा सर्वात्मना अनुरक्ता हैं—'स्वामिन्यनुरक्ता सर्वाया'। आदर्श पत्नी के रूप में पति के सुख और दुःख दोनों में कदम से कदम मिलाकर चलने वाली स्थिरबुद्धि की कमनीय रमणी हैं। जंगल में भी राम के साथ राजमहल के सुख का अनुभव करती हैं—आर्यपुत्र ! यावदहं जीवामि तावदत्रैव वस्तुं मे बुद्धिः यदि तथा न क्राम्यति साकेते गुरुजनः" ।

सीता पतिपरायणा धर्मपत्नी होने के साथ ही उदार तथा कोमलहृदया भी हैं। नारी-हृदय की विवशता के साथ सहानुभूति रखती है। लक्ष्मण के द्वारा शूर्पणखा-प्रत्याख्यान की संभावना कर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करती हुई भावावेश में कह उठती हैं—"हा, कुमारेण प्रत्याख्याते का पुनरस्या गतिः" ।

सीता सहृदयता की प्रतिमूर्ति हैं अतएव राम के द्वारा शूर्पणखा के तिरस्कृत होने पर वे हार्दिक दुःख का अनुभव करती हैं—"आर्यपुत्र ! ननु तपस्विनीं बालिका प्रत्यादिशता आर्यपुत्रेण अयं तावज्जनः उत्कण्ठाभाजनं कृतः" । वे अपने ही समान सबको सुखी देखना चाहती हैं। राम के प्रति अनुरक्ता शूर्पणखा में वे सौतभाव को प्रश्रय न देकर उसके प्रेम के औचित्य का समर्थन करती हैं—"एषा खलु तपस्विनी आर्यपुत्रमधिकृत्योत्पन्नेन स्नेहेन आत्मनो गुणपक्षपातं विभावयति" ! यही है राम के प्रति उनके अनन्य अलौकिक-प्रेम का उदाहरण और विश्वकल्याण के प्रति उदार दृष्टि-कोण का सुन्दर निदर्शन। इसके साथ ही सीता में नारीसुलभ भीति भी परिलक्षित होती है अतएव शूर्पणखा के राक्षसी रूप को देखकर घबड़ाती रहती है और राम से—"आर्यपुत्र ! वारय वारयेदानीं राक्षसीम्" कह कर उस भयानक रूप के दर्शन से अपने को बचाने का आग्रह करती हैं। मायामृग का प्रसंग सीता को भी रामचरित की तुल्यकोटि में ला बैठाता है। लक्ष्मण के प्रति सीता की कटूक्ति उनको नारी-जगत की सामान्य पृष्ठभूमि पर ले आती है।

सीता के चरित का चरमोत्कर्ष लंका में देखने को मिलता है। राम के प्रति अनन्य पतिपरायणता तथा स्नेह-भावना का उदाहरण अशोकवाटिका में हनूमान-सीता-सम्वाद में मिलता है। अन्तिम उदाहरण रावण-सीता सम्वाद है। रावण अपना समस्त वैभव उनके चरणों पर न्योछावर कर उनसे प्रणय की भीख माँग रहा है किन्तु सीता अपने निश्चय पर दृढ़ हैं। वे रावण के स्वर्ग को पाप समझती

हैं और राम के साथ नरक में भी रहने को प्रस्तुत हैं—"अयं ते स्वर्गमार्गम् । आर्यपुत्रमनुव्रता नरकमेव प्रवेष्टुकामाऽस्मि" । निर्भीकता की प्रतिमूर्ति हैं अतएव विफल-मनोरथ रावण के चन्द्रहास ग्रहण करने पर भी भयभीत न होकर उसे अपना उपकार ही मानती हैं—"लाभः खल्वयम् । मे प्राणानां गतिः आर्यपुत्रपादमूलमेव" ।

सीता—चरित का सबसे उत्तम अंश उनकी अग्निपरीक्षा में उत्तीर्णता है । वह उनकी चारित्रिक शुद्धता की कसौटी है । यद्यपि सीता के लिये यह प्रसंग व्यक्तिगत रूप से अत्यन्त ही अपमानजनक है, किन्तु समस्त नारी-चरित पर किसी को भी भविष्य में सन्देह करने का अवसर न मिल सके, इस उदात्त भावना से प्रेरित हो सीता अपने व्यक्तिगत मानापमान की चिन्ता न कर संसार के समक्ष यह सिद्ध कर देती हैं कि भारतीय पतिपरायणा नारी किसी भी क्षण अपनी चारित्रिक शुद्धता की परीक्षा में सदा सफल ही रहती है ।

सीता की सहिष्णुता भी उत्तमकोटि की है । लंका में राम के कठोर वचनों को सुनकर भी विचलित नहीं होती और निर्विकार भाव से अग्निप्रवेश की अनुमति स्वयं राम से माँगती हैं—'अनुमतार्यपुत्रेणाग्नि प्रवेष्टुकामाऽस्मि' । अन्त में अपने शुद्धि-परीक्षण द्वारा सब की श्रद्धा का भाजन बनती हैं । धन्य है वह नारी-चरित, जिसने अपनी कुर्बानी से विश्वनारी के चरित्र की उत्तमता को सिद्ध किया है । सीता की शील-सौन्दर्य-चन्द्रिका की शीतल छाया में आज की वैज्ञानिक हलचलमयी संतप्त नारी-भावना को परम शान्ति मिल सकेगी ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है ।

लक्ष्मण—प्रस्तुत नाटक के सक्रिय पात्रों में लक्ष्मण का स्थान अन्यतम है । ये राम के अनन्य भक्त अनुज हैं । राम के प्रति अगाध भक्ति-भावना से प्रेरित होकर ही अयोध्या के राजवैभव को ठुकरा कर उनकी सेवा के लिये जंगल चले आये हैं । राम और सीता को किसी भी प्रकार का कष्ट न हो, इसके लिये सर्वदा सजग रहते हैं । वे रङ्गमञ्च पर राम के लिये पर्णकुटी बनाते हुये प्रवेश करते हैं । जुगल-जोड़ी की एकान्त-सेवा ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य है । उनकी कार्य-कुशलता की राम स्वयं प्रशंसा करते हैं—"देवि ! पश्य पश्य सर्वतोमुखनैपुण्यं वत्सलक्ष्मणस्य" ।

लक्ष्मण का चरित्र कितना संयत और तपोमय है, इसका उदाहरण शूर्पणखा का प्रणयनिवेदनप्रसंग है । रावणभगिनी शूर्पणखा लक्ष्मण को आकृष्ट करने के लिये ललितवेष धारण कर उनसे प्रणयनिवेदन कर रही है, किन्तु लक्ष्मण उसे अपने सेवाकार्य में विघ्न समझ कर अस्वीकार कर देते हैं—सारङ्गाक्षि ! तपोभृतः क्व तपसां शत्रुः क्व संकल्पजः ।" अपूर्व लावण्यवती रमणी को सहसा देखकर अपने

मनोविकार को लक्ष्य कर लेते हैं और तत्क्षण ही—"किमिदम् नन्वहं रामानुज लक्ष्मणः" यह कहकर अपने को काबू में कर लेते हैं।

उनका सहज चञ्चल स्वभाव माता कैकेयी के कार्य की निन्दा करता है— "कष्टं विधेः कर्म, नहि नहि कैकेय्याः"। उनके विचार में अपराधी चाहे माता ही क्यों न हो, निन्दा के योग्य है। किन्तु किसी विचार-विशेष के प्रति उनका दुराग्रह भी नहीं दीख पड़ता, अतएव राम के समझाने पर वे कैकेयी के प्रति अपनी भावना को बदल भी देते हैं—"यद्येवमहमेवापराद्धः। प्रसीदत्वार्यः"।

राम के प्रति आज्ञाकारिता के साथ ही वीरभाव भी उनमें सदा विद्यमान रहता है। निर्भीकता तो उनका स्वाभाविक गुण है। शूर्पणखा के विकट रूप धारण करने पर राम से पहले लक्ष्मण ही उसे दण्ड देने को उद्यत हो उठते हैं— "प्रसीदत्वार्यः। अहमेवैनां प्रतिबध्नामि"। विचारशील पुरुष होने के कारण अपराधिनी शूर्पणखा को स्त्री होने के नाते हत्या करने की अपेक्षा केवल उसका नाक-कान काट कर उसे विद्रूप कर देते हैं। इस दण्डविधान के माध्यम से वे उसके सौन्दर्य-गर्व को खण्डित कर देते हैं।

राम की ही भाँति वे भी रावण को रण के लिये शूर्पणखा के माध्यम से आमन्त्रित करते हैं—"शूर्पणखे। इदमपि मद्वचो ब्रूहि।

अपि बन्धुषु नार्थिता वरं किमुतारातिषु तां दधाम्यहम्।
युधि रावण मे सबान्धवो मुनये देहि मुहूर्तदर्शनम्" ॥—३।४१

व्यवहारकुशल होने के कारण राम की अपेक्षा लक्ष्मण राक्षसी-माया के प्रति अधिक जागरूक हैं। राम की आज्ञा की ही भाँति सीता की आज्ञा का पालन करना भी वे अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते हैं अतएव राम के शौर्य पर विश्वास रखते हुये भी सीता की आज्ञा से उन्हें अकेली छोड़ कर राम के पास चले जाते हैं। सीता के आक्षेपवचन उन्हें असह्य हो जाते हैं किन्तु फिर भी संयतभाव से उनके आदेश का पालन करना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। वे बड़े ही दूरदर्शी हैं अतएव सीता के इस व्यवहार से भावी अनिष्ट की सूचना भी उन्हें देते हैं—

"अपि मां विजल्पसि गभीरधियां प्रथमा सती यदविचार्य चला।
तदुपस्थिता तव विपन्नियतं परिवर्तते प्रकृतिरापदि हि" ॥ —३।२९

नाटक के अन्तिम अङ्क में सीता के चरित्र के सम्बन्ध में वे राम के विचार से सहमत हैं। उनकी दृष्टि में भी सीता अपराधिनी हैं अतएव उनको समुचित दण्ड देने की राम को सलाह देते हैं। यहाँ पर नारीसामान्य के प्रति लक्ष्मण के मनोगतभाव का संकेत मिलता है। वे राम की आज्ञा से सीता की अग्निपरीक्षा

का आयोजन करते हैं किन्तु उस अवसर पर घटित अद्भुद् घटना का आँखों देखा वर्णन करके सीता के चरित्र के वास्तविक स्वरूप को जान सीता से अपनी धृष्टता के लिये क्षमायाचना भी करते हैं—

आर्ये ! तव शासनाद् दण्डकेषु प्रस्थिते मयि,
संरक्षिता मम समाधिरिपुर्न देवं
साक्षीति यत् कथितमत्र तथैव जातम् ।
सामान्यदर्शनजडेन मया यदुक्तं
त्वं तत्क्षमस्व शरणं चरणौ ममैतौ ॥—७।३३

इस प्रकार आज्ञाकारी, उदात्त चरित, निर्भीक, वीर और लोकव्यवहारनिपुण लक्ष्मण भारतीय-जन-जीवन के महान् प्रेरक हैं।

रावण—स्वर्णपुरी लङ्का का अधिपति राक्षसराज रावण इस नाटक का प्रतिनायक है। उसका दर्शन हमें तृतीय अङ्क में होता है। रावण इस नाटक में क्रूर-कर्मा, कपटी तथा कामी राक्षस का सफल अभिनय करते नजर आता है। राम के द्वारा अपनी बहिन शूर्पणखा के अपमानित होने पर उसकी प्रतिशोधभावना तीव्र हो जाती है फलतः रामपत्नी सीता के अपहरण का षड्यन्त्र रचता है। इस षड्यन्त्र में उसे मायावी मारीच की सहायता मिलती है। सीताहरण का आयोजन स्वाभाविक तथा नाटकीय ढंग से सफल हो, इसके लिये वह मायावी नीति का सहारा लेता है। वह स्वयं राम का रूप धारण कर सीता को हरने का संकल्प करता है। वह सौन्दर्य का पारखी है। सीता को देखकर उनके सौन्दर्य पर मुग्ध हो उन्हें त्रिलोकसुन्दरी की उपाधि से विभूषित करता है—"इयं सा त्रैलोक्यसुन्दरी सीता नाम। अहो ! चित्रमहो ! चित्रम्"।

यद्यपि वह सीता के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है किन्तु सहसा ऐसा कोई आचरण नहीं करता जिससे सीता को उसके ऊपर सन्देह हो। राम के रूप में सीता को विश्वस्त कर आसानी से उनका हरण कर लेता है। मार्ग में सीता के प्रति अपने कामविकार को लक्ष्य कर उनसे मनोविनोद करने का प्रयास तो करता है किन्तु अन्य स्त्री के व्यवहार से अपरिचित होने के कारण घबड़ाता भी है—

रावणः—(आत्मगतम्) भवतु, अनया तावत् स्पर्शसुखमनुभवामि।
अहो नु खलु बलवानसंस्तवः। तथाहि—
अपि वासववारणस्य वक्त्रे मदकल्माषितकर्णचामराग्रे।
अनिवारितविक्रमः करो मे दयितां स्प्रष्टुमलं न तापसस्य ॥—४।३

रावण हृदय से यह चाहता है कि सीता उसके अनुकूल होकर उसकी पटरानी बन जायँ। उसका हृदय कामाभिभूत हो गया है अतएव अमात्य चित्रयोधी के समझाने पर भी सीता के प्रति अपनी आसक्ति का परित्याग नहीं कर पाता। वह कामावेश में सूर्य और चन्द्र तक के भेद को भूल कर प्रलाप करता है—

"वर्षवर ! मया चिरान्निर्वासितस्य दिवाकरस्य लङ्कायां कः प्रसंगः" ।

रावण अपनी मनोरथसिद्धि के लिये सजधज कर सीता को मनाने अशोक-वाटिका जाता है। सीता से प्रणय-निवेदन करता हुआ वह अपना सर्वस्व उनके चरणों पर अर्पित कर देना चाहता है। कामी रावण उस समय अपने कर्त्तव्या-कर्त्तव्य को भूल जाता है। वह नितान्त अधार्मिक बन जाता है अतएव अमात्य के हितप्रद-वचन की उपेक्षा कर त्रिवर्ग में केवल काम का उपासक बन जाता है। अमात्य की धर्मचर्चा को कायरता की संज्ञा देकर उसका उपहास करता है—

यदि सुरपदकांक्षा वज्रिणो वज्रपातादसिरविकृतधारश्चन्द्रहासः सखा मे ।
तव विरमतु धर्मः साधनं दुर्बलानां बलवत इव पथ्यं सर्वमस्मद्विधस्य ॥—५।१७

रावण इतना अहंकारी है कि वह अपने भुजबल के आगे देवताओं की शक्ति पर हँसता है और राम को मात्र तापस कह कर उनका मजाक उड़ाता है। रावण प्रथम श्रेणी का लम्पट भी है क्योंकि अमात्य द्वारा परदारागमन का विरोध करने पर उसे मूर्ख बनाकर परस्त्री-सहवास के औचित्य का प्रमाण देकर समर्थन करता है—

मूढ ! नात्र परः प्रमाणम् ।
परभुक्तरसा पद्मा परं रत्नं धराकरम् ।
भारती च विरक्तेति त्यज्यते किमयं नयः ॥—५।२२

वह दुःसाहसी इतना है कि अपनी प्रणययाचना में असफल होने पर सीता का शिरश्छेद करने के लिये चन्द्रहास को खींच लेता है। यह प्रसंग सीता के प्रति उसकी मात्र कामुकता का उदाहरण है जो प्रणय-क्षेत्र का अभिशाप है। इससे उसके प्रणयनिवेदन का क्रूहरपन प्रकट होता है। उसके हृदय में सीता के प्रति रस नहीं, अपि तु रसाभास ही है।

अन्त में अपने कुकृत्य के फलस्वरूप राम के हाथों न केवल अपने को, प्रत्युत समस्त राक्षसकुल को विनाश की ज्वाला में झोंक देता है। इस प्रकार अभिमानी, कपटी, अविवेकी, अधार्मिक, कामी और क्रूरकर्मा लम्पट पुरुष का जैसा आचरण होना चाहिये उसका रावण पूर्ण अभिनय करता है। प्रतिनायक के रूप में रावण का अन्तर्बाह्य चरित्र नाटकीयता से आपूर्ण है।

शूर्पणखा—यह इस नाटक की प्रतिनायिका मानी जा सकती है। शूर्पणखा रावण की बहिन है। इसने पञ्चवटी में राम और लक्ष्मण को देखा है। सुन्दर कुमारद्वय को देखकर इसका हृदय उनपर आकृष्ट हो जाता है। अपने राक्षसी-रूप में उन्हें प्राप्त करने में असफल होने की बात सोच कर सुन्दरी रमणी का रूप धारण करती है। अपने ललित सुकुमारवेष में सजी शूर्पणखा तपोवन में प्रवेश कर लक्ष्मण पर अपना मायाजाल फैलाती है। सामान्य नारीभाव के विपरीत लक्ष्मण का आवाहन कर अपना प्रणयनिवेदन करती है। लक्ष्मण के उपेक्षा करने पर उनके साथ उत्तर-प्रत्युत्तर करके अपने प्रेम के औचित्य का समर्थन करती हुई धृष्टता की चरम-सीमा पर पहुँच जाती है। अन्त में लक्ष्मण की उदासीनता से हताश हो राम के पास जाकर उनसे भी प्रणयनिवेदन का निश्चय करती है—

"पुनरपि तमेव रामं पतिभावे प्रसादयिष्यामि यस्य वचनप्रत्ययेन लक्ष्मणमासाद्य मूढ-समृद्धं सरस्वतीव अकृतार्थेव निवृत्ताऽस्मि"।

इसप्रकार कामपरवशा राक्षसी अपने ओछे व्यवहार से नारीजगत् के सम्मानित पद को कलंकित करती है और अपने नीचकर्म का फल विरूपता की प्रतारणा से पाती है। अपने प्रणय में असफल नारी की निम्नकोटि का व्यवहार करती है और सीताहरण के षड्यन्त्र में रावण की पूर्ण सहायता करती है। वह राम पर मुग्ध है अतएव उनके वध के प्रसंग से रावण को रोककर सीताहरण का उसे पाठ पढ़ाती है—"आर्य! मा मा संरम्भक्रमेण। कदर्थितमहेन्द्रविक्रमस्यार्यस्य कथं स मानुषो विषयो भवेत्। यथोद्वेगेन सा जीवितं न परित्यजति तथा सीतां हस्ते करिष्यामः। ननु सा तस्य प्राणाः"।

रामवध के निषेधपरक कार्य में उसकी दो कुटिल नीतियाँ काम कर रही हैं। एक तो राम की प्राप्ति और दूसरी अपने अपमान की प्रतिशोधभावना। वह सीता का रूप धारण कर राम को धोखा देती है। मारीच के भेद खुल जाने पर अपने को बचा पाने में असमर्थ हो जाने पर राम की शरण में जाकर प्राणों की भीख माँगती है। वह राक्षसी-माया की प्रतिमूर्ति है। सीताहरण तथा सकुल रावणविनाश का बीज है। उसी के कारण रावण-राम का वैरभाव प्रवृद्ध होता है। शूर्पणखा में नारी में प्राप्त होने वाले सभी दुर्गुणों का एकत्र समन्वय है। अपनी राक्षसीजाति के अनुकूल सुन्दर युवा को देखकर तुरन्त आकृष्ट हो जाना और प्रेम में असफल हो जाने पर उसके अनिष्ट का आयोजन करना उसके अधम नारीत्व का सुन्दर निदर्शन है। इस प्रकार शूर्पणखा अपने नानाविध मायाचरणों के परिवेष में इस नाटक की प्रतिनायिका का सफल अभिनय प्रस्तुत करती है।

मण्डोदरी तथा अमात्य – प्रतिपक्षी दल के ये दो पात्र अपनी चारित्रिक विशेषता के कारण चर्चा के विषय हो जाते हैं। मण्डोदरी रावण की पटरानी है। वह सीता के लंका में आगमन से अपने भविष्य के प्रति शंकित हो उठती है। वह चेरी से सीता को राक्षस विनाश का कारण बताती है—"तन्निमित्तिं नो विनाशं प्रेक्षे"। अपने दुःस्वप्न से भावी अनिष्ट की आशंका को चेरी से प्रकट करती है।

इसी बीच उसे सीता के पास सज्जित होकर रावण के अशोकवाटिका जाने की सूचना मिलती है। वहाँ पर वह सीता के प्रति रावण के व्यवहार को जानने के लिये तथा रावण से संभावित सीता के अनिष्ट की कल्पना कर स्वयं अशोकवाटिका आती है। वहाँ पर छिपकर सीता के प्रति रावण के समस्त क्रियाकलापों का अवलोकन करती है। प्रणय में असफल रावण जब सीता को मार डालने को उद्यत होता है तो सहसा उन दोनों के बीच में आकर सीता की रक्षा करती है—"मण्डोदरी—हा! धिक् तथासीत्। पतिव्रता खल्वेषा। मम प्राणैः महाराजस्य, अनर्थात् रक्षिष्यामि।" यह है मण्डोदरी के उदात्त तथा दयालु हृदय का उदाहरण। नारी होने के कारण वह एक नारी की हार्दिक विवशता का अनुभव करती है अतएव सीता की रक्षा अपने प्राणों को भी देकर करना चाहती है। राक्षस-सम्पर्क में रहकर भी मण्डोदरी का हृदय मानवता के निकट है अतः स्तुत्य है।

अमात्य चित्रयोधी रावण का सच्चा स्वामिभक्त मंत्री है। वह धार्मिक, नीतिज्ञ और मर्यादावादी प्रकृति का समर्थ वीरपुरुष है। युद्ध में विलक्षण सफलता प्राप्त करने के कारण ही उसका नाम चित्रयोधी पड़ा है। वह निरन्तर अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है। वह स्थिरबुद्धि का अमात्य है अतएव अपने स्वामी के वास्तविक कल्याण की कामना करता है। वह रावण के गलत कार्यों का नम्रतापूर्वक निषेध करता है। वह रावण के भय से उसके हाँ में हाँ नहीं मिलाता है। वह रामपत्नी सीता के हरणकार्य को अनैतिक समझता है। वह रावण को मर्यादारहित जानकर उसे सही रास्ते पर लाने का प्रयास करता है। हितप्रद वचन कहने पर रावण के क्रोध की परवाह नहीं करता। वह न तो राम के प्रति पक्षपात की भावना से प्रेरित है और न स्वामी के क्रोध से चिंतित है। वह तो अपने कर्त्तव्य के पालन में अपने प्राणों की बलि दे देना चाहता है। उसे यह इष्ट है कि वह स्वामी को हितप्रद वचन कहकर उनके अनिष्टदर्शन से पहले ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दे—

उन्मर्यादमुपेक्ष्य रावणमहं रामाद् विनश्यामि नु
व्याहृत्याप्रियमाप्नुयान्नु विपदं चाण्डादुत स्वामिनः।

पक्षौ द्वावपि मे न पथ्यमनयोः श्रेयानयं रावणात्
नाशो मे पतनावसानमचिराल्लक्ष्ये यतः स्वामिनः ॥—५।७

इस प्रकार अमात्य अपने कर्त्तव्य-पालन में सजग रहकर अपनी स्वामि-भक्ति का अनुपम उदाहरण उपस्थित करता है। यही है एक सच्चे हितैषी अमात्य की कर्त्तव्य-निष्ठा। ऐसे अमात्य पर ही राज्य की नींव सुदृढ़ रह सकती है।

जटायु तथा हनूमान्—ये दोनों राम के सहायक तथा भक्त हैं। दोनों ने अपने कर्त्तव्यपालन में अभूतपूर्व कार्य किया है। जटायु राम के पिता दशरथ के परम मित्र हैं अतएव यदि उन्होंने सीता-रक्षा के प्रयास में अपने प्राणों की आहुति देकर दशरथ के प्रति अपने मैत्रीभाव को उज्वल किया है तो हनूमान् ने समुद्र पारकर लङ्का में सीता का पता लगा कर अपने सेवक-भाव का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है। इन दोनों का परिचय हमें क्रमशः चतुर्थ तथा षष्ठ अङ्क में मिलता है। किन्तु जितना ही मिला है वह अपने में पूर्ण है। हनूमान् ने अपने अद्भुत वीरतापूर्ण दूतकार्य के माध्यम से संसार में सेवक-भावकी महत्ता को स्थिर किया है। वे राम के अनन्य सेवक हैं। उन्हीं के चरित्र से संसार में सेवा-भावना में उदात्तता का समन्वय हो सका है।

सुग्रीव और विभीषण का चरित अधिक नहीं उभर सका है। इन दोनों का इस नाटक में कोई ऐसा विलक्षण क्रिया-कलाप नहीं प्रस्तुत किया गया है किन्तु फिर भी राम के राक्षसविजयकार्य में सहायक हुये हैं अतः ये कतिपय कर्त्तव्यनिरत चरित धन्य हैं जिनसे वर्तमान तथा आने वाली पीढ़ी को सतत् कर्त्तव्य-भावना की प्रेरणा मिलती रहेगी।

आश्चर्यचूडामणि-एक विश्लेषण

कथावस्तु—नाटक की कथावस्तु नियमतः इतिहासप्रसिद्ध होती है "नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्"। नवीन उद्देश्य की सिद्धि के लिये नाटकीय कथावस्तु की योजना का अर्थ–उसके प्रसिद्ध घटनाचक्रों का उचित और आत्मानुरूप विनियोग करना है। घटनाओं तथा पात्रों का यह विनियोग उस उद्देश्य का पूरक होता है जिसको लेकर नाटककार एक नवीन चित्र उपस्थित करना चाहता है, या जिसे अपनी कृतिके अन्त में फलरूप से उपस्थित करता है। इस भूमिका के आधारपर हमें 'आश्चर्यचूडामणि' में यह देखना है कि—

(१) इस नाटक की कथावस्तु का आधार क्या है ?
(२) इसमें कितनी प्रमुख घटनाएँ और कितने तथा किस प्रकार के पात्र हैं।
(३) इसका फल या उद्देश्य क्या है ?

कथावस्तु के आधार पर प्रस्तुत नाटक के अध्ययन-मननसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसका आधार वाल्मीकीय रामायण है। वा० रामायणके अरण्यकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की प्रमुख घटनाओं को नाटकीय रूप दिया गया है। अतः आश्चर्यचूडामणि की कथावस्तु का उपजीव्य वा० रामायण है।

प्रमुख घटनायें तथा पात्रयोजनायें—विचार करने पर इस नाटक की चार प्रमुख घटनायें हैं—

(१) शूर्पणखाविरूपण (२) जानकीहरण (३) हनूमान्-संदेश तथा (४) रावणविजय के बाद सीता की अग्निपरीक्षा।

अन्य छोटी छोटी घटनायें इन्हीं चारों प्रमुख घटनाओं के पूरक तत्त्व के रूप में आये हैं।

नाटककी कथा राम-चरित के द्वितीय चरण से प्रारंभ होती है अतः उससे असंबन्धित घटनाओं का सन्निवेश नहीं किया गया है। कथानक की गतिशीलता में शिथिलता न आने पावे अतः अनावश्यक वर्णनात्मक प्रसंगों को छोड़ दिया गया है। संक्षेपणपद्धति को दृष्टि में रख कर सीताहरण के बाद रामविलाप, सुग्रीव-मैत्री, सीतान्वेषण, युद्धवर्णन तथा रावणादिवधप्रभृति घटनाओं की सूच्यकथाके रूप में सूचनामात्र दे दी गयी है। लंकादहन, लक्ष्मणशक्ति तथा यथास्थान प्रकृति-वर्णन की उपेक्षा भी संक्षेपणदृष्टि से ही की गयी नजर आती है। फलतः घटनाओं के क्रमिक संगठन के तारतम्य में अनुरूपता के साथ ही व्यर्थ वर्णनात्मक व्यवसाय से दर्शकों के मनको उबा देने के दोष से नाटककार अपने को बचा लेता है। नाटक की संक्षिप्तता इसकी अभिनेयतामें विशेष सहायक सिद्ध हुई है।

जहाँ तक पात्रयोजनाकी बात है उस में वाल्मीकीय रामायण के सीमित किन्तु प्रमुख पात्रों का विनियोग किया गया है। इसमें नायक तथा प्रतिनायक-पक्ष के सभी प्रमुख पात्र आ जाते हैं। नाटक का प्रारंभ राम के वनवासकाल में पञ्चवटी में शूर्पणखा-वृत्तान्त से और अन्त रावणविजय के अनन्तर सीता-प्राप्ति से होता है। अतः उक्त कथानक से असम्बन्धित पात्रों का सन्निवेश नहीं किया गया है। पात्रों का संगठन बड़े ही स्वाभाविक ढंग से हुआ है। सभी पात्र इसी लोक के सहृदय सुख-दुःखात्मक अनुभूति से प्रभावित प्राणी हैं। केवल विद्याधर अलौकिक जगत् के पात्र हैं। चरितनायक राम विकलता, निराशा एवं दुःखमय जीवन बिताने वाले मानव के प्रतीक नहीं, अपि तु धर्म संस्थापक, मर्यादावादी वीरपुरुषके प्रतीक हैं। रावण प्रतिनायक के रूपमें अधार्मिकता का प्रतीक है।

मूलकथा में परिवर्तन तथा नवीन कल्पना—नाटक लोकवृत्त का अनुकरण है अतएव नाटककार अपने उद्देश्य की सिद्धि तथा घटनाचक्र में नवीनता लाने के

लिये आवश्यकतानुसार मूलकथा में कतिपय परिवर्तनों के साथ ही कुछ नूतन कल्पनाओं का पुट भी दे देता है। इन परिवर्तनों तथा मौलिक कल्पनाओं में नाटककार का विशेष उद्देश्य रहता है और वह उद्देश्य होता है—अनुकूल रसयोजना के माध्यम से दर्शकों का मनोरञ्जन। प्रेक्षकों के हृदय पर उनका अनुकूल प्रभाव पड़े, इसके लिये नाटककार सतत् प्रयत्नशील रहकर अपने परम लक्ष्य की पूर्ति करता है। इस कथन के साक्ष्य पर प्रस्तुत नाटक की मूलकथा में भी कतिपय परिवर्तन सोद्देश्य किये गये हैं।

सीताहरण की कथा वा० रामायण में प्रसिद्ध है। वहाँ पर साधुवेष में रावण द्वारा सीताहरण की चर्चा है। यहाँ पर नाटककार अपनी परिवर्तनशील कल्पनाशक्ति से रावण को रामका रूप ग्रहण कराता है। ऐसा करने का उद्देश्य सीताहरण की घटना को स्वाभाविकता प्रदान कराना है। यह घटना अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से घटित हो सके, इसमें तनिक भी ननु नच का प्रसंग न आने पावे और सीता विश्वस्त होकर रावण को राम समझ कर चल पड़े, यही इस परिवर्तन का उद्देश्य है। घटना की स्वाभाविकता ही नाटक की नाटकीयता है—कथा-प्रवाह की अविच्छिन्नता है। कथावस्तु में कमनीयता लाने के लिये आश्चर्यभूत रत्नों की कल्पना की गयी है। यद्यपि आश्चर्यभूत चूडामणि और अंगुलीयक की कल्पना कवि की नितान्त उर्वराशक्ति की उपज तो नहीं है, क्योंकि इन दोनों की चर्चा मूलकथा में है, किन्तु फिर भी इन रत्नों का उपयोग बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। ये दोनों रत्न यहाँ पर ऋषियों द्वारा प्रदत्त हैं जिनके प्रभाव से राक्षसी-मायाका पर्दाफास किया जा सकता है। रावण तथा शूर्पणखा के रूप-परिवर्तन का भेद इन्हीं रत्नों के माध्यम से खुल सका है जो प्रस्तुत नाटक की अद्भुद् घटना मानी जाती है।

नाटकीय चमत्कार की दृष्टि से सीताहरण की घटना अत्यन्त कुतुहलपूर्ण हो गयी है। यहाँ पर नाट्यकार ने अपनी नाट्यकला का विशेष परिचय दिया है। रावण और शूर्पणखा दोनों ने ही राम और सीता के रूप में दोनों को एक साथ ही धोखा दिया है। दोनों एक साथ ही राक्षसी-माया से आक्रान्त होते हैं और जानकी-हरण की घटना अनायास ही बिना सीताविरोध के सम्पन्न हो जाती है। यहीं पर शक्तिभद्र की नाट्यकला निखर उठी है।

अनसूया-वरदान की कल्पना कवि की मौलिक कल्पना है। इसका उद्देश्य सीता की अग्नि-परीक्षा कराना है। मूल-कथा में सीता की अग्नि-परीक्षा का आधार केवल उनका राक्षस के घर में निवास करना है। यह आधार सीता जैसी पतिव्रता की चारित्रिक-शुद्धता की परीक्षा के लिये पर्याप्त नहीं था। नाटककार अग्नि-परीक्षा

के प्रसंग से सीता की चारित्रिक-शुद्धता को सिद्ध करना चाहता है किन्तु उसके लिये ठोस आधार की आवश्यकता है।

भारतीय संस्कृति में नारी धर्म के अनुसार प्रोषितपतिका भार्या वियोगावस्था में पतिव्रता-धर्म का पालन करती है। आभूषणादि का परित्याग कर विरह-व्रत को धारण करती है। यद्यपि सीता भी राम के विरह में इसी व्रत का पालन करती हैं किन्तु पतिव्रता अनसूया के वरदान से उनके शरीर में संलग्न धूलि भी राम की दृष्टि में अङ्गराग बन जाती है। अनसूया-वरदान का एक लक्ष्य तो यह है कि राम की दृष्टि में सीता वनवास काल में भी अयोध्या में निवास करने वाली आभूषणमण्डिता सीता की भाँति प्रतीत हों, जो उन दोनों के सुखी दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करने में सहायक हो। इसके साथ ही नाटककार का एक दूसरा अभिप्रेत भी सिद्ध हो जाता है, जो सीता की अग्निपरीक्षा का बीज बन जाता है। लङ्का में विरहावस्था में भी सीता का आभूषणमण्डिता प्रतीत होना राम की शंका का कारण है अतः यह प्रसंग अग्नि-परीक्षा प्रस्ताव का ठोस आधार बन जाता है। इसीलिये यहाँ पर अग्निपरीक्षा का प्रस्ताव स्वयं सीता ही करती हैं जो प्रसंगानुसार सर्वथा स्वाभाविक है।

अब अग्नि-परीक्षा के प्रसंग से नायक-नायिका का समागम सन्दिग्ध हो जाता है किन्तु भारतीय नाट्य-परम्परा के अनुसार नाटक का पर्यवसान सुखात्मक अनुभूति में होना चाहिये अतः उन दोनों के मिलन में बाधक तत्व के निवारण के लिये नाटककार को एक अन्य कल्पना करनी पड़ी है जो प्रस्तुत प्रसंग को बदल कर समागम के अनुकूल पृष्ठभूमि को तैयार करती है।

सीता-शुद्धता के साक्षी के रूप में देवर्षि नारद तथा देवताओं के लङ्का में उपस्थित होने की घटना ने नायक-नायिका के निर्विघ्न समागम का मार्ग प्रशस्त किया गया है।

इस प्रकार नाटकीय कथावस्तु की पर्यालोचना से यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत नाटक का परम उद्देश्य या फल राम के द्वारा रावण-विजय के अनन्तर सीता-प्राप्ति है। इसी फल की प्राप्ति के लिये नाटककार ने शूर्पणखा वृत्तान्त का उपन्यास विस्तृत रूप से करके राम-रावण-वैरभाव को प्रवृद्ध करने का सफल प्रयास किया है।

पात्रों का विन्यास भी घटना-चक्र तथा प्रधानफल के अनुकूल ही किया गया है। कुछ पात्र तथा घटनाओं का उपयोग तो प्रधान-पात्र के चारित्रिक वैशिष्ट्य को उभारने के उद्देश्य से किया गया प्रतीत होता है। शूर्पणखा का प्रणय-निवेदन तथा कैकेयीवृत्तान्त राम के उन्नत चरित्र को निखारने के लिये प्रस्तुत किया गया

है। जहाँ पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम, आदर्श पतिपरायणा सीता तथा भ्रातृभक्त लक्ष्मण का चरित्र अत्यन्त उन्नतकोटि का दर्शाया गया है वहीं पर लोकपीडक प्रतिनायक रावण तथा खलनायिका शूर्पणखा के लोकनिन्दित निम्नकोटि के चरित्र का भी चित्रण किया गया है। परस्पर विरोधी इन चरित्रों से दर्शकों को अपने ग्राह्य-त्याज्य चरितानुकरण की प्रवृत्ति जाग्रत होगी, यही नाटककार का उद्देश्य है। नाटकीय दृष्टि से शूर्पणखा का चरित बड़ा ही कलात्मक बन गया है।

मनोवैज्ञानिक स्थिति--इस नाटक में बाह्यघटना-चक्रों के साथ ही आन्तरिक मनोवैज्ञानिक स्थितियों का भी विश्लेषण सुन्दर ढंग से किया जा सकता है। शूर्पणखा के ललित वेष और कामुक चेष्टा से लक्ष्मण की मानसिक स्थिति किस प्रकार बदलती है यह मनोविज्ञान का विषय है। स्वाभाविक काम-विकार को लक्ष्यकर तुरत अपने कर्त्तव्य का निश्चय—"नन्वहं रामानुजो लक्ष्मणः" के द्वारा करके अपनी भर्त्सना करना लक्ष्मण की परिवर्तित मनोदशा का चित्रण है। त्रिलोकसुन्दरी सीता को देखकर रावण की कामदशा का चित्रण बहुत ही सफल हुआ है। इसी प्रसंग में कथोपकथन के माध्यम से अमात्य का उचित मार्ग-प्रदर्शन नाटककार की सुलझी विचार-सम्पत्ति का सुन्दर नमूना है। इस नाटक में प्रारंभ से ही विस्मयपूर्ण घटनाओं का बाहुल्य है फलतः दर्शकों की कुतुहलवृत्ति सदा सजग रहती है। कथोपकथन के माध्यम से घटनाओं को निरन्तर आगे बढ़ाया गया है। कहीं भी किसी प्रसंग में लम्बे व्याख्यान या वर्णन द्वारा दर्शकों के रसा-स्वादन में व्यवधान नहीं उपस्थित किया गया है।

शीर्षक योजना—नाटक में किसी प्रधान पात्र या प्रधान घटना के आधार पर शीर्षक-योजना की परम्परा संस्कृत-साहित्य में बहुत पुरानी है। उदाहरण के लिये संस्कृत के दो चार प्रसिद्ध नाटकों का नाम लिया जा सकता है। सबसे प्राचीन नाटककार भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक में राजा वत्सराज द्वारा स्वप्न में वासवदत्ता को देखने की प्रधान घटना के आधार पर 'स्वप्नवासवदत्तम्' यह शीर्षक रखा गया है। इसी प्रकार कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्', विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस! तथा शूद्रक के 'मृच्छकटिक' नाटकों की शीर्षकयोजना अंगूठी के माध्यम से शकुन्तला की पहचान, मुद्रा के माध्यम से अमात्य राक्षस का वशीकरण तथा मिट्टी की गाड़ी से चारूदत्त का विपत्ति-प्रसंग, इन प्रधान घटनाओं के आधार पर ही की गयी है।

नाटककार शक्तिभद्र भी अपने पूर्ववर्ती नाटककारों की छाया के अनुकरण करने के लोभ का संवरण नहीं कर सके और अन्त में अपने नाटक का शीर्षक भी आश्चर्यभूत चूडामणि की घटना की प्रधानता के आधार पर रख लिया। प्रस्तुत

नाटक में चूडामणि के स्पर्श से रावण के कपट-वेष का भेद खुल गया है इस प्रधान घटना के कारण ही इस नाटक का शीर्षक 'आश्चर्य चूडामणि' गया है। कथावस्तु के विन्यास में शक्तिभद्र ने भवभूति का विशेष अनुकरण है। शूर्पणखा का सीतारूपपरिवर्तन भवभूति के महावीर चरित में शूर्पणखा द्वारा मन्थरा का रूपग्रहण करने की घटना से प्रभावित नजर आता है।

अर्थोपक्षेपक—अभिनय की दृष्टि से कथावस्तु के दो भेद हैं—(१) वाच्य त (२) सूच्य। मुख्य कार्य से सम्बन्ध रखने वाली आधिकारिक तथा प्रासंगि कथायें, जो रंगमञ्च पर अभिनय के द्वारा दर्शकों के श्रवण-दर्शन योग्य हों, वा कहलाती हैं, किन्तु नाटक में समग्र घटनाओं का प्रदर्शन अभीष्ट नहीं अतः का सिद्धि के लिये उनमें आवश्यक काट-छाँट के माध्यम से उनका परिष्कार कर पड़ता है। कार्य की सिद्धि से सीधा सम्बन्ध न रखने वाली तथा इस दृष्टि रङ्गमञ्च पर अभिनय के अयोग्य घटनाओं की सूचना कथा की अखण्डता के लि अवश्य दी जाती है। ऐसी ही कथायें सूच्य कहलाती हैं। इन्हीं सूच्य-कथा का शास्त्रीय नाम अर्थोपक्षेपक है। इस अर्थोपक्षेपक के पाँच भेद हैं—(१) विष्कम्भक, (२) प्रवेशक (३) चूलिका (४) अङ्कावतार तथा (५) अङ्कास्य।

प्रस्तुत नाटक में सूच्य-कथावस्तु को प्रस्तुत करने के लिये शक्तिभद्र ने निम्न लिखित अर्थोपक्षेपकों का उपयोग किया है।

(१) शुद्ध विष्कम्भक—द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में मुनिकुमार तथा वृद्ध तापस के वार्तालाप में खरदूषण-वध की अतीत तथा सीताहरणरूप भावी घटन की सूचना शुद्ध विष्कम्भक के द्वारा दी गयी है।

(२) अङ्कावतार—चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में, तृतीय अङ्क के अन्त में आने वाले राम-लक्ष्मण-वेषधारी रावण, सूत तथा हरण की जाती हुई सीता का प्रवेश कराया गया है।

(३) प्रवेशक—पञ्चम अङ्क के प्रारम्भ में मण्डोदरी तथा चेटी के कथोपकथन में मण्डोदरी के स्वप्न-दर्शन की सूचना दी गयी है। साथ ही सीता के अशोक-वाटिका में निवास की भूतकालिक घटना तथा रावण के सीता से सायंकाल मिलने की अग्रिम घटना की सूचना दी गयी है।

(४) मिश्रविष्कम्भक—सप्तम अङ्क के प्रारंभ में सुमेरु पर्वतवासी विद्याधर अपनी प्रिया सौदामिनी से बातें करते हुये रावण-वध की सूचना देता है।

इस नाटक में प्रयोगातिशय नामक आमुख तथा भारती वृत्ति का प्रयोग किया गया है।

अर्थप्रकृतियाँ—यद्यपि प्रस्तुत नाटक में कथावस्तु की अर्थप्रकृतियों तथा कार्य-यापार की अवस्थाओं की स्पष्ट झलक पूर्णतया नहीं मिलती फिर भी प्रयास करने र इन तत्त्वों का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है—

वीज—वृक्ष के वीज की भाँति वह तत्त्व है, जो अङ्कुरित होकर नायक के कार्य ा फल की ओर वढ़ता है।

"स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा" (दशरूपक) अर्थात् रूपक के आरम्भ ं अल्परूप में निर्दिष्ट वह तत्त्व जो रूपक के फल का कारण है तथा कथावस्तु में नेक रूप में पल्लवित होता है, वीज कहलाता है। वीज की उपर्युक्त परिभाषा के नुसार प्रस्तुत नाटक में भयदायक राक्षसों के निराकरण में उत्साह के रूप में ाटककार द्वारा वीज का उपन्यास किया गया है। यथा—"ज्याधोषेण निराकरोमि यदान् पर्यन्तभाजो मृगान्" इत्यादि पद्य के द्वारा प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में लक्ष्मण े मुख से उत्साहरूप वीज को सूचित कराया गया है।

विन्दु—कथावस्तु में विन्दु वह स्थिति है, जब वीज पानी में गिरे तेल के बूँद ी तरह फैलता है। इस दशा में इतिवृत्त का वीज फैल कर व्यक्त होने लगता । "अवान्तरार्थविच्छेदे विन्दुरच्छेदकारणम्"। (दशरूपक) अर्थात्—जहाँ किसी ूसरी कथा से विच्छिन्न हो जाने पर इतिवृत्त को जोड़ने और आगे बढ़ाने के लिये ो कारण होता है, वह विन्दु कहलाता है। विन्दु के इस लक्षण के अनुसार ूर्पणखा-वृत्तान्त के वाद राक्षसवधरूप कार्य का मध्य में विच्छेद हो जाने से ीजभूत उत्साह के विच्छिन्न होने की स्थिति में द्वितीय अर्थप्रकृति विन्दु का विनियोग तृतीय अङ्क के प्रारंभ में—"तिष्ठतु चिराय दिवरकरान्वयः।.........मृत्यु-जिह्वालङ्कामपि लेढि" इस कथन के द्वारा करके खरदूषण वध द्वारा इतिवृत्त को पुनः जोड़ा गया है। साथ ही मृत्युजिह्वा के द्वारा लङ्कालेहन के प्रतिपादन से ावणवध के प्रति नायकपक्ष का उत्साह स्थिर हो जाता है।

पताका—प्रासंगिक कथावस्तु का एक भेद है। जो कथा रूपक में वरावर चलती रहती है—सानुवन्ध होती है—उसे पताका कहते हैं। सानुवन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्" (दसरूपक) इस पताकारूप कथावस्तु का नायक अलग से होता है, जो आधिकारिक कथावस्तु के नायक का सहायक होता है। पताका की उपर्युक्त रूपरेखा के अनुसार इस नाटक का सुग्रीव-वृत्तान्त 'पताका' माना जा सकता है। यद्यपि यह वृत्तान्त विशेषरूप से सूच्य-कथा के रूप में आया है और उनका दर्शन सप्तम अङ्क में रावणवध के वाद होता है फिर भी राज्य-रूप फल के प्राप्त करने के कारण पताका सुग्रीव का वृत्तान्त ही है।

प्रकरी—यह प्रासंगिक-कथावस्तु का दूसरा भेद है। 'प्रकरी तु प्रदेशभा
इस लक्षण के अनुसार जो कथा केवल एक ही प्रदेश तक सीमित रहती है, व
प्रकरी कहलाती है। यह प्रासंगिक-कथा किसी प्रसंग में आकर समाप्त हो जाती है
प्रस्तुत नाटक में जटायु-वृत्तान्त 'प्रकरी' माना जा सकता है।

कार्य—अर्थ प्रकृति का अन्तिम भाग ही कार्य कहलाता है जो मुख्य होता है
अर्थप्रकृतियों का सम्बन्ध नाटक के घटनाचक्रों से होता है। प्रस्तुत नाटक
सकुल-रावणवध-पूर्वक विशुद्ध सीता की उपलब्धि 'कार्य' है।

कार्य-व्यापार की अवस्थायें

आरम्भ—नाटकीय कार्यव्यापारकी पहली अवस्था आरम्भ है। इस अवस्था
अन्तर्गत नेता में किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा होती है। "औत्सुक्यमात्रमारम्भ
फललाभाय भूयसे" (दश०) अर्थात् अत्यन्त फललाभ की उत्सुकता मात्र ह
आरम्भ है। प्रस्तुत नाटक के द्वितीय अङ्क के प्रारंभ में पञ्चवटी में राक्षस-निवास
के प्रति राम की उत्सुकता ही 'आरम्भ' है। यहाँ पर राक्षस-निवास के अभिप्राय
से ही राम पञ्चवटी में पर्णशाला निर्माण कर रहने का कौतुहल प्रकट करते हैं अत
मुख्य फल राक्षसवध की सिद्धि के लिये औत्सुक्य-वृत्ति का निर्देश किया गया है।

यत्न—कार्य-व्यापार की दूसरी अवस्था 'यत्न' है 'प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽति-
तरान्वितः' अर्थात् मुख्य फल की प्राप्ति न होने पर, उसे प्राप्त करने के लिये तेजी के
साथ जो व्यापार या चेष्टा होती है, उसे प्रयत्न कहते हैं। इस नाटक के द्वितीय
अङ्क में शूर्पणखा का नाक-कान काटना 'प्रयत्न' है क्योंकि यहीं से राम का राक्षसों
के साथ शत्रु-भाव उग्र होने लगता है।

प्राप्त्याशा—यह कार्य व्यापार की तीसरी अवस्था है। "उपायापायशङ्काभ्यां
प्राप्त्याशा प्राप्तिसंभवः"। अर्थात्—जहाँ उपाय तथा विघ्न की आशंका के कारण
फलप्राप्ति के विषय में कोई ऐकान्तिक निश्चय नहीं हो पाता वहाँ प्राप्त्याशा
नामक अवस्था होती है। यहाँ पर मायामृग के वध के द्वारा राक्षस-विनाश के
लिये किए गये उद्योग के बीच में ही राम के रूप में मृत मृग को देख कर राक्षस-
विनाश के प्रति लक्ष्मण शंकित हो जाते हैं। यहाँ पर राक्षस-विनाश की आशा
सन्दिग्ध हो गयी है किन्तु राक्षसी-माया के पर्दाफास होने तथा शूर्पणखा की
क्षमा-याचना से पुनः राक्षसवध की आशा बँध जाती है अतः यह प्रसंग
प्राप्त्याशा है।

नियताप्ति—यह कार्य-व्यापार की चौथी अवस्था है। इसमें सफलता की संभा-
वना निश्चित हो जाती है। "अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता"। अर्थात्—जब

विघ्न के अभाव के कारण फल की प्राप्ति निश्चित हो जाय तब नियताप्ति नामक अवस्था होती है। प्रस्तुत नाटक में हनुमान् का संदेश लेकर सीता के निकट आना 'नियताप्ति' है, क्योंकि हनुमान् के मुख से सीता के प्रति "राक्षसान् विनाश्य त्वां पुनरानेष्यामि" राम के इस सन्देश से राक्षस-वध का निश्चय हो जाता है।

फलागम—यह कार्य-व्यापार की पाँचवीं प्रमुख अवस्था है। "समग्रफल-सम्पत्तिः फलयोगो यथोदितः" अर्थात्—समस्त फल की प्राप्ति हो जाने पर फलागम होता है। प्रस्तुत नाटक में रावण-वधपूर्वक सीता-प्राप्ति फलागम है। इस प्रकार कार्यव्यापार की अवस्थाओं का सम्बन्ध नायक के क्रियाकलापों के साथ होता है।

सन्धि-पञ्चक

मुखसन्धि—'बीज' और 'आरम्भ' के संयोग से मुखसंधि बनती है। प्रस्तुत नाटक में प्रथम अङ्क के प्रारंभ में ज्यारोपेण' इत्यादि के माध्यम से बीज-प्रतिपादन के द्वारा और द्वितीय अङ्क के प्रारंभ में पञ्चवटी में राक्षस-निवास के प्रति राम की उत्सुकता के प्रदर्शन के द्वारा प्रथम अङ्क के आरम्भ से द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ तक मुखसंधि है।

प्रतिमुख-संधि—विन्दु और यत्न के संयोग से प्रतिमुख-संधि का निर्माण होता है। प्रस्तुत नाटक में मुख-संधि में प्रतिपादित राक्षस-वध का उपाय द्वितीय अङ्क में शूर्पणखा के कर्णनासिकच्छेदन के द्वारा कुछ प्रकट हुआ किन्तु पञ्चवटी में राक्षस के नहीं आने से अपूर्ण ही रहा अतः द्वितीय अङ्क में प्रतिमुख-संधि है।

गर्भ-सन्धि—तृतीय अङ्क में जानकी-हरण से रावण के साथ राम की शत्रुता बढ़ गयी अतएव रावण-वध के उपाय के प्रति राम दृढ़ हो गये, अतः पूर्व की अपेक्षा उपाय के उद्भिन्न होने के कारण तृतीय अङ्क में गर्भ-सन्धि है।

विमर्श—यह संधि प्रस्तुत नाटक के चतुर्थ अङ्क से लेकर षष्ठ अङ्क तक है। रावण से अपहृत सीता की रक्षा के लिये उद्योग करते हुये जटायु का प्राणान्त रावणवध के प्रति कारणरूप से प्रदर्शित किया गया है। साथ ही रावण से त्रस्त सीता के पास हनूमान् के आगमन से रावण-वध का उपाय तथा निश्चय स्पष्टतः प्रतिपादित होने के कारण यहाँ तक विमर्श-संधि है।

निर्वहण—प्रथम अङ्क में बीजरूप से राक्षस-वध के प्रति नायकपक्ष का उत्साह प्रदर्शित किया गया है। तदुत्तर रावणवध के बाद सीता राम के पास लायी गयी किन्तु चारित्रिक-संदेह के कारण तिरस्कृत हुई। उस समय सीता की अग्नि-प्रवेशरूप अद्भुद् घटना के प्रतिपादन तथा देवताओं एवं देवर्षि नारद के साक्ष्य के आधार पर सीता-ग्रहण के द्वारा समग्रफल की प्राप्ति से निर्वहण-संधि

है। यह सन्धि सप्तम अंक में है। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु के प्रकृति-पञ्चक, अवस्था-पञ्चक और संधि-पञ्चक का विवेचन किया गया।

कुछ लोग प्रस्तुत नाटक के प्रथम तथा द्वितीय में मुख, तृतीय में प्रतिमुख, चतुर्थ तथा पञ्चम में गर्भ, षष्ठ में विमर्श तथा सप्तम में निर्वहण-संधि मानते हैं।

रस—प्रस्तुत नाटक के रस के सम्बन्ध में सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है क्योंकि इसमें मतवैभिन्न्य दृष्टिगोचर होता है। कुछ इतिहासज्ञ समीक्षक इस नाटक का रस 'आश्चर्य' मानते हैं। उनके इस विचार का आधार प्रस्तुत नाटक में कतिपय अद्‌भुद घटनाओं का घटित होना तथा शीर्षक-योजना है। मैं कुछ दूसरा ही सोचता हूँ।

आश्चर्यचूडामणि एक नाटक है। साहित्य-शास्त्र के अनुसार नाटक का प्रधान-रस वीर अथवा शृङ्गार होता है—एको रसोऽङ्गी कर्तव्यो वीरः शृंगार एव वा" (दश०) साथ ही रसविचार का प्रधान केन्द्र नाटक का मुख्यफल होता है। नायक द्वारा अन्तिम फल के रूप में जिस रस का आस्वादन होता है वही रस उस नाटक का प्रधान रस माना जाता है। अतः नाटक के मुख्य उद्देश्य तथा नायक के समस्त क्रियाकलापों के साथ ही रस-सम्पत्ति के आधार पर मुख्यरस का निर्णय होना चाहिये।

प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु के पूर्वनिर्दिष्ट प्रकृति-पञ्चक, अवस्था-पञ्चक और संधि-पञ्चक के विवेचन से वीररस की सम्पत्ति का प्राधान्य प्रतीत होता है। आश्चर्य-रस को उस अंगी वीर-रस का पोषक अङ्ग-रस मानना चाहिये। प्रस्तुत नाटक का मुख्यफल रावण-वध के अनन्तर सीता-प्राप्ति है। राम नायक हैं तथा रावण प्रतिनायक। सीता नायिका हैं और शूर्पणखा प्रतिनायिका। वीर-रस का आलम्बन-विभाव रावण तथा आश्रय राम हैं। राम के हृदय में राक्षस-कुल के विनाश करने का 'उत्साह स्थायीभाव है। नाटक के कथानक, घटनाचक्र तथा फल-प्राप्ति से वीर-रस ही प्रधानरस के स्थान को प्राप्त करने का अधिकारी है।

जटायु-रावण-युद्ध-चित्रण वीर-रस का उदाहरण है। आश्चर्यचूडामणि के प्रभाव से रावण के कपट-वेश के उद्घाटन में अंगभूत अद्‌भुद्-रस है। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक का प्रधान रस वीर और सहायक रस के रूप में अद्‌भुद् को मानने में कोई शास्त्रीय-आपत्ति नहीं है।

रचना-शैली—नाटककार की रचना-शैली कालिदास की सुकुमार-शैली की छाया से अनुप्राणित है। इसमें वैदर्भी-रीति में प्रवाहपूर्ण गद्यपद्य-रचनाबन्ध की प्रधानता है। नाटक की भाषा प्रसादगुण के प्रवाह से प्रक्षालित है। शब्दाडम्बरों की विकट-बन्धता का सर्वथा त्याग किया गया है। कहीं भी दुरूह, सन्दिग्ध तथा

अति समस्त-वाक्यों का विन्यास दृष्टिगोचर नहीं होता। सरल गद्यपद्य-रचना द्वारा मनोहारी चित्रविधान सहृदयों के हृदय के आकर्षण का केन्द्र बना रहता है। प्रसाद तथा माधुर्य गुणों के माध्यम से अर्थ-बोध का सफल प्रयास नाटककार को विशेष कोटि का कवि सिद्ध करता है। आश्रमवर्णन नितान्त स्वाभाविक है। कथोपकथन की स्वाभाविकता, पद्य की कमनीयता, अलङ्कारों का नैसर्गिक समावेश तथा छन्दों की विविधता नाटककार के कविहृदय का परिचायक है।

यह नाटक वर्णनप्रधान घटना-चक्रों का आधार माना जा सकता है। मूलकथा के परिवेश में नाटककार प्रारंभ से अन्त तक विस्मयोत्पादक घटना-चक्रों से दर्शकों के मानस को सतत उत्कण्ठित करने में सफल हुआ है। वियोग व्याकुल प्रवासी प्रिय की किसी वस्तु को प्राप्त कर विरही व्यक्ति कितना उतावला हो सकता है इसका उदाहरण अशोकवाटिका में राम की अँगूठी-प्राप्ति के बाद सीता की अवस्था का हनूमान् द्वारा हृदयग्राही वर्णन है—

आरोपयत्यलकमानयति स्ववक्त्रं
भूयः समाश्रयति बाहुलतोपपीडम् ।
प्रत्येकमर्पयति चाङ्गुलिपल्लवेषु
ध्यानाधिकस्तिमितमार्द्रमवेक्षते च ॥ —६।१४

इसके अतिरिक्त भावाभिव्यक्ति की तीव्रता में कहीं-कहीं व्यञ्जनात्मक शैली का पुट भी मिलता है। मारीच विवश हो राम के आश्रम के समीप पहुँच कर अपनी मृत्यु के साथ ही व्यञ्जना द्वारा अपने पार्थिव शरीर के प्रति विरक्ति, राम के प्रति दृढ़ भक्ति तथा रावणादि के अवश्यम्भावी विनाश की अभिव्यक्ति करता है। यथा—

रामाभिधानस्य परस्य पुंसः शरव्यमापाद्य शरीरमेतत् ।
रक्षांसि सर्वाणि यमस्य लोकं प्रविश्य पूर्वं प्रतिपालयामि ॥—३।७

इनके अतिरिक्त राम और लक्ष्मण के रावण के लिये शूर्पणखा के माध्यम से भेजे गये रणनिमन्त्रण-परक श्लोकों में व्यञ्जना का पर्याप्त संकेत मिलता है।

नाटक में नीतिविषयक भावनाओं का भी यत्र-तत्र समावेश किया गया है। मारीचाश्रम में ऋषि दृष्टान्त द्वारा खल की प्रकृति का चित्रण नितान्त सुन्दर है। यथा—

असतां सहजो भावश्छन्नः केनाऽपि हेतुना ।
संस्कार इव बीजानां फलेन सह जायते ॥—३।४

नाटककार शक्तिभद्र भक्तिभाव से ओत-प्रोत नजर आते हैं। वे नाटक में यत्र-तत्र राम में ईश्वरत्व का प्रतिपादन विभिन्न पात्रों के द्वारा करते हैं। यहाँ तक

कि प्रतिपक्षी रावण के सहयोगी सारथि, अमात्य और मारीच के द्वारा भी रा
में ईश्वरत्व की स्वीकृति करायी है। अमात्य रावण से राम के विषय में क
रहा है—

> अधिवसन् गुरुशासनतो वनं रघुपतिर्न च केवलमानुषः।
> भुवनसंहरणोदयकारणं हरिरयं हरिदश्वकुलोद्भवः ॥—५।११

इसी प्रकार सप्तम अंक में दिव्यगन्धर्वों द्वारा भी राम और सीता में विष्णु और लक्ष्मी का प्रतिपादन किया गया है। कहीं-कहीं पर वर्णविपर्यय तथा लिङ्ग विपर्यय का उदाहरण भी मिलता है। मङ्गलश्लोक में 'मरकत' के स्थान मरतक का प्रयोग वर्णविपर्यय का तथा पञ्चम अङ्क की श्लोक-संख्या ३१ 'कराणि' शब्द का प्रयोग लिङ्गविपर्यय का उदाहरण है । कोषादि में 'कर' शब्द पुल्लिङ्ग है किन्तु यहाँ पर नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार 'मन्दोदरी के स्थान में 'मण्डोदरी' पाठ भी मिलता है।

नाटकीय संविधान की दृष्टि से यह उतना उन्नत कोटि का नाटक तो नहीं माना जा सकता है जितना अद्भुत घटनाविन्यास की दृष्टि से। अलङ्कारों गद्य-पद्य दोनों भागों में विशेषरूप से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह और अर्थान्तर न्यास का प्रयोग मिलता है। जहाँ तक छन्दोविधान की बात है उसमें प्रसिद्ध छन्दों के अतिरिक्त कालभारिणी और नर्दटक जैसे अप्रचलित छन्दों का प्रयोग यहाँ पर बहुतायत से किया गया है। इस प्रकार कथा तथा हृदयपक्ष की उपर्युक्त विशेषताओं के कारण नाटककार की सुन्दर कवित्वशक्ति का प्रस्तुत नाटक कमनीय उदाहरण है। 'उत्तररामचरित' के बाद राम के जीवनचरित पर लिखे गये नाटकों में इसका नाम आदर से लिया जाता है।

अभिनेयता—नाटककार की सबसे बड़ी सफलता उसके नाटक की अभिनेयता पर निर्भर करती है। दर्शकों को रङ्गमञ्च पर रसमग्न करा देना ही दृश्यकाव्य का परम प्रयोजन है। इस दृष्टि से विचार करने पर प्रस्तुत नाटक संस्कृत-नाटकों में सर्वाधिक सफल नाटक माना जाता है।

अभिनेयता की दृष्टि से यह प्रथमतः आकार में लघु है। अतएव अल्पकाल में ही इसका अभिनय भव है। इसके पात्रों की न्यूनता भी इसकी अभिनेयता में अधिक सहायक सिद्ध हुई है। इसमें वन्य-दृश्यों की अधिकता है अतएव दृश्य-विधान की मनोरम झांकी दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र बनी रहती है। पञ्चवटी, अशोकवाटिका और समुद्रतट पर ही नाटक की अधिकांश घटनायें घटित होती हैं। राजकीय वैभव के वातावरण से नाटकीय कथावस्तु को बचाया गया है जिससे दृश्यपरिवर्तन में विशेष कठिनाई नहीं होती।

प्रस्तुत नाटक में घटनाओं के तारतम्य को ध्यान में रख कर गोदावरी तट पर पर्णशाला-निर्माण, शूर्पणखा-विरूपण, सीताहरण, जटायुयुद्ध, अशोकवाटिका तथा सीता-शुद्धि जैसी हृदयस्पर्शी घटनाओं का ही रङ्गमञ्च पर दर्शन कराया गया है। शेष कथांश की सूच्य-कथा के रूप में सूचना दे दी गयी है। अंकों का विभाजन भी बड़ा ही मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। यथा—न्यून छन्दों वाले लघुकलेवरीय अङ्कों का संगठन इस प्रकार कि अधिक से अधिक दो घंटे में हो नाटक का अभिनय हो सकता है।

दर्शकों के हृदय को लुभाने-रसाने के लिये कथावस्तु का इस प्रकार संगठन किया है कि दर्शकों की कुतूहल-वृत्ति सदा सजग रहती है। व्यर्थ वाग्जाल से रहित तथा लम्बे कथोपकथन के अभाव के कारण प्रसादता की इतनी प्रधानता है कि सर्वसाधारण के लिये भी यह नाटक बोधगम्य हो गया है। इसमें अलौकिक पात्रों की योजना इसलिये नहीं मिलती है कि दर्शकों का नाटकीय पात्रों के साथ साम्य स्थापित हो सके। इस प्रकार उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रस्तुत नाटक सर्वथा अभिनय के योग्य सिद्ध है।

आश्चर्य चूडामणि के उपर्युक्त विहङ्गम विश्लेषण से इसकी उपादेयता कहाँ तक आँकी जा सकती है, इसका विचार तो पाठक तथा प्रेक्षकवर्ग स्वयं कर सकते हैं। मैंने तो केवल इसके अन्तर्बाह्यपक्ष का पर्यवेक्षण प्रस्तुत करने का दुःसाहसमात्र किया है। प्रस्तुत आलोचना की कसौटी पर इसकी उपयोगिता का यथार्थ मूल्याङ्कन गुणैकपक्षपाती विद्वान् समीक्षक स्वयं भी कर सकते हैं।

अन्त में रामचरितपरक इस दृश्यकाव्य की शाब्दिक-अर्चना के कुछ प्रसून मर्यादापुरुषोत्तम राम की सेवा में अर्पित कर अपने जीवन के श्रेयःपक्ष के उच्चयन की धृष्टता में भी आत्मकल्याण के द्वारा जीवन की सार्थकता चाहता हूँ। अस्तु—

कथासार

प्रथम अङ्क

नान्दीपाठ के बाद सूत्रधार नटी को बुला कर यह सूचना देता है कि दक्षि देश के निवासी महाकवि शक्तिभद्र विरचित 'आश्चर्य चूडामणि' नामक नाटक सभासद अभिनय देखना चाहते हैं। क्या दक्षिण दिशा में भी नाट्य-प्रबन्ध संभ है? नटी की इस आशंका का निराकरण करते हुए सूत्रधार उसे यह समझाता कि गुणोत्पत्ति में कोई दिशाविशेष कारण नहीं होता। किसी भी दिशा में कि भी प्रकार का गुण संभव है। इसी प्रसंग में सूत्रधार यह भी निर्देश करता है प्रस्तुत नाटक के अतिरिक्त शक्तिभद्र के द्वारा रचित 'उन्माद-वासवदत्ता' प्रभृ अनेक काव्य लोक में प्रसिद्ध हो चुके हैं। अब सूत्रधार प्रस्तुत नाटक के अभिन के लिये उद्यत होता है किन्तु उसी समय नेपथ्य में धनुष की टङ्कार सुनाई पड़त है। उसे सुनकर राम के लिए पर्णकुटी बनाते हुये लक्ष्मण के प्रवेश की सूचन देकर सूत्रधार चला जाता है। प्रस्तावना समाप्त।

लक्ष्मण सपत्नीक राम के निवास योग्य पर्णकुटी बनाने में व्यस्त हैं। पर्णकु में राम सुखपूर्वक विश्राम करें, अतएव अपनी धनुष-टंकार से हिंसक पशुओं दूर भगाते हैं। नूतन किसलयों से शय्या-निर्माण कर ज्यों ही राम को कुट निर्माण की सूचना देने का उपक्रम करते हैं, इतने में ही सुन्दरी रमणी का रू धारण कर शूर्पणखा सामने आ जाती है। जंगल में इतनी सुन्दरी रमणीमूर्ति सहसा देख कर लक्ष्मण अचरज में पड़ जाते हैं। शूर्पणखा लक्ष्मण के समक्ष लज्ज का अभिनय करती हुई प्रणय-निवेदन करती है। लक्ष्मण उसके प्रणय-निवेदन उपेक्षा कर देते हैं। शूर्पणखा लक्ष्मण के उपेक्षाभाव को अनुचित बता कर य कहती है कि—"आर्य राम आपको मुझे जीवन-संगिनी बनाने का आदेश दे हैं"। लक्ष्मण विनम्रतापूर्वक उसे पत्नीरूप में स्वीकार करने में अपनी असमर्थत प्रकट करते हैं, क्योंकि ऐसा करने से उनकी तपस्या और राम की सेवा में बाध होगी। किन्तु शूर्पणखा प्रेम का जाल फैलाये रहती है। वह लक्ष्मण को आकृ करने का बहुत प्रयास करती है। लक्ष्मण इस बला को टालने के लिए राम के पर्णकुटी-प्रवेश के बाद उससे मिलने का बहाना करके किसी तरह छुटकार पाते हैं।

मर्यादापुरुष राम सीता के साथ मधुर संलाप कर रहे हैं। वार्ता-प्रसंग में वे अयोध्या में निवास करने की अपेक्षा वनवास को अधिक प्रश्रय देते हैं। वे प्रकृति की गोद में ही राजसी सुख का अनुभव करते हैं। उन्हें विकसित पुष्प-वृक्षों से सुशोभित वनभूमि में उद्यानसुख, मेघमाला के समान नीले पर्वतों में क्रीडापर्वत का विहार और हिमकण-सम्पृक्त शीतल पवन में ही व्यजनवायु का अनुभव होता है। सीता राम के विचारों में अपनी सहमति प्रकट करती हैं। इसी समय लक्ष्मण उनके पास आते हैं। वे युगल-जोड़ी को देखकर विधाता के कार्य की निन्दा और कैकेयी को उपालम्भ देते हैं। लक्ष्मण राम से पर्णकुटी चलने का आग्रह करते हैं। सीता के साथ राम पर्णकुटी चल पड़ते हैं और मार्ग में कैकेयी के उपकार का वर्णन करते हैं। कैकेयी के द्वारा प्रदत्त वनवास को भी उपकारपक्ष में लाने वाले राम के हृदय की महानता की लक्ष्मण मन ही मन प्रशंसा करते हैं किन्तु कैकेयी के इस निन्दित कार्य के प्रति अपना असंतोष प्रकट करते हैं। राम लक्ष्मण के आशय को समझ कर माता की निन्दा करने के लिए लक्ष्मण को फटकारते हैं। वे कैकेयी के प्रति आदरभाव रखने का लक्ष्मण को उपदेश देते हैं। जब लक्ष्मण पिता के प्राणत्याग का कारण कैकेयी को बताते हैं तो राम उनके विचार का खण्डन करते हुये राजा के प्राणनाश में श्रवणकुमार के माता-पिता के शाप के रहस्य का उद्घाटन करते हैं। इस प्रकार बातें करते हुए राम पर्णकुटी में प्रवेश करते हैं। पर्णकुटी की सुन्दरता देख कर राम लक्ष्मण के कर्म-कौशल की प्रशंसा करते हैं। सीता उसमें राजमहल के आनन्द का अनुभव करती हैं। राम सीता को एकान्त में विश्राम करने की सलाह देते हैं। इस प्रकार दोनों रङ्गमञ्च से चले जाते हैं।

द्वितीय अङ्क

उसके बाद लक्ष्मण से तिरस्कृत शूर्पणखा सुंदर और सुकुमार वेष में राम के समीप आती है। उस समय राम सीता को यह कहते हैं कि पञ्चवटी में राक्षसों का निवास सुना जाता है किन्तु यहाँ तो वैसा कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता। सीता भी जंगल की अचरज भरी बातें राजमहल में रहने वालों को सुनाने की उत्कंठा व्यक्त करती हैं। उसी समय शूर्पणखा राम को प्रणाम करती है। राम लक्ष्मण के द्वारा उसकी स्वीकृति की जिज्ञासा करते हैं। शूर्पणखा अपने प्रणय की असफलता की सूचना देती है। राम पुनः उसे लक्ष्मण के पास जाने का आग्रह करते हैं, किन्तु अब प्रणयकुपिता शूर्पणखा लक्ष्मण के पास जाने को तैयार नहीं होती। वह राम के ही पास रहने का हठ करती है। राम उसे अपने एकपत्नी-

व्रत का रहस्य समझाते हैं, किन्तु वह अपने हठ पर दृढ़ रहती है। किसी तरह समझा कर राम उसे पुनः लक्ष्मण के पास भेजते हैं। कोमल और उदारहृदय जानकी को शूर्पणखा के प्रति राम का यह उपेक्षाभाव अच्छा नहीं लगता। राम अपने कार्य के औचित्य को समझा कर सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि 'जिस प्रकार अयोध्या में तुम्हारा आभूषणमण्डित सौन्दर्य मेरे नेत्रों को आनन्दित करता था। उसी प्रकार वनवास काल में भी तुम्हारा सौन्दर्य अलंकार-विभूषित होकर मेरे नयनों को लुभा रहा है।' सीता प्रसन्न होकर अनसूया के इस वरदान का "पति की दृष्टि में तुम्हारे शरीर में संलग्न सभी वस्तु आभूषण ही प्रतीत होगी" स्मरण करती हैं। इतने में ही नेपथ्य में "ठहरो ठहरो राक्षसि"! की आवाज सुनाई पड़ती है। राम लक्ष्मण की आवाज पहचानते हैं। उसके बाद राक्षसी के रूप में शूर्पणखा और हाथ में तलवार लिये लक्ष्मण दिखायी पड़ते हैं। राम शूर्पणखा के विकट रूप को देख कर लक्ष्मण से उसका रहस्य पूछते हैं। सीता उसके विकराल रूप को देख कर डर जाती हैं। राम सीता को आश्वस्त करते हैं। शूर्पणखा मन ही मन राम और लक्ष्मण को खाकर सीता को रावण का उपहार बनाने की योजना बनाती है। राम और लक्ष्मण उसकी मायावी गतिविधि का वर्णन करते हुये आश्चर्य प्रकट करते हैं। बीच-बीच में सीता घबड़ा उठती हैं किन्तु राम उन्हें धीरज बँधाते रहते हैं। राम शूर्पणखा को आकाश से धराशायी करने का निश्चय करते हैं किन्तु लक्ष्मण उसे पकड़ने को आगे बढ़ जाते हैं। इतने में शूर्पणखा लक्ष्मण को पकड़ कर आकाश में उड़ जाती है। यह देख कर राम अत्यन्त दुःखी होते हैं। वे अपने धनुष को उठाकर लक्ष्मण को बचाने का निश्चय करते हैं। इतने में ही शूर्पणखा राम से रक्षा की भीख माँगती पृथिवी पर गिर पड़ती है। उसके पीछे लक्ष्मण भी आते हैं। राम प्रसन्न हो उन्हें छाती से लगा लेते हैं। शूर्पणखा रोती-चिल्लाती रावण और खर-दूषण की दुहाई देती है। लक्ष्मण के द्वारा शूर्पणखा की हत्या की अपेक्षा उसके नाक और कान काटने के कार्य का औचित्य राम स्वीकार करते हैं। शूर्पणखा उन लोगों को इस अपमान के लिए सावधान करती हुई खर-दूषण को इस घटना की सूचना देने चली जाती है। उसके चले जाने पर राम लक्ष्मण से उसके रहस्य को पूछते हैं। लक्ष्मण राम की सरलता और उदारता पर मुग्ध होकर उसके कपटवेष का रहस्योद्घाटन करते हैं। इस प्रकार तीनों उसी के सम्बन्ध में परस्पर बातें करते हैं। इसी बीच संध्याकाल की सूचना पाकर राम लक्ष्मण को विश्राम करने का आदेश देकर स्वयं संध्या की शोभा का अवलोकन करने में दत्तचित हो जाते हैं। इस प्रकार तीनों रङ्गमञ्च से चले जाते हैं।

तृतीय अङ्क

तीर्थयात्रा के मार्गश्रम से थका हुआ एक ऋषिकुमार प्रवेश करता है। वह राम के द्वारा खर और दूषण के वध से तपोवन में शान्ति के अनुमोदन के साथ ही भविष्य में लंकानिवासी राक्षसों के विनाश की भी संभावना करता है। उसे विश्राम के उपयुक्त स्थान के अन्वेषण-प्रसंग में एक आश्रम दिखायी पड़ता है। वहाँ पर वह आवाज लगाता है। उत्तर में उसका स्वागत किया जाता है। उसके बाद एक वृद्ध तपस्वी प्रस्थान के लिए उद्यत सा नजर आता है। आश्रम के सम्बन्ध में ऋषिकुमार के पूछने पर वृद्ध तापस यह बताता है कि यह मारीच का आश्रम है। मारीच के सम्बन्ध में ऋषिकुमार के जिज्ञासा करने पर वह तापस यह सूचना देता है कि खर-दूषण के वध के बाद शूर्पणखा से प्रेरित होकर रावण मारीच के आश्रम में आकर उसे राम को धोखा देकर सीताहरण के षड्यन्त्र में सहायता देने को कहता है। पहले तो मारीच राम के महत्व का वर्णन करके रावण को इस निन्द्य कर्म से विरत कराने का प्रयास करता है किन्तु क्रुद्ध रावण के हाथ से अपने प्राणान्त होने की अपेक्षा राम के पावन हाथों से मरकर मुक्त होने का निश्चय करता है। इस प्रकार रावण के उपद्रव से त्रस्त मुनिजन आश्रम छोड़ कर अन्यत्र चले गये हैं और वह भी चलने की तैयारी में ही है। विष्कम्भक समाप्त।

राम सीता के साथ विराजमान हैं। अनिष्ट की सूचना पाकर वे अयोध्या में भरत पर शत्रुभय, माताओं के प्राणत्याग और खर-दूषण की हत्या से क्रुद्ध अन्य राक्षसों की माया की आशंका करते हैं। इसी समय मारीच आश्रम में प्रवेश करता है और अपने कपटवेष से राम को लुभाने का निश्चय कर चला जाता है। तदनन्तर कवच धारण किए लक्ष्मण ऋषियों को निश्चिन्त होकर तपोवन में यथा-स्थान निवास करने की राम की प्रार्थना को निवेदित कर राम के पास लौट आये हैं। प्रसन्न होकर ऋषियों ने लक्ष्मण को कवच और राम तथा सीता के लिये अंगूठी तथा चूडामणि दिये हैं। ऋषिदर्शन के सम्बन्ध में राम के पूछने पर लक्ष्मण राम के प्रति ऋषियों के सन्देश को सुनाते हैं और उपहारस्वरूप दिये गये रत्नों को समर्पित करते हैं। इन रत्नों के धारण के फल का निर्देश करते हुए लक्ष्मण यह निवेदन करते हैं कि इन रत्नों के धारण करने वाले के शरीर से स्पर्श होने पर निशाचरों के कपटवेष का पर्दाफास हो जाता है। इस समाचार को सुन कर प्रसन्नतापूर्वक राम ऋषियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। वे चूडामणि को जानकी के केशकलाप में बाँध कर स्वयं अँगूठी पहन लेते हैं। उसी क्षण सहसा तपोवन का वातावरण बदल जाता है। इस परिवर्तन को देख कर सभी लोग

विस्मित हो जाते हैं। नेपथ्य में मुर्मुर शब्द होता है और सामने स्वर्णमृग दिखायी पड़ता है। राम सीता को उस स्वर्णमृग को दिखा कर उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। सीता उस मृगको पकड़ने का आग्रह करती हैं। राम आग्रह स्वीकार करते हैं और लक्ष्मणको सीताकी रक्षाका भार सौंप कर स्वयं मृग के पीछे हो लेते हैं। मृग अपनी मायावी चौकरी भरता रामको दूर ले जाकर आँखोंसे ओझल हो जाता है। इधर अवसर पाकर शूर्पणखा और सारथि के साथ रावण आश्रममें पहुँचता है। शूर्पणखा सीताहरणको ही रावण की मनोरथसिद्धि का द्वार बताती है। उसका तर्क है कि सीता रामका प्राण है। इसके अभावमें रामका जीवित रहना संभव नहीं अतः सीताहरण से शत्रुविनाशके साथ ही त्रिलोक-सुन्दरीका सहवास भी संभव है। आश्रममें शूर्पणखाके संकेतसे सीताको देखकर रावण आश्चर्यमें पड़ जाता है। त्रिभुवनमें अद्वितीय सुन्दरीको देखकर वह अपने नेत्रोंको सफल मानता है। रावण शूर्पणखासे लक्ष्मणका भी परिचय प्राप्त करता है। नेपथ्यमें शब्द सा सुनकर सीता मृगका अनुसरण करते हुये रामका अनुमान करती है। रावण रामको देखकर मूर्च्छित सा हो जाता है। सारथि रामको साधारण मनुष्य न मानकर लंकावासी राक्षसोंका संहारक अवतारविशेष मानता है। रावण आभूषणरहित भी सीताके स्वाभाविक सौन्दर्यपर आकृष्ट हो जाता है। सारथि रावणको पतिव्रता सीतामें आसक्त होनेसे रोकनेका प्रयास करता है किन्तु असफल हो जाता है। इस बीच सीताकी दायीं आँख फड़क उठती है और सीता लक्ष्मणको किसी भावी अनिष्टकी सूचना देती है। रामकी कुशलतामें सन्दिग्ध हो सीता रावण की चर्चा करती है। इतनेमें ही नेपथ्यमें "हा लक्ष्मण! मेरी रक्षा करो" यह शब्द सुनायी पड़ता है। मायामृगके इस शब्दको सीता रामकी आवाज समझकर लक्ष्मणको रामके पास जानेको प्रेरित करती हैं। लक्ष्मण रामके बलवीर्य पर विश्वास कर सीताको समझानेका प्रयास करते हैं किन्तु बीच-बीचमें मायावी शब्दको सुनकर सीता उत्तेजित हो उठती हैं और लक्ष्मणको भला-बुरा भी कह बैठती हैं और तब लक्ष्मण क्षुब्ध होकर सीताको अकेली छोड़ रामके पास चले जाते हैं। सीता भी रामकी आवाजका अनुसरण करती चल पड़ती हैं। इसी समय रावण सीताहरणके आयोजनसे रामका रूप धारण कर शूर्पणखाको सीता और सारथिको लक्ष्मणका रूप धारण करनेका संकेत करता है। शूर्पणखा रामको मार्गमें विलम्ब करनेके लिये चली जाती है और लक्ष्मणके वेषमें सारथि रथ लेकर पहुँच जाता है। इस प्रकार स्वाभाविक ढंगसे सीताहरणका मार्ग प्रशस्त हो जाता है। रावणके इशारेसे सूत सीतासहित रावणसे रथपर चढ़नेका आग्रह करता है। सीताको विश्वस्त करनेके लिये अयोध्यामें शत्रुभयसे भरतकी रक्षाके लिये शीघ्र वहाँ चलनेका प्रस्ताव करता है और रथप्राप्तिका कारण ऋषियोंकी प्रसन्नता

बताता है। ऋषियोंके द्वारा पहले भी आभूषण-दानकी घटनासे विश्वस्त होकर खुशी-खुशी सीता रथपर चढ़ जाती हैं। सभी लोग रथपर आरूढ़ हो चल पड़ते हैं। इधर शूर्पणखा सीताके वेषमें रामके मार्गमें खड़ी है। राम उसे सीता समझ कर मृगवध और उसके रामरूप धारण करनेकी सूचना देते हैं। उधर सीता रावणके साथ आकाश मार्गसे जा रही हैं। वे नीचे रामको देखकर उन्हें पहचानने का प्रयास तो करती हैं किन्तु सीताके रूपमें अन्य स्त्रीको साथ देखकर उन्हें भ्रम हो जाता है और वे रावणको ही राम समझ लेती हैं। इधर राम भी ऊपर सीता को देखकर पहचानते तो हैं किन्तु अन्य पुरुषके साथ उन्हें देखकर विश्वास नहीं होता। वे शूर्पणखाको ही सच्ची सीता समझ बैठते हैं। इस प्रकार एक साथ ही राम और सीता राक्षसी-मायाके शिकार बन जाते हैं। रावण सीताको प्रभावित कर चला जाता है। इधर शूर्पणखा भागनेका उपाय सोच रही है। उधर लक्ष्मण मृत मृगको राम समझकर विलाप कर रहे हैं किन्तु राम वहाँ यथासमय पहुँचकर उनके भ्रमका निवारण करते हैं और मारीचको पैरसे उठाकर ऊपर फेंकते हैं। रामके चरणस्पर्शसे मारीच अपने रूपमें पृथिवीपर धराशायी होता है। शूर्पणखा मारीचवधसे रोती है और राम जब उसे सान्त्वना देनेके लिये उसके आँसू पोछते हैं तो वह भी अपने रूपमें बदल जाती है। वहींपर राक्षसी कपटका भेद खुलता है। लक्ष्मणके तलवार खींचनेपर शूर्पणखा रामसे प्राणकी भीख माँगती है। राम उसे अभयदान देकर वास्तविक भेदकी बात पूछते हैं। शूर्पणखा रामसे सच्ची बात बता देती है। राम सब बातोंको जानकर रावणको अपने द्वारा विनष्ट होनेका संदेश भेजते हैं। लक्ष्मण भी रावणको युद्धका निमन्त्रण भेजते हैं। शूर्पणखा दोनों भाईका सन्देश लेकर चली जाती है। राम अपनी विवेकशून्यतापर पश्चात्ताप प्रकट करते हैं। लक्ष्मण रामको सीता-उद्धारके लिये उपाय करनेकी प्रेरणा देते हैं। दोनों चले जाते हैं।

चतुर्थ अङ्क

रामके रूपमें रावण तथा लक्ष्मणके रूपमें सारथि सीताको धोखा देकर लिये जा रहे हैं। रावण सीताको मार्गमें चिकनी-चुपड़ी बातोंसे बहलाता जा रहा है किन्तु रावणको राम समझती हुई भी सीताको एक आशंका सी होती है। रावण सीताके सौन्दर्यपर मुग्ध हो कामाभिभूत होकर कामुककी चेष्टा करता है। वह क्रमशः सीताके स्पर्श सुखका अनुभव करना चाहता है किन्तु उसका हाथ इस पापकर्ममें सहसा प्रवृत्त नहीं होता। अन्तमें साहस बटोरकर वह सीताके बिखरे केशकलापको अपने हाथोंसे सँवारनेका प्रयास करता है कि सीताके शिरमें विद्यमान चूड़ामणिके स्पर्शसे रावण सहसा अपने वास्तविक रूपमें आ जाता है। यहींपर

रावणके छद्मवेषका भेद खुल जाता है। रावणको देखकर सीता काँप उठती हैं। रावण उन्हें आश्वस्त करनेका निष्फल प्रयास करता है। सारथि रावणके छद्मवेष भेद खुल जानेका संकेत करता है। सीता भयभीत हो राम और लक्ष्मणको सम्बोधित कर रक्षाकी याचना करती हैं। अब सारथि भी अपने रूपमें आ जाता है। सारथिके भेद खुलनेपर सीता और भी घबड़ा जाती हैं और "हा आर्यपुत्र! हा कुमार! राक्षसके हाथसे मेरी रक्षा करें" इस प्रकार विलाप करने लगती हैं। इतने में ही नेपथ्यमें 'यह मैं आता हूँ', इस स्वरके साथ ही गृध्रराज जटायु प्रकट होते हैं। आते ही वे दशरथके मित्रके रूपमें अपना परिचय देकर रावणसे सीताको छोड़ देनेका आग्रह करते हैं, किन्तु हठी रावण उन्हें फटकार देता है। जटायु रावणपर क्रुद्ध होकर अपने कठोर चञ्चुसे प्रहार करते हैं। दोनोंमें भीषण युद्ध होता है। अन्तमें रावणके क्रूर शस्त्रप्रहारसे गृध्रराज आहत होकर अपनी इहलीला समाप्त करते हैं। सीता अपने इस अकारण सहायकके विनाशसे करुण क्रन्दन करने लगती हैं। रावण सारथिको रथ ले चलनेका आदेश देता है। सारथि रावणकी विवेकहीनतापर खेद प्रकट करता हुआ रथ लेकर चल पड़ता है। इस प्रकार मायाबलसे सीताहरण हो जाता है।

पञ्चम अङ्क

रावणके अन्तःपुरमें उसकी महारानी मन्दोदरी अपनी दासीके साथ बातें कर रही है। वार्ताप्रसंगमें वह अशोकवाटिकाकी चर्चा करती है और दासीके द्वारा रावणकी वन्दिनीके रूपमें सीताका समाचार सुनती है। उसने रातमें एक अशुभ स्वप्न देखा है जिसका वर्णन करती हुई दासीसे कहती है कि उसने स्वप्न यह देखा है कि समुद्रमें रहनेवाले क्षुद्रजन्तुओंने उसका जल पी लिया। फलस्वरूप कुछ देरके लिये समुद्र खाली पड़ गया। साथ ही एक अशुभ और विद्रूप स्त्रीने उसका आलिंगन किया है और उसने आभूषणमण्डिता सीताको अपने पतिके साथ 'पुष्पक' विमानपर चढ़ते हुए देखा है। दासी मन्दोदरीको सान्त्वना देती है। इसी बीच नेपथ्यमें वसन्तोत्सवकी घोषणा सुनाई पड़ती है। वह दासीको इसका पता लगाने भेजकर अपने मनमें इस घोषणाका प्रयोजन सीताको लुभानेका रावणका प्रारंभिक उपक्रम समझती है। दासी भी आकर इसी बातकी पुष्टि करती है और साथ ही यह भी सूचित करती है कि महाराज प्रदोषकालिक वेषमें सज्जित हो सीताके पास जानेको उद्यत हैं।

इस समाचारको सुनकर मन्दोदरी दासीके साथ अशोकवाटिका जाकर सीताके प्रति रावणका व्यवहार देखनेका निश्चय करती है।

रावण वर्षवरके साथ अशोकवाटिका जा रहा है। मदन-विह्वलताके कारण उसे

चन्द्रमामें सूर्यका भ्रम हो जाता है। वह अमात्य चित्रयोधीको बुलानेका वर्षवरको आदेश देता है। कामके आवेशमें वह प्रलाप कर रहा है। अमात्य आकर रावणकी कामदशा देखता है और उसे सुमार्गपर लानेका प्रयास करता है। रामके सम्बन्धमें रावणके पूछनेपर अमात्य सीताकी खोजमें वानर-सैन्यके सञ्चारकी सूचना देता है। रावण इसे मजाक समझता है। अमात्य रामको धनुपधारियोंमें अजेय बतलाकर उनके मनुष्यत्वमें विष्णुत्वका समर्थन करता है और कामदेवके वशीभूत रावणके देवविजयका उपहास करता है। वह रावणको धर्मार्थकामरूप त्रिवर्गप्राप्ति को परम लक्ष्य मानकर परदारागमन रूप गर्हित कर्मसे विमुख होनेका विचार देता है। रावण केवल कामोपासनाको स्वीकार कर उसकी बातोंकी अवहेलना कर देता है। वह रामके समाचारको जाननेके लिए गुप्तचर भेजनेका अमात्यको आदेश देता है। अमात्य आज्ञा पाकर चला जाता है। अब रावण वर्षवरके साथ अशोक-वाटिका पहुँच गया है। वहाँपर रामके ध्यानमें एकाग्रचित्त सीताको देखता है और सोचता है कि पूर्वपरिचयका प्रभाव सर्वत्र रहता है अतः रामके प्रेममें अनुरक्त सीताके ऊपर उद्यानशोभा और लंकाका ऐश्वर्यपूर्ण वातावरण अपना प्रभाव नहीं डाल पा रहे हैं। मन्दोदरी अपनी दासीके साथ लतामें छिपी है। रावण सीताके समीप जाकर अनुनयभरे शब्दों में अपना प्रणय निवेदन करता है। वह सीता को पटरानी बनाने का लोभ देता है। करबद्ध होकर अपने अन्तःपुरके साथ समस्त लंका नगरी के वैभव को सीता के चरणों में न्योछावर करने को उद्यत है। किन्तु सीता रावण के स्वर्ग को पाप कहकर ठुकरा देती हैं। वह राम के साथ नरक में भी रहना पसन्द करती हैं। सीता राम के द्वारा रावण के विनाश का निर्देश करती हैं। रावण अपने भुजबल की प्रशंसा कर सीता को अनुकूल करने के भगीरथ प्रयास में उनके चरणों पर गिरता है किन्तु उसके सभी प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध होते हैं। वर्षवर सीता को रावण के प्रणय को नहीं ठुकराने की सलाह देता है। सीता रावण को राम के चरणों की शरण में जाने को कहती हैं। राम की शरण में जाने की बात सुन कर रावण क्रुद्ध होकर तलवार खींच लेता है। वह सीता के पातिव्रत्य को चुनौती देकर उसे मार डालने की धमकी देता है। करुण-हृदया मन्दोदरी को यह सहन नहीं होता और वह दोनों के बीच में आ खड़ी होती है। महारानी को देख कर रावण लज्जित हो जाता है। इतने ही में स्नानवेला की सूचना पाकर रावण चला जाता है। इधर सीता निराश होकर अपने प्राणों को त्याग देने का निश्चय करती हैं।

षष्ठ अङ्क

लंका में प्रवेश कर हाथ में अंगूठी लिये हनूमान् अशोक-वाटिका की खोज में

इधर-उधर घूम रहे हैं। वे रावण की स्वर्णपुरी के वैभव का अवलोकन करते हैं घूमते फिरते अन्त में अशोक-वाटिका पहुँचते हैं और वहाँ पर सीता की खोज करते हैं। सम्पाति के द्वारा बतलाए सीसम वृक्ष के नीचे सीता को नहीं देख कर उनका हृदय आशंका करने लगता है। उन्हें सीताविनाश के सन्देह के साथ ही समस्त अयोध्या के अनिष्ट की आशंका उत्पन्न हो जाती है। वे अपने विषय में यह सोचते हैं कि किस प्रकार राम को यह हृदयविदारक समाचार सुनाया जायगा? अन्त में वे बान्धवसहित रावण को राम के पास ले जाकर अपने उत्तर दायित्व को पूर्ण करने का निश्चय करते हैं। इसी बीच उन्हें सीता का विलाप सुनाई पड़ता है। वे पेड़ के खोखले में छिप कर वहीं से धूलि-धूसरित सीता को देखते हैं। सीता चन्द्रमा को उलाहना देकर विलाप कर रही हैं और अरुन्धती को सम्बोधित कर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देना चाहती हैं। अब हनूमान् उचित अवसर जान कर सीता के समक्ष प्रकट होते हैं। वे राम के दूत के रूप में अपना परिचय देकर सीता को प्रणाम करते हैं। इस घटना से आश्वस्त होकर सीता हनूमान् से राम के साथ सम्बन्ध होने का कारण पूछती हैं। इसी प्रसंग में हनूमान् राम और सुग्रीव की मित्रता, वालिवध के बाद सुग्रीव का राज्याभिषेक और उनके द्वारा सीता-अन्वेषण के लिये वानर-सैन्य को सभी दिशाओं में जाने के आदेश का वृत्तान्त सविस्तर सुनाते हैं। राम के सम्बन्ध में सीता के जिज्ञासा करने पर हनूमान् राम के सौन्दर्य, बल और पराक्रम का वर्णन करते हैं। साथ ही सीतावियोग में राम के विलाप और विकलता का भी वर्णन करते हैं। वे राम के द्वारा सीता के लिये अंगूठी देने की चर्चा करते हैं और सीता को समर्पित करते हैं। अंगूठी पाकर सीता निहाल हो जाती हैं। वे उसका आलिंगन कर अपने सम्पूर्ण अंगों में धारण करने का उपक्रम करती हैं। अंगूठी पर अंकित नामाक्षर को पढ़ती हैं। प्रतिदान में चूडामणि देने का विचार करती हैं। अब सीता राम के पहचानपरक वचनों को सुनाने का हनूमान् से आग्रह करती हैं। हनूमान् सीता को राम का सन्देश तथा सीता के साथ एकान्त-मिलन का भेद सुनाते हैं। इन बातों को सुन कर सीता की खुशी की सीमा नहीं रहती है। वे हनूमान् को इसके लिये बहुत साधुवाद देती हैं। सीता के आग्रह करने पर हनूमान् समुद्र-लंघन और लंकाप्रवेश का वृत्तान्त निवेदन करते हैं। इसी प्रसंग में वे यह भी कहते हैं कि जटायु के भाई सम्पाति के द्वारा आपका पता लग सका है और उन्हीं के निर्दिष्ट मार्ग से हमें आपका दर्शन मिल सका है। सीता सम्पाति के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हैं और अपने कष्ट के अन्त होने की अवधि की सीमा की जिज्ञासा करती हैं। उत्तर में हनूमान् सीता के लिये राम का यह सन्देश सुनाते हैं—"हे सीते! धनुष को झुकाकर हमने पहले तुम्हें तुम्हारे पिता के घर से

ग्रहण किया था। पुनः धनुष चढ़ा कर ही तुम्हें प्राप्त करूँगा"। राम के इस सन्देश को सुन कर सीता प्रफुल्ल मन से राम के लिये हनूमान् को चूडामणि देकर विदा करती हैं। राम के द्वारा उनके उद्धार का विश्वास दिला कर हनूमान् प्रसन्न होकर चल पड़ते हैं। सीता उनके मंगल की कामना करती हैं।

सप्तम अङ्क

एक विद्याधर अपनी प्रियतमा के साथ मधुर संलाप करता रंगमञ्च पर आता है। उसे नेपथ्य में घोषणा सुनाई पड़ती है। उस घोषणा को सुन कर विद्याधर सभासदों को राम के द्वारा राक्षसकुल-संहार की सूचना देकर चला जाता है। तदनन्तर रामविजय के उपलक्ष्य में भेरी बजाते हुये जाम्बवान् रङ्गमञ्च पर आते हैं। तदुत्तर युद्धवेष का परित्याग कर राम लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीव के साथ रङ्गमञ्च पर पधारते हैं। राम विभीषण से लंका का राज्य ग्रहण कर प्रजा-रक्षण में तत्पर होने का आग्रह करते हैं। विभीषण के अरुचि प्रकट करने पर राम आयी हुई लक्ष्मी का तिरस्कार नहीं करने का उनको उपदेश देते हैं। वे रावण के द्वारा उन्मूलित धर्म को पुनः लङ्का में प्रतिष्ठित करने का विचार देकर सुग्रीव को विभीषण के साथ लंका की व्यवस्था करने भेजते हैं। इस प्रकार राम विभीषण को लङ्का के राज्य पर प्रतिष्ठित कर संतोष की साँस लेते हैं। इसके बाद सुग्रीव राम के पास लौट कर विभीषण का यह निश्चय निवेदन करते हैं कि जब तक जानकी राम के पास न आ जायँ, वे लंका में नहीं प्रवेश करेंगे। विभीषण के इस निश्चय से सहमत होकर राम सुग्रीव को सीता को ले आने का आदेश देते हैं। आदेश पा सुग्रीव चले जाते हैं।

राम सीता के शुभागमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्हें सीता की चारित्रिक शुद्धता के सम्बन्ध में जनमत की आलोचना का ध्यान हो जाता है। लक्ष्मण राम को सीता की शुद्धता की परीक्षा लेने का परामर्श देते हैं। राम के हनुमान् की खोज करने पर उन्हें लक्ष्मण के द्वारा यह ज्ञात होता है कि हनूमान् युद्ध-भूमि में वानर-सैन्य का उद्धार कर रहे हैं। इसी समय सीता के आने की सूचना मिलती है। राम सीता के स्वागत के लिये उत्सुक हो जाते हैं। सीता सुग्रीव के साथ राम के पास आती हैं। उनको अपने चरित्र के सम्बन्ध में लोकमत और राम के विचार क्या हैं, इस विषय पर अन्तर्द्वन्द्व होता है। राम सीता का अभि-नन्दन तो करते हैं किन्तु ज्यों ही उनकी दृष्टि सीता पर पड़ती है, वे अपना मुँह फेर लेते हैं। तत्क्षण लक्ष्मण को हनूमान् को बुलाने का आदेश देते हैं। पुनः राम सीता के आभूषण-मण्डित स्वरूप को सुग्रीव को दिखाकर उनके पातिव्रत-धर्म पर

आक्षेप करते हैं। सीता इस अप्रिय प्रसंग से खिन्न हो जाती हैं और अनसूया के वरदान को अभिशाप समझती हैं। बाद में लक्ष्मण के साथ हनूमान् आते हैं और सीता के रूप को देख कर विस्मित हो जाते हैं। सबों को सीता के चरित पर संदेह हो जाता है। सीता कुछ कहना चाहती हैं किन्तु उनकी बातों को सुनने को कोई राजी नहीं होता। लक्ष्मण शास्त्रीय दृष्टि से सीता के अपराध के उपयुक्त दण्ड देने का प्रस्ताव रखते हैं। उसका हनुमान् समर्थन करते हैं। इस परिस्थिति में सीता स्वयं अग्नि में प्रविष्ट होने की राम से आज्ञा माँगती हैं। उन्हें अग्नि-प्रवेश की स्वीकृति मिल जाती है। राम के चरणों में नतमस्तक हो सीता लक्ष्मण के साथ चली जाती हैं। लोकमर्यादा की दृष्टि से राम सीता की अग्निपरीक्षा के औचित्य का समर्थन करते हैं। उसके बाद रोमाञ्चित शरीर से लक्ष्मण राम के पास आकर सीता के अग्निप्रवेश की अद्भुत घटना का वर्णन करते हैं। अग्नि-प्रवेश के समय अग्निदेव के प्रकट होने तथा देवताओं द्वारा पुष्पवृष्टि की भी चर्चा करते हैं। राम इस समाचार को सुन कर प्रसन्न हो जाते हैं। उसी समय नेपथ्य में दिव्य-गन्धर्व राम और सीता की विष्णु और लक्ष्मी के रूप में स्तुति करते हैं। तदुत्तर पुनः नेपथ्य से "देवताओं के आदेश से मैं नारद आ रहा हूँ" यह स्वर सुनायी पड़ता है। दोनों भाई नम्रतापूर्वक देवर्षि का अभिवादन करते हैं। नारद राम को लंका में सीता के पातिव्रत-धर्म के प्रभाव से देवगण तथा पितरों के आगमन की सूचना देकर उन्हें सभी का दर्शन कराते हैं। राम विरहावस्था में भी सीता के आभूषणमंडिता होने को उनकी चारित्रिक शुद्धता में सन्देह का कारण बताते हैं। अब नारद अनसूया-वरदान का रहस्य खोलते हैं। रहस्य का उद्घाटन करते हुए नारद यह कहते हैं कि अनसूया के वरदान से सीता के शरीर में संलग्न सभी चीजें तुम्हारी दृष्टि में आभूषण ही प्रतीत होंगी। अब राम देवर्षि के वचन में श्रद्धा कर सीताचरित्र के सम्बन्ध में पूर्ण आश्वस्त हो जाते हैं। नारद जी राम को अयोध्या लौट जाने का देवताओं का आदेश सुनाकर लक्ष्मण से सीता को लाने का आग्रह करते हैं। नारद राम की महिमा का वर्णन करते हैं। अनन्तर लक्ष्मण के साथ सीता आकर राम की अभ्यर्चना करती हैं। राम उनके प्रति किये गये अपने व्यवहार के लिए दुःख प्रकट करते हैं। इसी समय राज्याभिषिक्त विभीषण आते हैं और लोगों के द्वारा सीता के प्रति उनके व्यवहार की निन्दा की सूचना देते हैं। इस समय राम को अपनी निन्दा से भी परम संतोष होता है। विभीषण राम को कुबेर का 'पुष्पक' विमान दिखा कर उस पर अयोध्या लौटने का आग्रह करते हैं। राम लक्ष्मण को सीता को रथ पर चढ़ाने का आदेश देते हैं किन्तु रथ को देख कर सीता चौंक उठती हैं। उन्हें रावण-माया का स्मरण हो जाता है। सीता के भाव को लक्ष्य कर राम उन्हें अंगूठी दिखा कर

विश्वस्त करते हैं। लक्ष्मण सीता से अपने अपराध को क्षमा करने की याचना करते हैं। नेपथ्य में देवगण राम और सीता का यशोगान करते हैं । देव-प्रस्थान से नारद राम को अयोध्या लौटने की प्रेरणा देते हैं। राम देवर्षि की आज्ञा शिरोधार्य कर जानकी से उनको प्रणाम करने का आग्रह करते हैं । देवर्षि को प्रणाम कर जानकी अपने को राक्षसी-माया से मुक्त समझती हैं। अब नारद राम से अपने प्रस्थान की सूचना देकर उनके अन्य कल्याण की जिज्ञासा करते हैं। सफलमनोरथ राम देवर्षि के उपकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर इस भरत-वाक्य की कामना करते हैं—इन्द्र की कल्याणवृष्टि के लिये यज्ञ हो, कामदेव कुमार्ग में अपने पुष्पबाण का प्रयोग न करे, राजागण प्रजा की रक्षा में तत्पर हों और अन्तःकरण में आलस्यादि दोष का निवारण करनेवाले विशुद्ध ज्ञान का संचार हो।

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१. राम	दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र।
२. लक्ष्मण	राम के छोटे भाई।
३. ऋषिकुमार	आश्रम में निवास करने वाला एक मुनिकुमार।
४. वृद्ध तापस	आश्रम निवासी एक तपस्वी ऋषि।
५. मारीच	सीताहरण में रावण का सहायक एक राक्षस।
६. रावण	लङ्का का राजा।
७. सूत	रावण का सारथि।
८. जटायु	दशरथ के मित्र एवं गृध्रराज।
९. वर्षवर	रावण के अन्तःपुर में रहने वाला उसका सहायक नपुंसक पुरुष।
१०. अमात्य	रावण का हितचिन्तक प्रधान मंत्री।
११. हनूमान्	लङ्का जाकर सीता का पता लगाने वाले राम के प्रधान सेवक।
१२. विद्याधर	देवयोनिविशेष में उत्पन्न, रावण-वध का सूचक।
१३. जाम्बवान्	रामविजय की सूचना देने वाले ऋक्षराज।
१४. विभीषण	रावण का रामभक्त लघुभ्राता।
१५. सुग्रीव	राम के मित्र तथा वानरों के राजा।
१६. नारद	परम भक्त तथा ज्ञानी देवर्षि।

स्त्री-पात्र

१. सीता	दशरथपुत्र-राम की धर्मपत्नी।
२. शूर्पणखा	रावण की बहिन मायाविनी राक्षसी।
३. मण्डोदरी	रावण की पटरानी।
४. चेटी	मण्डोदरी की दासी।
५. सौदामिनी	विद्याधर की स्त्री।

॥ श्रीः ॥

आश्चर्यचूडामणिः

संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याद्वयोपेतः

प्रथमोऽङ्कः

नान्द्यन्ते ।

(ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—

वीचीस्थाने सहस्रं मरतकपरिघस्पर्धि बिभ्रद्भुजानां

तेजोंऽशुकुलसम्भूतं रक्षोवंशविनाशकम् ।
साकेताकाशराकेशं रामचन्द्रं नमाम्यहम् ॥
वीणापाणिं नमस्कृत्य वाणीरूपां सरस्वतीम् ।
चूडामणे 'रमा' टीका 'रमाकान्तेन' तन्यते ॥

नान्द्यन्त इति ॥ नान्द्याः = आशीर्वचनात्मिकायाः स्तुतेः, अन्ते = समाप्तौ । ततः = नान्दीपाठानन्तरम्, सूत्रधारः = सूत्रं (कथासूत्रम्) धारयतीति सूत्रधारो नटाध्यक्षः, प्रविशति = रङ्गशालायां प्रवेशं करोति ।

सूत्रधार इति ॥ अथ तत्र भवान् दक्षिणदेशाऽलङ्कारभूतशक्तिभद्रनामा कविवरो मर्यादापुरुषोत्तमस्य भगवतो रामस्य वनवासादारभ्य लंकाविजयान्तश्चरितमवलम्ब्य 'आश्चर्यचूडामण्यभिधानं नाटकं कर्तुकामो निर्विघ्नपूर्वकं प्रारिप्सितसमाप्तिफलकमाशीर्वादं सूत्रधारमुखेन नाट्यादौ सामाजिकान् प्रति 'वीचीस्थाने' इत्यादिना निबध्नाति । अत्र च "नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः" इति कथनेन अस्मादाशीर्वादात् प्रागेव देवतास्तुतिरूपाया नान्द्याः कृतत्वेन कथासूत्रधारस्यैवाऽयमाशीर्वादो न नान्दीसूत्रधारस्येति सुधीभिरवगन्तव्यम् ।

वीची स्थाने इति ॥ मरतकपरिघस्पर्धि भुजानाम् सहस्रम् वीचीस्थाने बिभ्रत्,

---

शारदे ! तेरी प्रथम फिर गुरु-चरण की वन्दना ।
कर रहा हूँ 'मालती' से विज्ञजन की अर्चना ॥

सूत्रधार—क्षीरसागर के एक भाग में दूसरे समुद्र की भाँति सोये हुए विष्णु भगवान्

उत्फेनो हारजालैररुणरुचिरनन्ताहिरत्नप्रभाभिः ।
बिभ्राणः शङ्खमन्तश्चरमचरमनिर्वापणीयं च तेजः
पायाद्वः शार्ङ्गधन्वा शयित इव समुद्रैकदेशे समुद्रः ॥ १

हारजालैः उत्फेनः, अनन्ताहितरत्नप्रभाभिः अरुणरुचिः, शङ्खम् विभ्राणः, अन्तः चरम् अचरम् अनिर्वापणीयं तेजः च बिभ्राणः समुद्रैकदेशे शयितः अपरः समु इव शार्ङ्गधन्वा वः पायात् इत्यन्वयः । मरतकपरिघस्पर्धि = मरतकमयैः=हरिन्मणि निर्मितैः, (पन्ना इति लोके) परिघैः = परिघातनैः, (सींखचा इति लोके स्पर्धितुम् = तुलयितुं शीलं यस्य तत्, यद्यपि कोषादौ 'मरकत' इत्येव दृश्य तथाप्यत्र देश-भेदात् वर्णविपर्ययाद् वा मरतक इत्यपि पाठो कथञ्चिद् भवेदपि अत एव कविना 'मरतक' इति पाठो मूले कृतो भवेत् । भुजानाम्=बाहूनाम् सहस्रम् = दशशतानि, वीचीस्थाने = तरङ्गस्थाने, बिभ्रत् = धारयन्, हारजालैः मुक्तावलीसमूहैः, उत्फेनः = उत्कृष्टफेनः, अनन्ताहिरत्नप्रभाभिः = अनन्तस्य अहेः शेषस्य, समुद्रपक्षे अनन्तानाम् अहीनाम्, रत्नप्रभाभिः = रत्नविभाभिः, अरुण रुचिः = रक्तशोभः, शङ्खम् = कम्बु, बिभ्राणः । अत्रशङ्खशब्दो भगवद्भुजान्तरव र्तिनामायुधान्तराणामप्युपलक्षकः । समुद्रपक्षे शङ्खम् = निधिम् कम्बु च, समुद्रो हि शङ्खानां निधीनाञ्चोत्पत्तिस्थानम् । अन्तः = उदरे, चरमचरम् = चराचरात्म कजगत् (बिभ्राणः) समुद्रपक्षे चरम् = जङ्गमजलमानुषादिकम्, अचरम् = स्थावरं पर्वतादिकम्, अन्तः = हृदये, अनिर्वापणीयम् = अविनाश्यम्, नित्यमिति यावत्, तेजः = ब्रह्मज्योतिः, समुद्रपक्षे और्वाग्निम्, बिभ्राणः समुद्रस्य = क्षीर सागरस्य, एकदेशे = एकभागे, (शेषे) शयितः अपरः = अन्यः (शुद्धजलमयः) समुद्र इव = सागर इव (परिलक्ष्यमाणः) शार्ङ्गधन्वा = विष्णुः, वः = युष्मान्, पायात् = रक्षतु । स्रग्धरा वृत्तम् । तल्लक्षणं हि—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् । श्लिष्टोपमाऽलंकारः ॥ १ ॥

तुम लोगों की रक्षा करें, जो (भगवान्) तरङ्ग के स्थान में मरकतमणि की सींखचा से स्पर्धा करने वाली हजारों भुजाओं को धारण किये हैं, हार के समूह ही जिनके उत्कृष्ट फेन हैं, जो शेषनाग के रत्नों की प्रभा से लाल रङ्ग की शोभा को धारण किये हैं, जो अपने भीतर शङ्ख, चराचर संसार और अविनाशी तेज को धारण किए हैं ॥ १ ॥

विमर्श—इस मङ्गल-श्लोक में नाटककार ने भगवान् विष्णु की वन्दना की है । इसमें क्षीर-सागर के एक भाग में शेषनाग पर सोए हुये भगवान् विष्णु शुद्ध जलमय दूसरे समुद्र की भाँति प्रतीत हो रहे हैं । जिस प्रकार समुद्र में लहरें होती है, उसी प्रकार विष्णु के श्यामवर्ण की हजारों भुजायें हैं । जिस प्रकार समुद्र में शङ्ख, निधि तथा पर्वत रहते हैं,

(परिक्रम्य नेपथ्याभिमुखमलोक्य) आर्ये ! इतस्तावत् ।

(प्रविश्य नटी)

नटी—अज्ज ! इअं म्हि । (आर्य ! इयमस्मि ।)

सूत्रधारः—आर्ये !

अभिरञ्जनीं जनानां सहायसाध्यां गुरूपदेशेन ।
धुरमुद्वहामि गुर्वीं नृप इव भरतादिभिर्वोढाम् ॥ २ ॥

परिक्रम्येति ॥ विघ्नविनाशफलकमाशीर्वादं विधाय भारतीवृत्तेरङ्गभूताऽऽमुखप्रस्तावाय परिक्रमणम्, नेपथ्यम्=पात्रवेशपरिवर्त्तनस्थानम्, तदभिमुखम्=तस्यां दिशि, अवलोक्य=अवलोकनं विधाय, नाट्यप्रयोगसहायभूतां नटीं सम्बोधयति—आर्ये इति ॥

अभिरञ्जनीमिति ॥ जनानाम् अभिरञ्जनीम्, गुरूपदेशसहायसाध्याम्, भरतादिभिः ऊढाम्, गुर्वीं वा धुरम् नृप इव उद्वहामि, इत्यन्वयः । जनानाम्=सामाजिकानाम्, नृपपक्षे प्रजानाम्, अभिरञ्जनीम्=जनानुरागफलवतीम्, गुरूपदेशेन=गुरूणाम्=सेवाभिः प्रसादितानाम् महातीर्थानाम् उपदेशेन=शिक्षापूर्वकोपदेशेन, सहायसाध्याम् = सहायैः = तत्तत्पात्रोचितपाठगीतिगतिरसप्रयोगादिनिपुणैः, नृपपक्षे—अमात्यादिसहायभूतैः सह साध्याम्=निष्पाद्याम्, भरतादिभिः=नाट्यप्रयोगप्रवर्त्तकैः भरतप्रभृतिभिः, नृपपक्षे—भरताख्यप्रभृतिभिः नृपतिभिः, ऊढाम्=धारिताम्, (अत एव) गुर्वीम्=प्रयोगसाफल्येन गरीयसीम्, वा=च, (अत्र वाशब्दश्चकारार्थकः) धुरम्=नाट्यप्रयोगात्मकं भारम्, नृपपक्षे—राज्यभारम्, नृप इव=राजा इव, उद्वहामि=धारयामि । यथा अर्वाचीनो राजा प्राक्तनैः

उसी प्रकार भगवान् के उदर-प्रदेश में सम्पूर्ण चराचर विश्व व्याप्त है। जिस प्रकार समुद्र में वडवाग्नि है, उसी प्रकार भगवान् में नित्य ब्रह्मज्योति है। इस तरह भगवान् की समुद्र से उपमा दी गयी है।

(घूम कर और नेपथ्य की ओर देख कर) आर्ये। इधर आओ।

नटी—(रङ्गशाला में प्रवेश करके) आर्यपुत्र ! यह आयी।

सूत्रधार—आर्ये !

लोगों को आनन्दित करने वाले, उन उन पात्रों के उचित पाठ, गीत, गति और रसादि के प्रयोग से सम्पन्न होने वाले भरतादि ऋषि के द्वारा प्रयोग में लाए गये नाट्यप्रयोग के गुरुतर भार को मैं राजा की भाँति वहन करता हूँ ॥ २ ॥

नटी—अज्जस्स गरीअं दाव अहिआरं आआरो एव्व सूएदि (आर्यस्य गरीयांसं तावदधिकारं आकार एव सूचयति।)

सूत्रधारः—अथ किम्। सुन्दरि! ननु बहूनामसाधारणो दुर्गमः पन्थाः।

नटी—अज्ज! किं असाहारण ति पुच्छदि। (आर्य! किमसाधारणमिति पृच्छयते।)

सूत्रधारः—आर्ये! दक्षिणापथादागतमाश्चर्यचूडामणिं नाम नाटकम् अभिनयाम्रेडितसौभाग्यमभिलषाम इत्यार्यमिश्राणां शासनम्।

राजन्यैः भरतादिभिरूढां धुरमुद्वहति तथैवाहमपि नाट्यसम्प्रदायप्रवर्त्तकैर्भरतादिभिर्निर्दिष्टां नाट्यप्रयोगात्मिकां धुरमुद्वहामीति भावः। आर्या वृत्तम्। तल्लक्षणं हि "यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या॥" शिलष्टोपमाऽलङ्कारः॥ २॥

दक्षिणापथादिति॥ दक्षिणापथात् = दक्षिणदिशः, आगतम्=आयातम्, आश्चर्यचूडामणिम् = आश्चर्यकराणाम् = विस्मयोत्पादकानाम्, चूडामणिः = शिरोरत्नम् इति आश्चर्यचूडामणिः, नाटकाख्यनिबन्धनस्य संज्ञा। अथवा आश्चर्यभूतः विस्मयरूपः चूडामणिः यत्र प्रतिपाद्यत्वेन स्वीकृतः तन्नाटकम् = रूपकप्रधानमस्तीति शेषः। तद्धि नाटकम् अभिनयैः = वाचिकाङ्गिकाहार्यसात्त्विकैः, आम्रेडितम् =

विमर्श—जिस प्रकार आधुनिक राजा प्राचीनकाल के भरतप्रभृति प्रसिद्ध राजाओं के द्वारा स्वीकृत राज्य-भार को ग्रहण करता है, उसी प्रकार नट भी भरत मुनि के द्वारा प्रयुक्त नाटय-प्रयोग के भार को वहन करता हैं। जिस प्रकार भरतादि राजाओं के द्वारा स्वीकृत राज्य-भार अमात्यादि सहायकों की सहायता से प्रजावर्ग के लिए सुखदायी होता हैं, उसी प्रकार भरतमुनि के द्वारा प्रशस्त नाटय-प्रयोग का भार नाटयसहायकों की सहायता से दर्शकों के लिये आनन्ददायक होता है।

नटी—आर्य की आकृति ही महत्त्वपूर्ण नाटय-प्रयोग के अधिकार की सूचना देती है।

सूत्रधार—और क्या? सुन्दरि! असाधारण मार्ग बहुतों के लिये कठिन होता है।

नटी—आर्यपुत्र! असाधारण शब्द का क्या अर्थ है? यह मैं पूछती हूँ।

सूत्रधार—आर्ये! "दक्षिण दिशा से आये हुए आश्चर्यचूड़ामणि नामक नाटक को अभिनय के द्वारा पुनः सौभाग्यशाली बनाना चाहते हैं" यह सभासदों की आज्ञा है।

नटी—अज्ज ! अच्चाहिदं खु एदं, आआसं पसवइ पुप्फं, सिअदाओ तेल्लं उप्पादअंति, जइ दक्खिणाओ दिसाओ आअदं णाडअणिबन्धणम्। (आर्य ! अत्याहितं खल्वेतत्, आकाशं प्रसूते पुष्पम्, सिकताः तैलमुत्पादयन्ति, यदि दक्षिणस्याः दिशः आगतं नाटकनिबन्धनम्।)

सूत्रधारः—आर्ये ! मा मैवम्। उपचिनु गुणम्, अपहस्तय जन्माभिनिवेशम्। पश्य

गुणाः प्रमाणं न दिशां विभागः निदर्शनं नन्विदमेव तत्र।
स्तनद्वये ते हरिचन्दनं च हारश्च नीहारमरीचिगौरः ॥ ३ ॥

द्विगुणीकृतम्, सौभाग्यं यस्य तदभिलषामः = कर्तुमिच्छामः, आर्यमिश्राणाम् = श्रेष्ठजनानाम्, सभ्यानामिति यावत्। शासनम्=आदेशः। शक्तिभद्रविरचिताऽऽश्चर्यचूडामणिनामकं नाटकं प्रयोगपथे आनेयमिति प्रेक्षकाणामाग्रहः।

अत्याहितमिति ॥ अत्याहितम् = आहितम् = स्थितम्, तदतिक्रम्य वर्त्तते इति अत्याहितम् = असङ्गतम्, असम्बद्धमित्यर्थः। आकाशं प्रसूते इति ॥ यथा आकाशे कुसुमम्, सिकतासु च तैलमलीकं तथैव प्रविरलविद्वज्जनदक्षिणापथान्नाटकात्मकनिबन्धागमनमलीकमेवेति भावः ॥

अपहस्तयेति ॥ अपहस्तय जन्माभिनिवेशम् = जन्मनः अभिनिवेशः, जन्मभूमिमुद्दिश्य यः अभिनिवेशः = दोषग्रहणाग्रहः, तम्, अपहस्तय = परित्यज ॥

गुणाः प्रमाणमिति ॥ गुणाः प्रमाणम्, दिशाम् विभागः न (प्रमाणमिति शेषः) ते स्तनद्वये हरिचन्दनम् नीहारमरीचिगौरः हारश्च तत्र इदम् एव निदर्शनम् ननु इत्यन्वयः। गुणाः = आनन्दादिजनककलाविशेषादयः, प्रमाणम् = कारणम्, दिशाम् = आशानाम्, विभागः = विभजनम्, न (प्रमाणमिति शेषः) ते = तव, स्तनद्वये = कुचद्वये, हरिचन्दनम् = दक्षिणस्याः दिशः आगतम्मलयजचन्दनम्,

---

नटी—आर्यपुत्र ! यह आश्चर्य है, यदि दक्षिण-दिशा से नाटकरूप काव्यबन्ध आया है तो आकाश पुष्प उत्पन्न करता हैं और बालुओं से तेल निकलता है।

(अर्थात् जिस प्रकार आकाश में फूल का खिलना और बालुओं से तेल का निकलना असंभव है उसी प्रकार दक्षिण-दिशा से नाटक का आना भी संभव नहीं है)

सूत्रधार—आर्ये। ऐसी बात नहीं है। गुणों का सञ्चय करो। स्थान-विशेष के उद्देश्य से दोषग्रहण के आग्रह को छोड़ दो। देखो,

गुण ही किसी वस्तु के ग्रहण में कारण होते हैं, न कि दिशाओं का विभाग। यहाँ पर तो यही उदाहरण है कि तुम्हारे दोनों कुचों पर मलयचन्दन और हिमकिरणों के समान सफेद हार हैं।॥ ३ ॥

नटी—(आत्मानं विलोक्य) जुज्जइ, रअणाअरो खु सो देसो। अज्ज! कदमो उण सो कबी जो अत्तणो पज्ञारूवं णिबन्धणव्वाजेण देसंतरं पेसिदुकामो। (युज्यते, रत्नाकरः खलु स देशः। आर्य! कतमः पुनः स कविः य आत्मनः प्रज्ञारूपं निबन्धनव्याजेन देशान्तरं प्रेषितुकामः।)

सूत्रधारः—आर्ये! श्रूयताम्। उन्मादवासवदत्ताप्रभृतीनां काव्यानां कर्तुः कवेः शक्तिभद्रस्येदं प्रज्ञाविलसितम्। अतस्त्वमपि पात्रावधाने

नीहारमरीचिगौरः = हिमालयात् आगतानाम्, नीहाराणाम् = तुषाराणाम्, मरीचिभिः = किरणैः, गौरः = शुभ्रः, हारः = मुक्तावली च, इदमेव = पूर्वोक्तमेव, तत्र = दोषगुणहानोपादाने, निदर्शनम् = उदाहरणम्। भिन्नदेशाभ्यामागतयोर्हरिचन्दनयोस्त्वत्कुचयुगे सन्निवेशः गुणा एव उपादाने कारणं न दिशाग्विभाग इति समर्थयति। उपजाति वृत्तम्। तल्लक्षणं हि—"अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः। इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम। विशेषालङ्कारः ॥ ३ ॥

रत्नाकर इति ॥ रत्नाकरः = रत्नानाम् = नाट्य-कलानिपुणकवीनाम् (अत्र रत्नशब्दस्य प्रासङ्गिकी व्याख्या बोध्या) आकरः = उत्पत्तिस्थानम्, स देशः = पूर्वोक्तः दक्षिणापथः, आत्मनः = स्वस्य, प्रज्ञारूपम् = प्रज्ञा = ज्ञानम्, तद्रूपम् = ज्ञानस्वरूपम्, निवन्धनव्याजेन = नाटकरूपकाव्यवन्धच्छलेन, देशान्तरम् = अन्यो देशः देशान्तरम् = अन्यदेशम्,

प्रज्ञाविलासितमिति ॥ प्रज्ञाविलसितम् = ज्ञानविलासः। विज्ञापनव्यग्रे = सूचनाकर्मव्यापृते मयि इति।

विमर्श—अपने-अपने गुणों के कारण ही भिन्न-भिन्न दिशाओं से आकर भी ये दोनों तुम्हारे स्तनप्रदेश में सुशोभित हो रहे हैं। अतः दिशाविभाग की अपेक्षा आनन्दोत्पादककलाविशेषादि गुणों की ही प्रधानता होती है।

नटी—(अपने को देखकर) हो सकता है, वह दक्षिण-देश रत्नों का उत्पत्ति-स्थान हैं। आर्यपुत्र! वह कौन कवि है, जो अपने ज्ञान-स्वरूप को निवन्ध के बहाने दूसरे स्थान (देश) को भेजने का इच्छुक है?

सूत्रधार—आर्ये! सुनो, 'उन्माद वासवदत्ता' प्रभृति अनेक काव्यग्रन्थों के रचयिता कवि शक्तिभद्र के ज्ञान का यह विलास है! इसलिये तुम भी अनुकूल पात्रों की योजना में

कुरुष्व। अहमप्यार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये! किन्तु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अङ्ग पश्यामि।

(नेपथ्ये ज्याघोषः क्रियते)

सूत्रधारः—भवतु विज्ञातम्।

सपत्नीकस्य रामस्य वर्तयन् वन्यमास्पदम्।
ज्याघोषेणैव सौमित्रिः पक्कान् सत्त्वान् व्यपोहति॥ ४॥

(निष्क्रान्तौ)

॥ स्थापना ॥

नेपथ्ये इति ॥ नेपथ्यम् = पात्र-वेश-रचना-स्थानम् तस्मिन्, ज्याघोषः = मौर्वी-रवः। विज्ञातमिति ॥

विज्ञातम् = विशेषेण अवगतम् ॥

सपत्नीकस्येति ॥ सपत्नीकस्य रामस्य वन्यम् आस्पदम् वर्तयन् सौमित्रिः ज्याघोषेणैव पक्कान् सत्त्वान् व्यपोहति इत्यन्वयः। सपत्नीकस्य = भार्यासहितस्य, रामस्य = भरताग्रजस्य, वन्यम् आस्पदम् = निवासोपयुक्ताम् पर्णकुटीम्, वर्त्तयन् = सम्पादयन्, सौमित्रिः = सुमित्रासूनुः लक्ष्मणः, ज्याघोषेणैव = मौर्वीटङ्कारेणैव, पक्कान् = विपरिणामावस्थां प्राप्तान्, परिणतानित्यर्थः (प्राप्तयौवनत्वेन अतिदृप्तान् इति यावत्) सत्त्वान् = सिंहव्याघ्रादीन् हिंसकजन्तून्, व्यपोहति = निरस्यति, दूरीकरोतीत्यर्थः। अनुष्टुब्वृत्तम्। तल्लक्षणं हि—"श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥" ४ ॥

स्थापनेति ॥ स्थापना = आमुखम्। अत्र प्रयोगातिशयरूपाऽऽमुखभेदेन पात्र-प्रवेशः सूचितः ॥

लग जाओ। मैं भी दर्शकों को सूचना दे रहा हूँ। अरे, मेरे सूचना देने में व्यस्त होने पर शब्द सा सुनाई देता है। सावधान होकर देखता हूँ।

(नेपथ्य में धनुष का शब्द सुनाई पड़ता है।)

सूत्रधार—अच्छा समझ गये।

पत्नी सहित राम के लिये तपोवन में निवास करने योग्य पर्ण-कुटी बनाते हुए लक्ष्मण जी अपने धनुष की टङ्कार से ही जंगली हिंसक पशुओं को दूर हटाते हैं॥ ४॥

(दोनों चले जाते हैं)

आमुख समाप्त।

(ततः प्रविशति धनुर्बाणपाणिर्लक्ष्मणः)

लक्ष्मणः—

ज्याघोषेण निराकरोमि भयदान् पर्यन्तभाजो मृगान्
पर्णैस्सद्म समापयामि शयनं बध्नामि पुष्पच्छदैः ।
वेत्राणामुपपादयामि वलयैरायामिनां विष्टरं
सिञ्चामि क्षितिमार्द्रपङ्कजरजोविद्धैरपां रेणुभिः ॥ ५ ॥

ज्याघोषेणेति ॥ पर्यन्तभाजो भयदान् मृगान् ज्याघोषेण निराकरोमि, (अहमिति सर्वत्र योज्यम्) पर्णैः सद्म समापयामि, पुष्पच्छदैः शयनम् बध्नामि, वेत्राणाम् वलयैः आयामिनाम् विष्टरम् उपपादयामि, अपाम् आर्द्ररजोविद्धैः रेणुभिः क्षितिम् सिञ्चामि इत्यन्वयः । पर्यन्तभाजः = पर्यन्तान् = परिसरान् नदीपर्वतसमीपवर्तिनः प्रदेशान् भजन्तीति पर्यन्तभाजः परिसरनिवासिनः, भयदान् = भीतिप्रदान् मृगान् = सिंहादिपशून् , अत्र मृगशब्दः पशुसामान्यवाचकः । ज्याघोषेण = मौर्वीरवेण, निराकरोमि = दूरं नयामि, पर्णैः = पत्रैः सद्म = गृहम् समापयामि = सम्पादयामि, पर्णशालायाः पर्णबाहुल्यात् तन्निर्माणे तेषां प्रधानकारणत्वात् पर्णैरित्युक्तम् । अत्र पर्णशब्देन पर्णकुटीनिर्माणे सापेक्षसाधानान्तराण्यपि उपलक्ष्यन्ते । पुष्पच्छदैः = कुसुमदलैः, शयनम् = शय्याम् बध्नामि = रचयामि, वेत्राणाम् = वेतसाम् , वलयैः = कटकैः, (वलयीकृतवेत्रैरिति यावत्) आयामिनाम् = व्रतिनाम् , विष्टरम् = आसनविशेषम्, उपपादयामि = उत्पादयामि ।

विमर्श—यहाँ पर प्रथम अङ्क के आदि में लक्ष्मण-प्रवेश के माध्यम से पात्र-प्रवेश की सूचना के साथ ही नाटक के प्रधान पात्र सीता तथा राम के प्रवेश की भी सूचना मिल जाती है ।

(इसके बाद हाथ में धनुष और बाण लिए लक्ष्मण रङ्गमञ्च पर आते हैं)

लक्ष्मण—नदियों और पर्वतों के समीपवर्ती वन-प्रदेश में रहने वाले सभी भयप्रद जंगली हिंसक जानवरों को अपने धनुष की टङ्कार से दूर हटाता हूँ । वृक्षों के पत्तों से कुटी बनाता हूँ । फूलों की पंखुरियों से शय्या बनाता हूँ । व्रत-धारियों के उपयुक्त वेतों के वलय से आसनविशेष का निर्माग करता हूँ और स्वभावतः मधु से गीले कमल के पराग से सम्पृक्त जलकणों से पृथिवी को सींचता हूँ ॥ ५ ॥

विमर्श—हिंसक पशुओं को दूर हटाने का रहस्य यह है कि तपोवन में सीता और राम के दर्शनार्थ आये हुए लोगों को इन पशुओं से भय की सम्भावना थी, अतः उनका दूर हटाना आवश्यक था जिससे भक्तजन युगल-जोड़ी का निर्विघ्न दर्शन कर सकें ।

(तथा कृत्वा) कथञ्चिदेवमनुष्ठितमार्यशासनम्। अहो ! नु खलु विपन्नानामवस्था मेधाविनी यावदिमां पर्णशालां परिसमाप्तां तावत् गोदावर्यास्तटैकदेशे तरङ्गमारुतैरध्वपरिश्रममपनयन्तमार्यमार्यया सार्धं विज्ञापयामि।

आर्द्रपङ्कजरजोविद्धैः = आर्द्रैः=स्वभावतः सध्वाद्रैः पङ्कजरजोभिः=कमलरेणुभिः, विद्धैः = सम्पृक्तैः, अपाम् = जलानाम्, रेणुभिः = कणैः, क्षितिम् = वसुधाम्, सिञ्चामि = सेचनेन संस्करोमि। अथवा आर्द्राणाम् = नूतनानाम्, तत्क्षणप्रस्फुटितानाम् पङ्कजानाम् रजोविद्धैः = परागसम्पृक्तैः, अपाम् रेणुभिः = जलानाम् कणिकाभिः क्षितिसेचनं करोमि। अत्र कविः लक्ष्मणमुखेन कथाबीज-भूतं भयप्रदराक्षसनिराकरणोत्साहं सूचयति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। तल्लक्षणं हि—"सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।" ॥ ५ ॥

तथा कृत्वेति ॥ पूर्वोक्तप्रकारेण भयप्रदान् मृगान् दूरीकृत्य सुखप्रदां पर्णशालाञ्च निर्माय आह—

कथञ्चिदेवमिति ॥ आर्यशासनम् = आर्यस्य = रामस्य शासनम् = पर्णशालानिर्माणविषयाज्ञापनम्। कथञ्चित् = केनापि प्रकारेण, एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, अनुष्ठितम् = सम्पादितम्, (मया इति शेषः)। अहो नु खलु इति ॥ विपन्नानाम् = विपद्ग्रस्तानाम् अवस्था = वृत्तिः, मेधाविनी = मेधया = अतिशायिन्या बुद्धिवृत्त्या संयुक्ता, पर्णशालां विरचय्य तन्निवेदनमध्यवस्यति —यावदिति ॥ आर्यया = सीतया, सार्धम् = सह, गोदावर्याः = तन्नामिकायाः नद्याः, तटैकदेशे = तीरैकप्रान्ते, तरङ्गमारुतैः = वीचिपवनैः, अध्वपरिश्रमम् = मार्गजन्यखेदम्, अपनयन्तम् = दूरीकुर्वन्तम्, आर्यम् = रामम्, तावत् इमाम् = पुरोदृश्यमानाम्, पर्णशालाम् = पर्णकुटीम्, परिसमाप्ताम्—समाप्तिं गताम्, विज्ञापयामि = निवेदयामि, सूचयामीत्यर्थः।

(वैसा करके) किसी प्रकार पूर्वोक्त रीति से (पर्णकुटी बनाकर) आर्य राम के आदेश का पालन किया। विपत्ति में पड़े हुये लोगों का व्यवहार बुद्धि से युक्त होता है। (अर्थात् समय पड़ने पर नहीं किए हुए कार्य को भी मनुष्य अपनी बुद्धि-शक्ति से कर डालता है।) गोदावरी नदी के तीर के एक भाग पर सीता के साथ लहरों से युक्त पवन से मार्ग में चलने से उत्पन्न थकावट को दूर करते हुए आर्य राम को कुटी-निर्माण-समाप्ति की सूचना देता हूँ।

(परिक्रम्यावलोक्य)

अये अरण्यविरुद्धेयमाकृतिः । तथा हि—

अस्यातिमात्रायतलोचनस्य
　　नतभ्रुणः कम्रपयोधरस्य ।
आश्चर्यरत्नस्य विलासयोनेः
　　किमाकरो द्यौर्नु वसुन्धरा नु ॥ ६ ॥

परिक्रम्येति ॥ अथ परिक्रम्य अकस्मात् स्वाभिमुखं समायान्तीं ललितसुकुमारवेशां शूर्पणखां दृष्ट्वा आह—अये इति ॥ अद्भुददर्शनसमावेगसूचकमव्ययम् ।

अरण्यविरुद्धेयमाकृतिरिति ॥ इयम् = सौकुमार्यादिविशिष्टत्वेन पुरोदृश्यमाना, आकृतिः = आकारविशेषः, अरण्ये = विपिने, विरुद्धा = अयोग्या । ईदृशाकृतिविशेषस्य कानने जन्म निवासो वा न संभवतीति बोध्यम् ।

अस्यातिमात्रायतेति ॥ अतिमात्रायतलोचनस्य नतभ्रुणः कम्रपयोधरस्य विलासयोनेः अस्य आश्चर्यरत्नस्य किन्तु द्यौः आकरः किन्तु वसुन्धरा इत्यन्वयः । अतिमात्रायतलोचनस्य = अतिमात्रम् = अत्यधिकम् , आयते = विस्तृते, लोचने = नयने यस्य तस्य अतिविस्तृतनयनस्य, नतभ्रुणः, वक्रभ्रुणः कम्रपयोधरस्य = सुन्दरकुचस्य, विलासयोनेः=प्रियतमदर्शनावसरे लोचनादिव्यापाराणाम् विशेषेण लासः विलासः तस्य योनिः=उत्पत्तिस्थानम् कारणं वा, तस्य विलासयोनेः, अस्य=पुरोदृश्यमानस्य, आश्चर्यरत्नस्य=विस्मयोत्पादकमणेः (अत्र स्त्रीरूपं रत्नम् विवक्षितम्) किन्तु द्यौः = किन्तु स्वर्गः, आकरः = खनिः, 'खनिः स्त्रियामाकरः स्यात्' इत्यमरः । उत्पत्तिस्थानमिति यावत् , किन्तु = अथवा वसुन्धरा = वसुधा । ईदृगाश्चर्यभूतस्त्रीरूपरत्नविशेषस्योत्पत्तिस्थानं वसुधा स्वर्गो वा भवितुमर्हति नारण्यमिति भावः । उपजातिवृत्तम् । तल्लक्षणं तूक्तमेव । सन्देहालङ्कारः ॥ ६ ॥

(घूम कर देखकर) यह आकृति जंगल के योग्य नहीं है । (अर्थात् जंगल में इतने सुन्दर रूप की संभावना नहीं) क्योंकि—

बड़ी बड़ी आखों वाले, टेढ़ी भौंहों वाले, सुन्दर स्तन वाले, और भ्रूविक्षेपादि व्यापार-विलास को करने वाले इस अद्भुद् रत्न का उत्पत्ति-स्थान क्या पृथिवी है अथवा स्वर्ग ? ॥ ६ ॥

(चित्तविकारं निरूप्य)

किमिदम् नन्वहं रामानुजो लक्ष्मणः ।

सनाथीकुर्वाणा धरणिमथवा धाम मरुतां
भवेदेषा कामं विरमतु वितर्कश्चलधियाम् ।
वचः कर्तुं पित्रोर्वनमिदमवाप्तस्य वशिनो
वशे तिष्ठन् भ्रातुः स्मरपरवशः स्यां कथमहम् ॥ ७ ॥

चित्तविकारमिति ॥ मायाकृतसुकुमाररूपायाः शूर्पणखायाः दर्शनेन हृदये कामविकृतिं निरूप्य = लक्षयित्वा ।

किमिदमिति ॥ किमिदम् = साम्प्रतं विलक्षणरमणीसाक्षात्कारजन्यः कन्दर्पविकारः सर्वथा मत्कृते नोचित इति परामृशन् आत्मनि चापलस्य अयोग्यत्वे कारणमाह—नन्वहमिति ॥ ननु = निश्चयेन, अहम् = न केवलं नाम्ना अपितु विनयधैर्यादिगुणसम्पन्नः, रामस्य अनुजः = लघुभ्राता लक्ष्मणः (अस्मीति शेषः)। अतो मयि स्मरचापलत्वं सर्वथा असमीचीनमिति गूढाशयः ।

सनाथीकुर्वाणेति ॥ एषा धरणीम् अथवा मरुताम् धाम सनाथीकुर्वाणा कामम् भवेत् , वितर्कः विरमतु, (वितर्कः) चलधियाम् (भवतीतिशेषः) पित्रोः वचः कर्त्तुम् इदम् वनम् अवाप्तस्य वशिनः भ्रातुः वशे तिष्ठन् अहम् कथम् स्मरपरवशः स्याम् इत्यन्वयः । एषा = शूर्पणखा, धरणीम् = वसुधाम् , अथवा = किम्वा, मरुताम् = देवानाम् , धाम = निवासस्थानम् , स्वर्गमित्यर्थः, सनाथीकुर्वाणा = सफलीकुर्वती, कामं भवेत् = यथेच्छं भवेत् , वितर्कः = विकल्पः, चलधियाम् = चपलबुद्धिमताम् , भवतीति शेषः। पित्रोः = माता च पिता च पितरौ तयोः कैकेयीदशरथयोः, वचः = राज्यपरित्यागपूर्वकवनवासविषयकं वचनम् , कर्त्तुम् =

(चित्त के विकार को लक्ष्य कर) यह क्या, मैं तो राम का छोटा भाई लक्ष्मण हूँ। (अर्थात् आदर्श-चरित राम के छोटे भाई लक्ष्मण को काम की परवशता शोभा नहीं देती)

सुन्दर आकृति वाली यह (शूर्पणखा) वसुन्धरा को स्वेच्छया सार्थक करती हुई हो अथवा स्वर्ग को, इसके उत्पत्ति-स्थान के विषय में हमारा विकल्प शान्त हो। इस प्रकार का संकल्प-विकल्प तो चंचल बुद्धि वाले पुरुषों को होता है। पिता के वनवासरूप वचन का पालन करने के लिए जंगल आये हुए जितेन्द्रिय भ्राता राम की आज्ञा में रहते हुए हम किस प्रकार काम का शिकार हो सकते हैं ? ॥ ७ ॥

(ततः प्रविशति ललितसुकुमारवेषा शूर्पणखा)

शूर्पणखा—(लक्ष्मणं निरूप्य) हं अअं वि सो एव्व। (हं अयमपि स एव।) (व्रीडां नाटयति)

लक्ष्मणः—प्रतिकूलमिदमाचरितम्। यदेषा—

आचाराननुचरता तपोधनानां

पालयितुम्, इदम् = जनस्थानाख्यम्, वनम् = विपिनम्, अवाप्तस्य = प्राप्तस्य वशिनः = जितेन्द्रियस्य, भ्रातुः = अग्रजस्य (रामस्य) वशे = अधिकारे, तिष्ठन् = विद्यमानः, अहम् = लक्ष्मणः, कथम् = केन प्रकारेण, स्मरपरवशः = मनसिजवशीभूतः, स्याम् = भवेयम्। शिखरिणीवृत्तम्। तल्लक्षणं हि—"रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी" ॥ ७ ॥

ललितसुकुमारवेषा ॥ ललितः = सुशोभनः सुकुमारः = सुकोमलः च वेषः = नेपथ्यम् = प्रसाधनं यस्याः सा। इह रावणभगिनीशूर्पणखा लोकोत्तरं पुरुषं पतित्वेन परिग्रहीतुम् इतस्ततः परिभ्रमन्ती मायाबलेन ललितसुकुमारवेषा भूत्वा गोदावरीतीरगतं राममुपगम्य ततोऽलब्धमनोरथा मार्गे स्वाभिमुखमागच्छन्तं सौमित्रिं दृष्ट्वा सर्वथा तत्र रामसादृश्यमवलोक्य तद्रूपातिशयं विभावयति—हमिति ॥ हमिति अतर्कितसौन्दर्यातिशयदर्शनप्रभवहर्षसमुत्थो वाणीरूपोऽनुभावः। अयमपि = लक्ष्मणोऽपि, स एव = राम एव, रामे विद्यमानानां सर्वेषामेव सौन्दर्यसौकुमार्य्यादीनां लक्ष्मणेऽपि दृश्यमानत्वात् स एवेति तत्त्वारोपः। अत्रोभयोर्भेदव्यवच्छेदार्थम् एवशब्दः। व्रीडामिति ॥ मदनपरवशा शूर्पणखा लक्ष्मणपुरस्तात् व्रीडाम् = लज्जाम् नाटयति = प्रदर्शयति, लज्जाया अभिनयं करोतीत्यर्थः।

प्रतिकूलमिति ॥ इदम् = प्रत्यक्षेण दृश्यमानम्, आचरितम् = आचरणम् (लज्जादिप्रदर्शनपरोव्यवहारः) प्रतिकूलम् = विपरीतम्, सर्वथा विरुद्धमिति यावत्।

आचारेति ॥ तपोधनानाम् आचारान् अनुचरता मया सावज्ञम् परुषतरम्

(उसके बाद रङ्गमञ्च पर सुन्दर और सुकुमार वेष धारण किए शूर्पणखा प्रवेश करती है)

शूर्पणखा—(लक्ष्मण को देख कर) अरे, यह भी तो वही है (अर्थात् लक्ष्मण भी राम के समान ही गुण और सौन्दर्य से युक्त है) (लज्जा का अभिनय करती है)

लक्ष्मण—यह विपरीत आचरण है। क्योंकि यह—

मुनियों के व्रत को धारण करते हुए मुझ से तिरस्कार पूर्वक देखी जाने पर भी लज्जा

सावज्ञं परुषतरं मयेक्षितापि ।
सव्रीडा वदनमधः करोति कम्पात्
उत्तंसप्रगलितषट्पदेन मूर्ध्ना ॥ ८ ॥

शूर्पणखा—(स्वगतम्) किं णु खु अअं वि भणिस्सदि, होदु एत्तिअं दाव कहइस्सम् । (प्रकाशम्) अज्ज ! इदो दाव । (किं न खलु अयमपि भणिष्यति, भवतु एतावत्तावत् कथयिष्ये । आर्य ! इतस्तावत् ।)

लक्ष्मण :—न समाधिः स्त्रीषु लोकज्ञः । (तूर्णीं गच्छति)

इक्षितापि सव्रीडा (सती) कम्पात् उत्तंसप्रगलितषट्पदेन मूर्ध्ना वदनमधः करोति इत्यन्वयः । तपोधनानाम् = तपस्विनाम् , आचारान् = नियमान् , अनुचरता = सेवमानेन, व्यवहरता वा, मया = लक्ष्मणेन, सावज्ञम् = अवज्ञया सह = अपमानपूर्वकं यथा स्यात्तथा, परुषतरम् = कठोरतरम् , इक्षितापि = अवलोकितापि, सव्रीडा = सलज्जा, (सती) कम्पात् = वेपथोः, उत्तंसप्रगलितषट्पदेन=उत्तंसेभ्यः= कर्णभूषणभूतेभ्यः "उत्तंसावतंसौ द्वौ कर्णपूरे च शेखरे" इत्यमरः, कुसुमेभ्यः प्रगलिताः = प्रच्युताः (पूर्वम् मकरन्दादिलोभवशादवस्थिताः) षट्पदाः = भ्रमराः यस्मिन् तेन, मूर्ध्ना = शिरसा (सह वर्त्तमाना) वदनम् = आननम् , अधः करोति = नम्रीकरोति । यथा यथा क्रमेण मया वैराग्यातिशयः प्रकाश्यते तथा तथा एषा रागातिशयं विभावयति अतः अस्मद्व्यापारापेक्षया अस्याः सर्वथा विरुद्धमाचरणम् तच्च अदृष्टपूर्वमिति भावः । प्रहर्षिणी वृत्तम् । तल्लक्षणं हि—"म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्" ॥ ८ ॥

पूर्वं रामात् अपूर्णमनोरथा लक्ष्मणात् अपि तथैव शङ्कमाना आह—

किन्तु खलु इति ॥ प्रणयनिवेदनप्रसङ्गे रामेण यथोक्तं तथैव अनेनापि उच्येत अन्यथावेतिशूर्पणखाहृदयस्थो भावः ।

न समाधिरिति ॥ समाधिः = यमनियमादिसाध्य उपास्यनिष्ठःचित्तलयः, आरा-

---

से उत्पन्न कम्पन के कारण अपने शिर के अलङ्कार-भूत फूलों से गिरने वाले भौंरों से युक्त शिर से मुख को झुकाती है ॥ ८ ॥

शूर्पणखा—(मन ही मन) यह भी क्या कहेगा ? अच्छा, इसे तब तक यह कहती हूँ । (प्रकट) आर्य ! इधर आइये ।

लक्ष्मण—साधना स्त्रियों में लोक-व्यवहार को नहीं जानती है (अर्थात् साधक स्त्रियों के विषय में व्यवहार-ज्ञान-शून्य होता है ।) (मौन भाव से जाते हैं)

शूर्पणखा—(किञ्चिदनुगम्य) अज्ज ! असदिसं विअ अज्जस्स सर(ण)अदस्स उवक्खणं इत्थिआजणस्स । (आर्य ! असदृशमिव आर्य(स्य) शरणागतस्य उपेक्षणं स्त्रीजनस्य ।)

लक्ष्मणः—न हि न हि मयोपेक्ष्यते भवती साम्प्रतमवस्थान्तरशो(च)नीयस्य गुरोरलङ्घनीयेन शासनेन खलु ।

शूर्पणखा—जइ एव्वं, इमं वि जणमन्तरेण आण्णा गुरुजणस्स ण(...) दाव उवक्खणं अरुहदि । (यद्येवम् , इममपि जनमन्तरेण आज्ञा गुरुजन(स्य) न खलु तावदुपेक्षणमर्हति ।)

ध्योपासनेत्यर्थः, स्त्रीषु = नारीषु, न लोकज्ञः = लोको लोकव्यवहारः समागतं प्र(ति) स्वागतवचनादि तं न जानति । तपस्विनां स्त्रीविषयं लोकवृत्तान्तज्ञानं नास्ती(ति) अस्याः प्रतिवचनदानाभावेन न दोषावसरः इति ध्येयम् ।

असदृशमिव इति ॥ शरणागतस्य = शरणं प्राप्तस्य, स्त्रीजनस्य = नारीजनस्य उपेक्षणम् = उपेक्षा, तिरस्कारो वा आर्यस्य = त्वत्सदृशसज्जनस्य (कृते) असदृश(म्) मिव = अननुरूपमिव, अनुचितमिवेति यावत् । शरणागतस्य शत्रोरपि उपेक्षा नो(चि)चिता का कथा शरणागताऽनाथस्त्रीजनस्येति भावः।

शूर्पणखाप्रतिपादिताऽसदृशत्वं निषेधति—नहि नहि इति ॥ त्वाम्प्रति मदीयो(पे)पेक्षा समुचिता एव,! यतोहि—साम्प्रतम् = इदानीम् , अवस्थान्तरशोचनीयस्य = अन्या अवस्था अवस्थान्तरम् तेन = वनवासात्मकपरिस्थितिविशेषेण चिन्तनीयस्य गुरोः = आर्यरामस्य, अलङ्घनीयेन = अनुपेक्षणीयेन, शासनेन = आज्ञया, भवती मया उपेक्ष्यते ।

शूर्पणखा—(कुछ आगे बढ़ कर) आर्य ! शरण में आई हुई स्त्रियों के प्रति आपकी उपेक्षा अनुचित है ।

लक्ष्मण—नहीं, मैं आपकी उपेक्षा इस समय अवस्था-विशेष को प्राप्त हुये गुरुतुल्य ज्येष्ठ भाई के अनुपेक्षणीय आदेश से करता हूँ । (अर्थात् आपने मेरे उपेक्षाभाव को जो अनुचित कहा वह सर्वथा असंगत है क्योंकि वनवास-काल-पर्यन्त गुरु-सेवा मेरा परम धर्म है अतः आपकी उपेक्षा सामयिक ही है)

शूर्पणखा—यदि ऐसा है तब तो विना गुरु की आज्ञा के इस व्यक्ति की आप उपेक्षा नहीं कर सकते ।

लक्ष्मणः—(सरोषम्) आः कस्तावन्मामाज्ञापयति ।

शूर्पणखा—(भयं निरूप्य) पसीददु पसीददु अज्जो । अज्जो एव्व रामो आणवेदि । (प्रसीदतु प्रसीदत्वार्यः । आर्य एव राम आज्ञापयति ।)

लक्ष्मणः—(स्वगतम्) हन्त पूर्वमनया दृष्टः खल्वार्यः, भवतु, प्रसादयामि गुरुवचनमुहूर्तभाजनीभूतामत्रभवतीम् । (प्रकाशम्) भद्रे ! किमाज्ञापयत्यार्यः ।

शूर्पणखा—सुणोदु अज्जो । (शृणोत्वार्यः ।)

लक्ष्मणः—अवहितोऽस्मि ।

शूर्पणखा—अज्ज ! मए सह अत्तणो परिअरणं अज्जरामो आणवेदि । (आर्य ! मया सह आत्मनः परिचरणम् आर्यरामः आज्ञापयति ।)

लक्ष्मणः—(हस्तं परावृत्य) पश्य—

वासो वल्कलमास्पदं विटपिनो वन्यं शरीरस्थितिः

गुरुवचनमुहूर्तमिति ॥ गुरोः वचनम् तस्य भ्रातृवचनस्य मुहूर्त्तम् = क्षणं यावत्, भाजनीभूताम् = पात्रीभूताम् । अवहित इति ॥ अवहितोऽस्मि = दत्तावधानोऽस्मि सावधानोऽस्मीत्यर्थः ।

वासोवल्कलमिति ॥ वल्कलम् वासः विटपिनः आस्पदम् वन्यम् शरीरस्थितिः

लक्ष्मण—(क्रोध से) अरे, कौन मुझे आज्ञा देता है ?

शूर्पणखा—(डरती हुई) प्रसन्न हों आर्य, प्रसन्न हों। आर्य राम ही आज्ञा दे रहे हैं।

लक्ष्मण—(मन ही मन) अरे, इसने आर्य राम को पहले देखा है, अच्छा, एक क्षण के लिये आर्य राम के वचन से अनुगृहीत होने वाली इसे प्रसन्न करता हूँ। (प्रकट) भद्रे ! आर्य राम क्या आज्ञा देते हैं ?

शूर्पणखा—आर्य ! सुनिये।

लक्ष्मण—सावधान हूँ।

शूर्पणखा—आर्य ! आपको मेरे साथ अपनी सेवा करने का आर्य राम आदेश देते हैं।

लक्ष्मण—(हाथ लौटा कर) देखो—

वल्कल (वृक्ष के छाल) मेरा वस्त्र है। वृक्ष ही मेरे घर हैं। जंगली कन्द-मूल मेरे

शय्या दर्भलता प्रसाधनमपां वर्षी जटानां भरः ।
बाले ! किं बहुना वने वनमृगन्यायस्य न त्वं पदं
सारङ्गाक्षि ! तपोभृतः क तपसां शत्रुः क सङ्कल्पजः ॥९

शूर्पणखा—अलीअं अलीअं एदं । णं सो अज्जो अज्जाए सह वत्तदि
(अलीकमलीकमेतत् । ननु स आर्य आर्यया सह वर्तते ।)

दर्भलता शय्या अपाम् वर्षी जटानाम् भरः प्रसाधनम् , हे बाले ! किं बहुना व[ने] वनमृगन्यायस्य त्वम् न पदम् , हे सारङ्गाक्षि ! तपोभृतः क तपसाम् शत्रु[ः] सङ्कल्पजः क इत्यन्वयः । वल्कलम् = त्वक् (वृक्षाणाम्) वासः = परिधानवस्त्रम् विटपिनः = शाखिनः, आस्पदम् = गृहम् , वन्यम् = पर्णमूलादिकम् , शरीरस्य = प्राणस्य, स्थितिः अस्तित्वसाधनम् (अत्र स्थितिशब्दः तत्साधनस्यापि लक्षक[ः] दर्भलता = कुशवल्ली, शय्या = शयनीयम् , अपाम् = जलानाम् , वर्षी = वर्षक[ः] जटानाम् = सटानाम् , भरः = भारः समूहोवा, प्रसाधनम् = अलङ्कारः, हे बाले किम्बहुना = किमधिकेन, वने = विपिने, वनमृगन्यायस्य = वनमृगस्य = कानपशो[र्] न्याय इव न्यायः = आचारः यस्य तस्य मम त्वम् = शूर्पणखा, न पदम् = न संसर्गयोग्यम् स्थानमिति भावः, हे सारङ्गाक्षि ! = सारङ्गस्य = हरिणस्य अक्षिणी इव अक्षिणी = नयने यस्याः तत्सम्बोधने सारङ्गाक्षि = मृगनयने इत्यर्थः, तपोभृतः = तपस्विनः, क = कुत्र, तपसाञ्च = व्रतानाम् , शत्रुः = रिपुः, सङ्कल्पजः = मनसिजः क। वने व्रतिनां वेषभोजनशय्यादिकं स्वीकृत्य सततं तपः कर्मणि विराजमाने मयि राज्यसुखभोगपरायणायाः तव अनुरागप्रदर्शनं विफलमेव, तपःपरायणस्य मम कामपरायणा त्वम् न संसर्गास्पदत्वं प्राप्स्यसि इति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । विषमालङ्कारः ॥ ९ ॥

अलीकमिति ॥ अलीकम् = मिथ्या ।

आहार हैं, कुश की लता हमारी शय्या है । जल जिससे टप टप चू रहे हैं, ऐसा जटा-समूह हमारा आभूषण है । हे बाले ! बहुत अधिक क्या, जंगली पशुओं के समान व्यवहार करने वाले हम तुम्हारे उपयुक्त नहीं है । हे सुन्दरि ! कहां तपस्वी जन और कहां तपस्या के विरोधी काम ? (अर्थात् इन दोनों में स्वाभाविक विरोध है अतः इन दोनों के प्रतीक हम दोनों का पारस्परिक साहचर्य संभव नहीं है ॥ ९ ॥

शूर्पणखा—यह झूठ है, यह झूठ है । आर्य राम ही आर्या सीता के साथ विराज-मान हैं ।

लक्ष्मणः—भद्रे ! न जानासि परमार्थतो वृत्तमार्यस्य ।

शूर्पणखा—किं किं ।

लक्ष्मणः—यावदार्यस्तीर्णप्रतिज्ञः प्रकृतिमण्डलं गुरुजनं भरतं च न श्यति, तावदेकमेव धर्ममवलम्बते ।

शूर्पणखा—जइ एव्वं एत्थ सा किं करोदि । (यद्येवमत्र सा किं करोति ।)

लक्ष्मणः—यदहं करोमि ।

शूर्पणखा—जह अज्जं सा उवअरदि तह तुमं वि अहं उवअरिस्सम् । यथा आर्यं सा उपचरति तथा त्वामप्यहमुपचरिष्यामि ।)

लक्ष्मणः—भद्रे ! इदमपि प्रार्थनीयम् । पश्य—

यतते यस्य निष्कृत्यै जनस्सर्वोऽपि बुद्धिमान् ।

यावदार्य इति ॥ तीर्णप्रतिज्ञः = तीर्णा = पारंगता, प्रतिज्ञा = तपोधनधर्माव- लम्बनपूर्वकवनवासरूपो निश्चयः येन सः, आर्यः = रामः, प्रकृतिमण्डलम् = प्रजा- वर्गम् , गुरुजनम् = वसिष्ठकौशल्यादिकम् , भरतम् = भरतनामधेयंस्वानुजम् , यावत् न पश्यति = यावत् नावलोकयति, तावत् एकम् = केवलम् , धर्ममेव = अर्थकामानुबन्धरहितं धर्ममेव, अवलम्बते = स्वीकरोति ।

लक्ष्मणः शूर्पणखायाः प्रणयनिवेदनं खण्डयन्नाह—

यतते इति ॥ सर्वोऽपि बुद्धिमान् जनः यस्य निष्कृत्यै यतते हे मुग्धलोचने ! तत् दास्यम् स्वयम् इच्छन्ती त्वम् मुग्धा (असीति शेषः) इत्यन्वयः । सर्वोऽपि = समग्रोऽपि, बुद्धिमान् = धीमान् , जनः = लोकः, यस्य निष्कृत्यै = यस्य निराकृत्यै,

---

लक्ष्मण—भद्रे ! तुम आर्य राम के चरित को वस्तुतः नहीं जानती हो ।

शूर्पणखा—क्या, क्या?

लक्ष्मण—जब तक आर्य राम वनवास की प्रतिज्ञा पूरी कर प्रजावर्ग, गुरुजन और भरत को नहीं देखते तब तक एकमात्र धर्म का ही अवलम्बन करते हैं ।

शूर्पणखा—यदि ऐसा है तो वह (सीता) क्या करती है ?

लक्ष्मण—जो मैं करता हूँ ।

शूर्पणखा—जिस प्रकार सीता आर्य राम की सेवा करती है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारी परिचर्या करूंगी ।

लक्ष्मण—भद्रे ! यह भी प्रार्थना करने योग्य है । देखो—

सभी बुद्धिमान् मनुष्य जिस दासता को दूर करने का प्रयास करते हैं, उसी दासता को

दास्यं तत्स्वयमिच्छन्ती मुग्धा त्वं मुग्धलोचने ! ॥ १० ॥

शूर्पणखा—अज्ज ! किं सिणेहो तुलअदि गुणदोसाणि । (आर्य ! स्नेहस्तुलयति गुणदोषान् ।)

लक्ष्मणः—(आत्मगतम्) एवं व्याहरन्तीमेनां किमिति प्रत्यादिश मि । (विचार्य) भवतु दृष्टम् । (प्रकाशम्) भद्रे ! आर्यस्य पर्णगृहप्रवेश नन्तरमत्रभवतीमभिप्रेतस्थाने द्रक्ष्यामि ।

शूर्पणखा—जइ एव्वं अज्ज ! तस्स पण्णसालस्स पस्सदो एव्व पि वालइस्सम् । (यद्येवमार्य ! तस्याः पर्णशालायाः पार्श्वत एव प्रतिपालयिष्यामि

लक्ष्मणः—(आत्मगतम्) अस्तु कामं नास्त्यनन्तरायः कालक्षेपः (प्रकाशम्) यदभिप्रेतं भवतु भवत्यै ।

यतते = प्रयासं करोति, हे मुग्धलोचने ! = हे सुनयने, तत् दास्यम् = तत्पार न्त्र्यम्, स्वयमिच्छन्ती = आत्मना अभिलषन्ती, त्वम् = शूर्पणखा, मुग्धा = मोहि विचारशून्येत्यर्थः, असीति शेषः। स्वेच्छया त्वया मदीयनिन्दितदास्यं न स्वीका मिति भावः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ १० ॥

किं स्नेह इति ॥ स्नेहः = सहजानुरागः किं गुणदोषान् तुलयति = विवि विजानाति ? । स्नेहे गुणदोषविचारो नास्त्येवेति भावः । अन्तरायः = विघ्न अभिप्रेतम् = अभिमतम् ।

तुम स्वयं चाहती हुई अत्यन्त मूढ हो ॥ १० ॥

शूर्पणखा—आर्य ! क्या प्रेम गुण-दोष की तुलना करता है ? (अर्थात् स्नेह का मा गुण-दोष का विचार नहीं करता है)

लक्ष्मण—(मन ही मन) इस प्रकार बोलती हुई इसको किस प्रकार हटाऊं ? (विचार कर) अच्छा, देखा । (प्रकट) भद्रे ! आर्य राम के कुटी में प्रवेश करने के बाद मैं अनुकूल स्थान पर आपको देखूंगा ।

शूर्पणखा—आर्य ! यदि ऐसा है तो मैं उस पर्णकुटी के पास से ही आप की प्रतीक्ष करूंगी ।

लक्ष्मण—(मन ही मन) अच्छा, समय बिताना विघ्नकारक है । (प्रकट) जो आपको अच्छा लगे वही हो ।

शूर्पणखा—जं अज्जो आणवेदि । (यदार्य आज्ञापयति ।)

(इति निष्क्रान्ता)

लक्ष्मणः—(सविमर्शम्) परीक्षास्पदमेषा । कुतः—

क्वेदं वनं वनचरैरपि दुर्विगाहं
क्वेयं वधूः कुवलयच्छविचोरनेत्रा ।
हेमारविन्दमकरन्दरसोपयोगां
कः श्रद्दधीत जलधौ कलहंसकन्याम् ॥ ११ ॥

क्वेदं वनमिति ॥ वनचरैः अपि दुर्विगाहम् इदम् वनम् क्व, कुवलयच्छविचोरनेत्रा इयम् वधूः क्व, हेमारविन्दमकरन्दरसोपयोगाम् कलहंसकन्याम् जलधौ कः श्रद्दधीत इत्यन्वयः । वनचरैरपि = वने चरन्ति इति वनचराः किरातादयः तैरपि, दुर्विगाहम् = दुष्प्रापम् , इदम् = जनस्थानसंज्ञकम् , वनम् = विपिनम् , क्व = कुत्र, कुवलयच्छविचोरनेत्रा = कुवलयानाम् = उत्पलानाम् श्वेतकमलानामिति यावत् , छविः = शोभा तां चोरयतः=अपहरतः नेत्रे यस्याः सा श्वेतकमलशोभाहरणशील-नयना इत्यर्थः, इयम् वधूः = दृश्यमाना वनिता, क्व = कुत्र, हेमारविन्दमकरन्दर-सोपयोगाम् = हेमारविन्दस्य = सुवर्णकमलस्य यः मकरन्दरसः = पुष्परसः तस्यो-पयोगः = आस्वादनं यस्याः ताम् । अथवा हेमारविन्दमकरन्दरसः उपयोगः = उप-जीवनसाधनं यस्याः तामिति विग्रहः । कलहंसकन्याम्=मरालबालिकाम् , जलधौ= सागरे, कः श्रद्दधीत=को विश्वसेत् । यथा मातङ्गमकरादिसङ्कुले सागरे कलहंसक-न्यायाः प्रसङ्गो नोचितस्तथैव मृगयाव्यापृतैः किरातादिभिरपि दुष्प्रापे सिंहप्रभृति-हिंसकजन्तुबहलेऽस्मिन् वने वनितासञ्चार अप्रासङ्गिक इति ध्येयम् । वसन्ततिलकं वृत्तम् । तल्लक्षणं हि "ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजाजगौगः" । दृष्टान्तोऽलङ्कारः ॥११॥

शूर्पणखा—आर्य की जो आज्ञा । (चली जाती है)

लक्ष्मण—(विचार करते हुए) यह नारी तो परीक्षा के योग्य है । क्योंकि—जंगल में विचरण करने वाले किरातों के द्वारा भी प्रवेश नहीं करने योग्य कहां यह जंगल और कुवलय के पत्तों की शोभा को चुरा लेने वाले नेत्रों से युक्त कहां यह रमणी ? स्वर्ण-कमल के मकरन्द-रस का आस्वादन करने वाली कलहंस-बालिका को समुद्र में कौन विश्वास कर सकता है । (अर्थात् जिस प्रकार कलहंस की बालिका सरोवर में ही शोभित होती है उसी प्रकार यह रमणी भी नगर में ही शोभा बढ़ा सकती है, जंगल में नहीं) ॥ ११ ॥

एष पूर्वोद्दिष्टः प्रदेशः ।

(ततः प्रविशति रामः सीतया सह)

रामः—देवि ! नगराधिवासात् सविशेष इव वनाधिवासो मे प्र[ति]भाति । पश्य—

उद्यानं वनभूमयः कुसुमितैरुद्गन्धयः पादपैः
शैला निर्झरहासिनो जलधरश्यामा गिरिः कृत्रिमः ।

पूर्वोद्दिष्ट इति ॥ पूर्वोद्दिष्टः = पूर्वम् = पर्णकुटीनिर्माणानन्तरम् , उद्दिष्टः प्राप्यत्वेन अङ्गीकृतः । अथवा आर्येण पूर्वम् = प्राक् , उद्दिष्टः = पर्णशालां निर्मा[य] अत्रैव आगच्छेति संकेतविषयीभूतः, एष प्रदेशः = स्थान-विशेषः ।

सीतया सह रङ्गशालायां प्रवेशं कृत्वा रामः सीतायाः वनवासाभिरुचि[म्] उत्पादयन् साकेतनिवासापेक्षया वनवासस्य श्लाघ्यत्वं समर्थयते-देवीति ॥ नगरा[धि]धिवासात् = अयोध्यानिवासात् , वनाधिवासः = काननिवासः, सविशेषः ततोऽप्यधिक इव, मे = मम, प्रतिभाति = प्रतीयते, अयोध्यानिवासापेक्षया व[न]वासे अस्ति वैशिष्ट्यमिति भावः ।

तदेव समर्थयन्नाह उद्यानमिति ॥ कुसुमितैः पादपैः उद्गन्धयः वनभूमयः उद्यानम् , जलधरश्यामाः निर्झरहासिनः शैलाः कृत्रिमः गिरिः, सारसमूर्च्छितो[र्]मिवलयाः नद्यः घर्माभिषेकास्पदम् , शीकरसङ्गमात् शीताः सुरभयः सरोजानिल[ाः] मित्रम् (अस्तीति शेषः) इत्यन्वयः। कुसुमितैः=पुष्पितैः, पादपैः=वृक्षैः, उद्गन्धयः= उद्गतः = ऊर्ध्वंगतः गन्धः = वासः यासु ताः, वनभूमयः=काननप्रदेशाः, उद्यानम्= पुष्पवाटिका, निर्झरहासिनः = शिलासङ्घट्टनेन उद्गतफेनैः निर्झरैः=प्रपातैः हसन्त[ः] इव लक्ष्यमानाः, जलधरश्यामाः = जलधर इव = पयोधर इव श्यामाः = कृष्णवर्णाः शैलाः=पर्वताः, कृत्रिमः=क्रीडार्थं निर्मितः, गिरिः=पर्वतः, सारसमूर्च्छितोर्मिवलयाः= सारसानाम् = सलिलनिवासरतानां वलाकादीनाम् (पक्षपातैः) मूर्छिताः=

आर्य द्वारा निर्दिष्ट यह स्थान है ।

(उसके बाद सीता के साथ राम प्रवेश करते हैं)

राम—देवि ! नगर में निवास करने की अपेक्षा वन में निवास करना मुझे अधिक अच्छा लगता है। देखो—

खिले हुए फूलों वाले वृक्षों से उत्पन्न सुगन्धि से युक्त वन-भूमि ही उद्यान है । स्वच्छ झरनों की हंसी से युक्त मेघ के समान नीले पर्वत ही बनावटी पहाड़ हैं । सारस पक्षियों

नद्यः सारसमूर्च्छितोर्मिवलया घर्माभिषेकास्पदं
शीताः शीकरसङ्गमात् सुरभयो मित्रं सरोजानिलाः ॥ १२ ॥

सीता—अज्जउत्त! जाव अहं जीवामि दाव एत्थ एव्व वसिदुं मे बुद्धी जइ तह ण किलंमदि साकेदे गुरुजणो। (आर्यपुत्र ! यावदहं जीवामि तावदत्रैव वस्तुं मे बुद्धिः यदि तथा न क्लाम्यति साकेते गुरुजनः।)

लक्ष्मणः—(विलोक्य) अये ! अयमार्यः, अहो ! नु खलु कष्टं विधेः कर्म, नहि नहि कैकेय्याः। अम्ब ! कैकेयि !

द्विगुणं वर्धिताः, ऊर्मिवलयाः = वलयाकारेण वर्तमानाः तरङ्गाः यासु ताः, नद्यः = सरितः, घर्माभिषेकास्पदम् = घर्मकाले = ग्रीष्मसमये अभिषेकस्य = स्नानस्य, आस्पदम् = योग्यस्थानम् , शीकरसङ्गमात्=अम्बुकणसम्पर्कात् , शीताः=शीतलाः, सुरभयः = सुगन्धियुक्ताः, सरोजानिलाः = कमलसमीराः, मित्रम् = व्यजनवायुः, अस्तीति शेषः। नगरे उद्यानक्रीडापर्वतव्यजनपवनादिजन्यं सुखं यत्नसाध्यं भवति, वने त्विदं सर्वमेव अयत्नसाध्यम् अत एव स्वाभाविकरूपेण उपभोगयोग्यमिति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। ॥ १२ ॥

वनवासं प्रति स्वाभिरुचिं ज्ञापयन्ती जानकी आह—आर्यपुत्र ! यावदहं जीवामि इति ॥ न केवलं चतुर्दशसम्वत्सरान् एव विपिने वस्तुम् बुद्धिः अपि तु जीवनपर्यन्तमत्रैव निवसितुम् मदीयोऽभिलाषः।

तपोधनाचारजटावल्कलधारिणं कान्तामात्रसहायं रामं दृष्ट्वा करुणाविह्वली-

---

के पंखों से दूनी बढ़ी हुई लहरों वाली नदियां ही ग्रीष्म में स्नान के योग्य हैं। हिमकणों के सम्पर्क से सुगन्धित मलय पवन ही पंखे की हवा है ॥ १२ ॥

विमर्श—आनन्द और मनोविनोद के लिये राजा लोग राजमहल में ही उद्यान, क्रीडापर्वत, कमलयुक्त सरोवर और व्यजन वायु का आयोजन किया करते हैं। रामचन्द्र जी इन सब मनोरञ्जन के उपकरणों की झलक प्रकृति के स्वाभाविक अञ्चल में पाते हैं, अतएव उन्हें इन सबों में ही राजकीय उपकरणों से प्राप्त होने वाले आनन्द की अनुभूति होती है !

सीता—आर्यपुत्र ! जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक यहीं पर निवास करने की हमारी इच्छा है, यदि अयोध्या में गुरुजन उस प्रकार दुःखी न होते हों।

लक्ष्मण—(देखकर) अहा, यह आर्य राम हैं। हा, विधि का विधान कष्टदायक है, नहीं नहीं कैकेयी का। (कर्म दुखप्रद है) मातः कैकेयि !

आर्येणांशुकमुज्झता धृतमभूदापाटलं वल्कलं
विन्यस्तं पदमार्यया वृकवधूपादाङ्कपांसौ पथि।
सन्तापैस्तनुतामुपैति भरतः पर्याकुलाः कोसलाः
वैधव्यं हतमास्थिता त्वमपि ते धिक्कर्म सर्वङ्कषम् ॥ १३ ॥

कृतचित्तः लक्ष्मणः 'अहो नु खलु' इत्यादिना विस्मयं प्रदर्शयन् रामस्येममवस्थाविशेषं विधिकृतं मन्यमानः 'कष्टं विधेः कर्म' इत्युक्त्या अनुचितघटनाविषयत्वाद् विधेः कर्मणः कष्टत्वं प्रतिपादयति। अथ तदानीमेव वनवासरूपं कैकेयीकर्महेतुकं दुरवस्थाविशेषं निश्चित्य तस्य नियतिकृतत्वं निषेधति—नहि नहि कैकेय्या इति। रामस्य वनवासरूपं दुरवस्थाविशेषं प्रति कैकेय्याः कर्म एव कारणं न तु विधेः इति भावः। कैकेय्याः दुष्कर्म एव विवृणोति—

आर्येणांशुकमिति ॥ अंशुकम् उज्झता आर्येण आपाटलम् वल्कलम् धृतमभूत्, आर्यया वृकवधूपादाङ्कपांसौ पथि पदम् विन्यस्तम्, भरतः सन्तापैः तनुताम् उपैति, कोसलाः पर्याकुलाः (सन्ति) त्वमपि हतम् वैधव्यम् आस्थिता (अतः) ते सर्वङ्कषम् कर्म धिक् इत्यन्वयः। अंशुकम् = वसनम्, उज्झता=मुञ्चता, आर्येण = भ्रात्रा रामेण, आपाटलम् = ईषच्छ्वेतरक्तम्, वल्कलम् = त्वक्, धृतमभूत् = स्वीकृतमासीत्, आर्यया = पूज्यया, वृकवधूपादाङ्कपांसौ = वृकवधूनाम् = ईहामृगभार्याणाम् "कोकस्त्वीहामृगो वृकः" इत्यमरः, पादाः = चरणाः तेषाम् अङ्काः = चिह्नानि येषु तेषां पांसवः = रजांसि यस्मिन्, पथि = मार्गे, पदम् = चरणम्, विन्यस्तम् = स्थापितम्, भरतः = कैकेयीनन्दनः, सन्तापैः = भ्रातृवियोगपितृविनाशादिहेतुकैः परितापैः, तनुताम् = कृशताम् क्षीणतामिति यावत्, उपैति = प्राप्नोति, कोसलाः = कोसलदेशवासिनो जनाः, पर्याकुलाः = खिन्नचित्ताः, (सन्ति) त्वमपि = न केवलम् अन्ये एव त्वत्कर्मदुःखिताः अपि तु कैकेय्यपि स्वदुष्कर्मवशात्, हतम् = अत्यन्तनिकृष्टम्, वैधव्यम् = पत्यभावजन्यावस्थाविशेषम्, आस्थिता = प्राप्ता, (अतः) ते = तव, सर्वङ्कषम् = सर्वविनाशहेतुम्, कर्म = कार्यम्, धिक्। अत्र धिक् शब्द

रेशमी वस्त्र को छोड़ते हुए आर्य ने कुछ कुछ सफेदी लिए लाल रंग के वल्कल वस्त्र को धारण किया। आर्या सीता ने भेड़ियों की स्त्रियों के चरणों से अङ्कित धूलि वाले मार्ग में अपने चरणों का निक्षेप किया। भरत सन्ताप से दुर्बलता को प्राप्त कर रहे हैं, कौसल-देश के निवासी शोक से व्याकुल हैं। तुमने भी अत्यन्त निन्दित विधवा की अवस्था को प्राप्त किया है। सभी के विनाशक तुम्हारे आचरण को धिक्कार है ॥ १३ ॥

यावदार्यमुपसर्पामि । (उपसृत्य) जयत्वार्यः ।

रामः—लक्ष्मण ! किमवसितस्तवारम्भः ।

लक्ष्मणः—आर्य ! अथ किम् ।

रामः—तेन हि तस्य मार्गमादेशय ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । इत इतः ।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

रामः—(लक्ष्मणस्य मुखरागं विलोक्य) वत्स ! लक्ष्मण !

मार्गे निर्वृतिमार्गमार्गणपरानाराधयन्तो मुनीन्
स्वैरं सेविततीर्थसिन्धुपयसो दूरं निरस्ताधयः ।

शब्दः निन्दावाचकः । अन्येषां स्वस्य च विनाशहेतुः तव कर्म सर्वथा निन्द्यमेवेति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १३ ॥

उपसर्पामि = समीपं गच्छामि ।

अथ लक्ष्मणकृतसमुदाचारः रामः पर्णशालां प्रति गच्छन् मार्गे लक्ष्मणस्य कैकेयीकर्मस्मरणजन्यमुखरागं विलोक्य तं सम्बोधयन् कैकेयीकृतस्य कर्मणः स्वपक्षे उपकारत्वम् उपपादयति—मार्ग इति ॥

लक्ष्मण ! मार्गे निर्वृतिमार्गमार्गणपरान् मुनीन् आराधयन्तः, स्वैरं सेविततीर्थसिन्धुपयसः दूरं निरस्ताधयः वयम् केकयेन्द्रसुतया मात्रा व्याजेन भुवः स्वाम् धुरम् उत्सृज्य इक्ष्वाकुभिः यातव्यम् मुनिवनम् नीताः इत्यन्वयः । हे लक्ष्मण ! मार्गे = वनपथे, निर्वृतिमार्गमार्गणपरान् = निर्वृतिप्राप्तये = मोक्षलाभाय यो मार्गः = श्रवणादिरूपः पन्थाः तस्य मार्गणम् = अन्वेषणम् तस्मिन् परान् = निरतान्, मुनीन् = ऋषीन्, मोक्षप्राप्तिपथप्रवृत्तान् ऋषीन् इत्यर्थः, आराधयन्तः = सेव-

---

तब तक आर्य के समीप जाता हूँ । (समीप पहुँच कर) आर्य की जय हो ।

राम—लक्ष्मण । तुम्हारा कार्य पूर्ण हो गया ?

लक्ष्मण—आर्य ! और क्या ।

राम—तो उसका मार्ग बतलाओ ।

लक्ष्मण—आप की जो आज्ञा । इधर इधर । (सभी घूम कर चलते हैं) ।

राम—(लक्ष्मण के मुख की लाली देखकर) वत्स लक्ष्मण ! मार्ग में मोक्षपथ के अन्वेषण में तत्पर ऋषिजन की आराधना करते हुए, स्वेच्छया तीर्थों में विद्यमान गंगा-यमुना प्रभृति नदियों के जल से अपनी मानसिक चिन्ताओं को दूर करते हुये

मात्रा लक्ष्मण ! केकयेन्द्रसुतया व्याजेन नीता वयं
स्वामुत्सृज्य धुरं भुवो मुनिवनं यातव्यमिक्ष्वाकुभिः ॥ १४ ॥

लक्ष्मणः—सत्यमाह लोकः "न सन्त्यगुणा गुणवताम्" इति ।

रामः—लक्ष्मण ! किं नाद्यापि शान्तस्ते मातरि संरम्भः ।

लक्ष्मणः—आर्य !

मानाः, स्वैरम् = यथेच्छम् सेवितम् = आस्वादितम् तीर्थभूतानाम् सिन्धूनाम् = गङ्गायमुनादीनां सरिताम् पयः = जलं यैः (अत एव) दूरं निरस्ताधयः = निरस्ता निःशेषेण अस्तंगताः आधयः = मनोव्यथाः येषाम् ते "पुंस्याधिर्मानसी व्यथा" इत्यमरः, वयम्, केकयेन्द्रसुतया = केकयराजकन्यया, मात्रा = कैकेय्या, व्याजेन = छलेन, भुवः = पृथिव्याः, स्वाम् = स्वकीयाम, धुरम् = राज्यभारम् , उत्सृज्य = परित्यज्य, इक्ष्वाकुभिः = इक्ष्वाकुवंशजैः नृपतिभिः, यातव्यम् = गन्तव्यम् , मुनि वनम् = तपोवनम्, नीताः = प्रापिताः । इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नाः सर्वे राजानः स्ववार्धक्ये पुत्रादिकं राज्ये नियोज्य मोक्षप्राप्त्यर्थं मुनिवनं समागच्छन्तीति परम्परा। तस्या एव परम्परायाः परिपालनाय मात्रा वयं तपोवनमानीता अतस्तस्या इदं कर्म अस्मान् सर्वथा उपकरोतीति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १४ ॥

अत्यन्तापकारिण्यामपि कैकेय्यामुपकारमवलोक्याह—सत्यमाहेति । गुणवताम् = सत्यविनयदयादाक्षिण्यादिगुणशालिनाम् , अगुणाः = दोषाः, न सन्ति। अथवा अगुणाः = गुणरहिताः जनाः न सन्ति । गुणैकपक्षपातिन उदारहृदयाः स्वान् प्रति अपकारिणोऽपि उपकारकत्वेन स्वीकुर्वन्तीति भावः ।

लक्ष्मणस्य कैकेयीदोषज्ञापकं वचनं श्रुत्वा तत्क्रोधोपशमनाय राम उपक्रमते-लक्ष्मण इति ॥ संरम्भः = आवेगः । अपराधिन्यपि माता सर्वथा वन्द्यैव न खलु कदाचिदपि निन्द्या, अतो मातरम्प्रति तवावेगः न साम्प्रतिकः ।

हमलोग केकेयराज की पुत्री माता कैकेयी के द्वारा, इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के द्वारा अपने राज्यभार को छोड़कर निवास करने योग्य तपोवन में भरत के राज्याभिषेक के व्याज से लाये गये हैं ॥ १४ ॥

लक्ष्मण—लोग सच ही कहते हैं कि 'गुणी लोगों के लिये दोष नहीं हैं ।'

राम—लक्ष्मण ! क्या अभी भी माता के प्रति तुम्हारा क्रोध शान्त नहीं हुआ ?

लक्ष्मण—आर्य !

मात्रोः प्रस्नविभिस्स्तनैस्त्वयि मुदा सम्फुल्लदृष्ट्योस्तयोः
तातस्याश्रुजलैस्समं शिरसि ते हैमात् क्षरन्त्यो घटात् ।
आपस्तत्र वसिष्ठमन्त्रजयिना मन्त्रेण रुद्धा यया
तां लोकोत्सवकालरात्रिमदयां मन्ये कथं मातरम् ॥ १५ ॥

अथ राममुखात् मातृशब्दमाकर्ण्य कुपितो लक्ष्मणः कैकेय्याः मातृत्वं खण्डयन्नाह—मात्रोरिति ॥ मुदा प्रस्नविभिः स्तनैः सह वर्तमानयोः तयोः मात्रोः, सम्फुल्लदृष्ट्योः (सत्योः) तातस्य अश्रुजलैः समम् हैमात् घटात् ते शिरसि क्षरन्त्यः आपः वसिष्ठमन्त्रजयिना मन्त्रेण यया रुद्धा (इत्थं) लोकोत्सवकालरात्रिम् अदयाम् ताम् कथम् मातरम् मन्ये इत्यन्वयः। मुदा = हर्षेण, प्रस्नविभिः = क्षीरं स्रवद्भिः, स्तनैः = कुचैः सह वर्तमानयोः तयोः मात्रोः—कौशल्यासुमित्रयोः, मुदा सम्फुल्लदृष्ट्योः = प्रसन्नातिरेकेण उत्फुल्लनेत्रयोः, (सत्योः) यद्वा स्तनशब्दः स्वविकारं स्तन्यं लक्षयति, प्रस्नविशब्दश्च स्वफलभूतस्य निष्यन्दस्य लक्षकः, तथा च प्रस्नविभिः = निष्यन्दमानैः, स्तनैः = स्तन्यैः क्षीरैरिति यावत् समं क्षरन्त्य इत्यन्वयो विधेयः। तातस्य = पितुर्दशरथस्य, अश्रुजलैः = रोदनवारिभिः नेत्राम्बुभिरित्यर्थः, समम् = सह, हैमात् = स्वर्णनिर्मितात् , घटात् = कलशात् , ते शिरसि = तव मस्तके, क्षरन्त्यः = स्रवन्त्यः, आपः = जलानि, वसिष्ठमन्त्रजयिना = वसिष्ठस्य = कुलगुरोः मन्त्रः = अभिषेकमन्त्रः तम् जयति इति तेन = कुलगुरुप्रयुक्ताभिषेकमन्त्रविजयिना, मन्त्रेण = रामवनवासात्मकदुरभिसन्धिना, यया = कैकेय्या, रुद्धाः = निरुद्धाः, (एवंभूताम्) लोकोत्सवकालरात्रिम् = लोकस्य उत्सवः = आनन्दः तस्य कालरात्रिः = संहारदेवता विनाशयामिनीत्यर्थः लोकानन्दसंहारदेवताभूताम् , अदयाम् = दयारहिताम् निष्ठुरामिति यावत् ताम् = कैकेयीम् , कथम् = केन प्रकारेण, मातरम् = जननीम् , मन्ये = जाने । सर्वथाऽनिष्टकार्यकारिणी मातापि न मातृबुद्धया सम्मानास्पदेति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । सहोक्तिरूपकालङ्कारयोः संसृष्टिः ॥ १५ ॥

वात्सल्य के कारण दूध चुलाते हुये स्तनों से युक्त कौशल्या और सुमित्रा की आंखें जब आनन्दातिरेक से प्रसन्न हो उठी थीं तब पिता जी की आँसुओं के साथ स्वर्ण के कलश के साथ आप के शिर पर गिरने वाले अभिषेक के जलों को जिसने वशिष्ठ के मन्त्र को भी जीत लेने वाली कुमन्त्रणा से रोक दिया था, लोगों के आनन्द की कालरात्रि, उस निष्ठुर हृदयवाली को हम किस प्रकार माता मान सकते हैं ॥ १५ ॥

रामः—(कर्णौ पिधाय) शान्तं पापं शान्तं पापम् ।

हते राज्ये भवान् भक्त्या प्रत्याचष्टे स्वमातरम् ।
अहो ! सन्तोषबाह्यानामधर्मैकरतं मनः ॥ १६ ॥

पश्य बाल ! पापात्मनः क्षत्रियस्य—

साधारणी नयविदां धरणिः कलत्रं

अथ रामो मातुरुपालम्भमसहमानस्तज्जन्यपापोपशमनार्थं शान्तं पापमित्या पठित्वा लक्ष्मणकृतोपालम्भस्यासमीचीनत्वमुपपादयति—हत इति ॥ हते रा भक्त्या भवान् स्वमातरम् प्रत्याचष्टे यत् तत् अहो ! सन्तोषबाह्यानाम् म अधर्मैकरतम् (भवतीति शेषः) इत्यन्वयः । हते = दुःखोत्पादकत्वेन अत्यन्तं गर्हि राज्ये भक्त्या = अभिलाषेण, भवान् = लक्ष्मणः, स्वमातरम् = निजजननीम् प्रत्याचष्टे = अधिक्षिपति, यत् , तत् , अहो = अतिकष्टम् , सन्तोषबाह्यानाम् = सन्तोषात् = परितोषात् , बाह्यानाम् = बहिर्भूतानाम् असन्तुष्टानामिति यावत् मनः = चेतः, अधर्मैकरतम् = हिंसाऽनृतवादगुरु-अधिक्षेपादितत्परं भवतीति शेषः भक्तियोग्यायाम्मातरि भक्तिं विहाय प्रत्याख्यानयोग्ये राज्ये तव भक्तिर्नोचिते भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ॥ १६ ॥

राज्याधिपत्ये क्षत्रियस्य दोषान् वक्तुमारभते—पश्येति ॥ बाल ! = गुणदोषविवे काऽसमर्थ !, पश्य = अवलोकय, सावधानेन त्वया मद्वचनमवगन्तव्यम् इति भावः । पापात्मनः = कलुषितहृदयस्य, क्षत्रियस्य = लब्धराज्यस्य राजन्यस्य साधारणी इति ॥ उपरिष्टादेव समागतस्य 'क्षत्रियस्य' इति शब्दस्य धरण्यादिना सम्बन्धो ज्ञेयः । (क्षत्रियस्य) धरणिः नाम कलत्रम् नयविदाम् साधारणी, मित्रम् अस्त्राणि, अरयः सहजाः सुताश्च, परस्य पापात् नरकेषु पतनम् , द्वे चामरे, सितम् आतपवारणम् च लाभः इत्यन्वयः । धरणिः=पृथिवी नाम (क्षत्रियस्य) कलत्रम्= भार्या, (या) नयविदाम् = नीतिज्ञानाम् , साधारणी=सामान्या, प्रथमं कमपि पतित्वेन स्वीकृत्य ततोऽधिकं सौन्दर्यादिगुणयुतमन्यं दृष्ट्वा तमभिसरति अतस्तत्र

राम—(दोनों कानों को बन्द कर) पाप शान्त हो, पाप शान्त हो । दुःखप्रद अतएव अत्यन्त निन्दनीय राज की अभिलाषा से अपनी माता की निन्दा करते हो । दुःख की बात है कि असंतुष्ट लोगों का मन सदा अधर्म कार्य में ही लगा रहता है ॥ १६ ॥

बालक लक्ष्मण ? देखो, अधिकार प्राप्त पापस्वभाव क्षत्रिय की—नीतिज्ञों की सामान्योप- योग्या पृथिवी स्त्री है । अस्त्र उसके मित्र हैं । और भाई तथा पुत्र ही उसके शत्रु हैं ।

अस्त्राणि मित्रमरयः सहजाः सुताश्च ।
पापात् परस्य पतनं नरकेषु लाभः
द्वे चामरे च सितमातपवारणं च ॥ १७ ॥

लक्ष्मणः—नाहं राज्याभिलाषाद्ब्रवीमि ।

रामः—किमन्यत्तव कोपकारणम् ।

लक्ष्मणः—विपर्यस्तः क्रम इति ।

सामान्यात्वं समुचितमेव । मित्रम् = सुहृत्, अस्त्राणि = खड्गादीनि शरीररक्षणसाधनानि एव नतु अमात्यादीनि, सहजाः = सोदराः भ्रातर इत्यर्थः, सुताश्च = पुत्राश्च, अरयः = शत्रवः । प्रायेण राजानो राज्यनिमित्तं भ्रातरं पितृपुत्रादिकञ्च निघ्नन्तो दृश्यन्ते । परस्य = अन्यस्य प्रजाजनस्येति यावत्, पापात् = दोषात्, नरकेषु = दुर्गतिषु, पतनम् = स्खलनम्, अत्र राज्यस्य ऐहिकपारलौकिकफलविरोधित्वं प्रतिपाद्य तथाकथितं लाभमाह—द्वे चामरे इति ॥ द्वे = द्विसङ्ख्यके चामरे = प्रकीर्णके, (चँवर इति लोके) सितम् = धवलम्, श्वेतमिति यावत्, आतपवारणम् = छत्रम्, च लाभः = फलम् । क्षत्रियस्य राज्याधिपत्यं सर्वथा दुःखायव न तु सुखाय, चामरछत्रादिकमपि कष्टप्रदमेवेति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥१७॥

विपर्य्यस्तः क्रम इति ॥ क्रमः=ज्येष्ठपुत्रस्य राज्यप्रदानरूपा परम्परा, विपर्य्यस्तः=

अपराध करने वाले अन्य प्रजावर्ग के दोष से उसका वास नरक में होता है । अधिकार मिलने पर राजा को केवल दो चामर तथा सफेद छत्र का ही लाभ होता है ॥ १७ ॥

विमर्श—क्षत्रिय लोग पृथिवी पर शासन करते हैं । वह पृथिवी एक के बाद दूसरे राजा के उपभोग में आती है । उसीका उपभोग पिता के बाद पुत्र भी करते हैं । राजा लोग किसी पर विश्वास नहीं करते । राज्य के लिए भाई तथा पुत्रों की हत्या भी कर दिया करते हैं । स्वयं निष्पाप होकर भी प्रजा के पाप से नरक की यन्त्रणा भोगते हैं अतः राजा का जीवन सर्वथा उपहासास्पद ही है । लाभ के नाम पर उन्हें केवल छत्र और चामर ही मिले हैं । उसी गर्हित राजजीवन के लिये परम वन्दनीया माता का तिरस्कार करना तुम्हारी मूढता है ।

लक्ष्मण—मैं राज्य की अभिलाषा से नहीं कहता हूँ !

राम—तो तुम्हारे क्रोध का दूसरा क्या कारण है ?

लक्ष्मण—क्रम को उलट दिया । (अर्थात् राज्याभिषेक की जगह आप को वनवास दे दिया, ज्येष्ठ भ्राता आप के रहते छोटे भाई भरत को राज्य दिया ।)

रामः—यद्येवमहं तव प्रथममुपालम्भविषयः। पश्य—

इन्द्रकल्पे स्थिते राज्ञि स्नेहपर्यश्रुलोचने।
अभिषेकाय निर्लज्जो यस्सिंहासनमास्थितः ॥ १८ ॥

सीता—सच्चं एव्व भणिदं अज्जउत्तेण। (सत्यमेव भणितमार्यपुत्रेण।

लक्ष्मणः—"वयसा परिणतोऽहं" इति तातस्तथा त्वयि प्रतिपन्नः।

विपरीतः कृतः। ज्येष्ठभ्रातरं रामं विहाय भरतस्य राज्यप्राप्तिप्रसङ्गेन, अथ यौवने यौवराज्यपदयोग्यस्य रामस्य वार्धक्ययोग्यवनवासप्रसङ्गेन परम्पराप्राप्त क्रमः मात्रा कैकेय्या विपरीतः कृतः इति भावः। अत एव मया कोपः क्रियते।

यदि मयि स्थिते भरतस्य राज्याधिकारः सम्वृत्तः, इत्ययं जनन्युपालम्भविषय स्तर्हि जीवत्यपि पितरि यौवराज्यपदभागहमेव प्रथमं तवोपालम्भविषयोऽस्मीति यद्येवमित्यादिना प्रतिपाद्य तदेव अग्रिमश्लोकेन समर्थयते—इन्द्रकल्प इति। इन्द्रकल्पे स्नेहपर्यश्रुलोचने राज्ञि स्थिते यः निर्लज्जः अभिषेकाय सिंहासनम् आस्थितः (सोऽहं तवोपालम्भविषय इति पूर्वग्रन्थेनान्वयः)। इन्द्रकल्पे॥ वासव तुल्ये, स्नेहपर्यश्रुलोचने = प्रेमपूरिताश्रुनयने, राज्ञि = दशरथे, स्थिते = वर्त्तमाने सति, यः, निर्लज्जः = निर्गता = दूरं गता लज्जा = त्रपा यस्मात् लज्जाशून्य इत्यर्थः (भूत्वा) अभिषेकाय = राज्याभिषेकाय, सिंहासनम् = राज्यासनम्, आस्थितः = नियुक्तो जातः (सोऽहं प्राथम्येन तवाधिक्षेपपात्रम्)। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १८ ॥

लक्ष्मणो रामस्य राज्याभिषेकविषयकं पितुर्हार्दिकरहस्यमुद्घाटयति—वयसा परिणत इति॥ अहम् = दशरथः, वयसा = अवस्थया, परिणतः = वार्धक्यमुपगतः, अस्मात् कारणात्, तातः=पिता दशरथः, तथा = तेन प्रकारेण, त्वयि = ज्येष्ठात्मजे रामे, राज्यम्प्रतिपन्नः = प्रतिपादितवान्।

राम—यदि ऐसा है तब तो मैं ही पहले तुम्हारी उलाहना का पात्र हूँ। देखो—

स्नेह-जनितअश्रु से पूर्ण नेत्रों वाले, इन्द्र के समान पराक्रमी राजा दशरथ के विद्यमान रहते हुए निर्लज्ज होकर हम राज्याभिषेक के लिये सिंहासन स्वीकृत किये ॥१८॥

सीता—आर्यपुत्र ने ठीक ही कहा है।

लक्ष्मण—"मैं अब बूढ़ा हो चला" यह समझ कर पिता ने आपके राज्याभिषेक का निश्चय किया था।

रामः—ननु भरतः कनीयान् मे ।

लक्ष्मणः—अहमशक्तः पृथिवीं रक्षितुमिति ।

रामः—बाल ! पश्य—

न कथं रक्षितुं शक्तः पृथिवीमात्मदेवताम् ।
दानवोन्मूलनं तेजो यस्य द्यामपि रक्षति ॥ १९ ॥

लक्ष्मणः—किन्तु पुत्रस्नेहात्तथा चापल्यं कृतमिति ।

यदि वय आधिक्यमेव मयि राज्यनिधाने कारणं तर्हि भरताऽपेक्षया मम वयोऽधिकत्वेन मयि स्थिते भरतस्य राज्याभिषेकः समुचित एवेति मन्यमानो राम आह—ननु भरत इति ॥

त्वयि राज्यनिधाने न वयआधिक्यं कारणमपितु तातस्य पृथ्वीरक्षाऽसामर्थ्यमेवेतिस्वाभिप्रायं लक्ष्मणो विवृणोति—अहमशक्त इति ॥

अथ रामः लक्ष्मणोक्तां तातस्य पृथिवीरक्षणाशक्तिं प्रतिक्षिपति—बालेति ॥ बाल !=पितृपराक्रमानभिज्ञ !, पश्य = जगति गीयमानं पितुरतुलं सामर्थ्यमनुस्मर। कथमिति ॥ यस्य दानवोन्मूलनं तेजः द्यामपि रक्षति (सः) आत्मदेवताम् पृथिवीम् रक्षितुम् कथं न शक्तः (भवतीति शेषः) इत्यन्वयः । यस्य=दशरथस्य, दानवोन्मूलनम्=दैत्यविनाशकम्, तेजः = बलम्, द्यामपि = स्वाधिकारबहिर्भूतं स्वर्गमपि, रक्षति, सः, आत्मदेवताम् = आत्मैव देवता यस्याः स्वाधिकारे विद्यमानाम्, पृथिवीम् = वसुन्धराम्, रक्षितुम् = पालयितुम्, कथं न शक्तः = समर्थो भवतीति शेषः । यः स्वतेजसा स्वर्गमपि रक्षति सः स्वराज्यरक्षणे सर्वथा समर्थः इति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १९ ॥

अथ लक्ष्मणः रामेण निरस्ते क्रमभङ्गदोषे मातुर्दोषान्तरं प्रकटयति—किन्त्विति ॥

राम—हमसे तो छोटे भरत हैं ।

लक्ष्मण—"मैं वृद्धावस्था के कारण पृथिवी के पालन करने में असमर्थ हूँ" ऐसा समझ कर ।

राम—नासमझ ! देखो—

पृथिवी के देव राजा दशरथ उसकी रक्षा करने में किस प्रकार असमर्थ हैं, जिनका राक्षसों को संहार करने वाला तेज स्वर्ग की भी रक्षा करता है ॥ १९ ॥

लक्ष्मण—किन्तु पुत्र के स्नेह से ही माता ने उस प्रकार की चंचलता की ।

रामः—एष लोकस्वभावः बहुपुत्राणामेकस्मिन् ईषत्पक्षपातः। तव साधारणो भ्रातृस्नेहः।

लक्ष्मणः—किं बहुना, सर्वथा तातस्य मरणकारणं सैव संवृत्ता।

रामः—मा मा। तातं प्रति निरपराधः स गुरुजनः। पश्य—

नियमसलिलं पित्रोर्हर्तुं निरीक्षणवन्ध्ययोः
क्षिपति कलशं तोयाधारे पटुध्वनितं सुते।

पुत्रस्नेहात् = भरते स्नेहाधिक्यात्, तथा चापलम् = अभिलषितफलमुद्दिश्य त... विधमनुचितं कर्म कृतम्। स एव तस्याः दोषः।

रामः मातुः पुत्रस्नेहं स्वाभाविकम्मन्यमानः स्वं प्रति भक्त्यानुरक्तं लक्ष्मणम... क्षिपति—एष लोकस्वभाव इति॥ लोकानाम् = जनानाम्, एष स्वभावः = ई... प्रवृत्तिः, बहुपुत्राणाम्मध्ये एकस्मिन् = कस्मिन्नपि पुत्रविशेषे ईषत् = किञ्चि... पक्षपातः = स्नेहाधिक्यम् भवतीत्येष लोकस्वभाव इति सम्बन्धः। तव = भव... लक्ष्मणस्य, भ्रातृस्नेहः = सोदरप्रेम, किं साधारणः ?=किं सामान्यम् ?, अन्यापेक्ष... मां प्रति तव स्नेहाधिक्यं स्फुटमेवेति भावः।

यदा सर्वे दोषा निरस्तास्तदा पितृमरणकारणात्मकंदोषविशेषमाविर्भावयति-किम्बहुनेति॥

न माता तातमरणकारणम् तत्तु अन्यदेवेति राम आह—मा मा इति॥ मरण... कारणमेव विवृणोति—नियमसलिलमिति॥ निरीक्षणवन्ध्ययोः पित्रोः नियम... सलिलं हर्तुम् तोयाधारे पटुध्वनितम् कलशम् क्षिपति सुते उषसि मृगयाम् यात... राज्ञा वनद्विपशङ्कया रभसम् इषुः उन्मुक्तः (स एव इषुः) कालात् स्वयम् असू... अहरत् इत्यन्वयः निरीक्षणवन्ध्ययोः = निरीक्षणे = अवलोकने वन्ध्यौ = असमर्थ... तयोः = अन्धत्वेन आश्रमाद् बहिः पदमपि चलितुमसमर्थयोः, पित्रोः=मातापित्रोः... नियमसलिलम् = नियमार्थम् = सन्ध्यावन्दनादिहेतुकम् सलिलम् = जलम्, हर्तुम्=... आहर्तुम् आनेतुमित्यर्थः, तोयाधारे = नद्याम्, पटुध्वनितं यथा स्यात्तथा कलशम् = घटं, क्षिपति = प्रक्षिपति, सुते=मुनिकुमारे, उषसि = उषःकाले, मृगयाम्=आखेटम्,

---

राम—यह मनुष्य का स्वभाव है कि अनेक पुत्रों में से किसी एक पर कुछ अधिक पक्षपात होता है। क्या तुम्हारा सभी भाइयों के प्रति एकसा ही प्रेम है ?

लक्ष्मण—अधिक क्या, पिता जी के मरने का एकमात्र वही कारण हुई।

राम—नहीं नहीं, पिता जी के प्रति माता निरपराध हैं। देखो—जन्मान्ध माता-पिता के सन्ध्यावन्दनादि नियम के पालनार्थ जल लाने के लिये नदी में मुनि के पुत्र द्वारा

उषसि मृगयां याता राज्ञा वनद्विपशङ्कया
रभसमिषुरुन्मुक्तः कालादसूनहरत् स्वयम् ॥ २० ॥

सीता—जुज्जइ तादिसेण विहिणा होदव्वम् । का उण अण्णहा अत्ताणं लोअं अ विणासेदि । (युज्यते तादृशेन विधिना भवितव्यम् । का पुनरन्यथा आत्मानं लोकं च विनाशयति ।)

लक्ष्मणः—यद्येवमहमेवापराद्धः । प्रसीदत्वार्यः । कथाप्रसङ्गादविदितान्तरमागतास्स्मः पर्णशालाम् । प्रविशत्वार्यः ।

"मृगव्यं स्यादाखेटो मृगयास्त्रियाम्" इत्यमरः, याता=गच्छता, आखेटं कुर्वतेत्यर्थः, राज्ञा=अस्मत्पित्रा दशरथेन, वनद्विपशङ्कया=वनगजभ्रान्त्या, रभसम्=वेगेन, इषुः=बाणः, उन्मुक्तः (स एव) कालात्=समयं प्रतिपाल्य, (तातस्य) असून्=प्राणान्, अहरत्=अपहृतवान् । ध्वनिसाम्यनिमित्तया वनगजभ्रान्त्या राज्ञा प्रयुक्तः शरो मुनिकुमारवधहेतुकं मुनिशापं द्वारीकृत्य तातमरणहेतुः सञ्जात इति भावः । हरिणी वृत्तम् । तल्लक्षणं हि—रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा ॥ २० ॥

लक्ष्मणः राममुखात् तातमरणरहस्यं ज्ञात्वा स्वापराधं स्वीकरोति—यद्येवमिति ॥ यदि एवम्=पुत्रवियोगसन्तप्तमुनिशाप एव पितृविनाशहेतुश्चेत् अहमेव=लक्ष्मण एव अपराद्धः=दोषी अस्मीति शेषः । आर्यः=भवान्, प्रसीदतु=प्रसन्नोभवतु, बालोऽयमिति बुद्ध्या ममापराधः क्षन्तव्यः, कथाप्रसङ्गात्=पूर्वोक्तवार्ताप्रसङ्गात्, अविदितान्तरम्=अविदितम् अविज्ञातम् अन्तरम्=मार्गदैर्घ्यम् यथा स्यात्तथा भूत्वा पर्णशालाम्=पर्णकुटीम्, आगताः स्मः=समायाताः स्मः (वयमिति शेषः।)

कलश डुबाने से आवाज उत्पन्न होने पर जंगली हाथी की आवाज की शङ्का से प्रातः काल शिकार खेलने के लिये जाते हुए राजा के द्वारा वेग से उस पर छोड़े गये बाण ने ही समय पाकर उनके प्राणों को हर लिया । (अर्थात् पुत्रशोक से विह्वल श्रवणकुमार के माता-पिता के शाप के कारण ही राजा को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा) ॥ २० ॥

सीता—यह भाग्य का ही विधान हो सकता है, अन्यथा ऐसी कौन नारी है जो अपना तथा लोक का विनाश करती है ।

लक्ष्मण—यदि ऐसी बात है तो मैं ही अपराधी हूँ । आर्य प्रसन्न हों । कथा-प्रसंग से बीच की दूरी का बिना अनुभव किए ही हम लोग पर्णकुटी आ गये । आर्य इसमें प्रवेश करें ।

रामः—लक्ष्मण ! त्वयाप्येकान्ते परिश्रमोऽपनीयताम् ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (इति निष्क्रान्तः)

रामः—(पर्णशालां प्रविश्य सर्वतो विलोक्य सविस्मयम्) देवि ! प
पश्य सर्वतोमुखनैपुण्यं वत्सलक्ष्मणस्य । इह हि—

धनुर्ज्यानिर्घोषैस्सरभसमपास्तं मृगकुलं
कृता पर्णैश्शाला शयनमपि पुष्पैः प्रतिनवैः ।
लताभिर्वेत्राणां विरचितमभूदासनमिदं
जलैस्सिन्धोः सिक्ता बलिकुसुमभाजो वनभुवः ॥ २१ ॥

लक्ष्मणनिर्मितां पर्णशालाम्प्रविश्य सर्वतस्तद्वैलक्षण्यञ्च विलोक्य रा
लक्ष्मणस्य गृहनिर्माणकौशलं प्रशंसति—देवि पश्येति ॥

सर्वतोमुखनैपुण्यम् = सर्वतोमुखम् = सर्वत्रव्यापि नैपुण्यम् = कौशलम् , अ
एव गृहनिर्माण चातुर्यमपि । शिल्पसौष्ठवमेव विवृणोति—धनुर्ज्यानिर्घोषैरिति ॥
धनुर्ज्यानिर्घोषैः मृगकुलम् सरभसम् अपास्तम् , पर्णैः शाला कृता, प्रतिनवैः पुष्पैः
शयनम् अपि (कृतमिति शेषः) वेत्राणाम् लताभिः इदम् आसनम् विरचितम्
अभूत्, सिन्धोः जलैः बलिकुसुमभाजः वनभूमयः सिक्ताः इत्यन्वयः । धनु-
र्ज्यानिर्घोषैः = धनुषः = कार्मुकस्य ज्या = मौर्वी तस्याः निर्घोषैः = ध्वनिभिः, मृग
कुलम् = पशुकदम्बकम्, सरभसम् = सवेगं यथा स्यात्तथा, अपास्तम् = निरस्तम्
दूरीकृतमिति यावत् , पर्णैः=दलैः, शाला=गृहम्, कृता=निर्मिता, प्रतिनवैः=अभि-
नवैः पुष्पैः=कुसुमैः, शयनमपि = शय्यापि (कृतमिति शेषः) वेत्राणाम् = वेतसाम्,
लताभिः = वल्लीभिः, इदम् आसनम् = इदम् पीठम्, विरचितमभूत् = निर्मितम-
भूत् , सिन्धोः = नद्याः, जलैः = वारिभिः, बलिकुसुमभाजः = यज्ञपुष्पशालिन्यः,
वनभुवः = काननप्रदेशाः, सिक्ताः = आर्द्रीकृताः, सेचनेन संस्कृता इत्यर्थः । सर्वतो-
भावेनेयं पर्णशाला अस्माकं निवासयोग्या कृतेति भावः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ २१ ॥

राम—लक्ष्मण ! तुम भी एकान्त में अपनी थकावट दूर करो ।

लक्ष्मण—आपकी जो आज्ञा । (चले जाते हैं)

राम—(पर्णकुटी में प्रवेश करके और आश्चर्य से चारों ओर (देखकर) देवि ! वत्स
लक्ष्मण की सर्वतोमुखी निपुणता को देखो । यहाँ पर—

धनुष की टङ्कार से उसने पशुओं के समुदाय को भगा दिया, पत्तों से पर्णकुटी का
निर्माण किया । नये नये फूलों से बिछावन तैयार किया । वेतों की लताओं से आसन
बनाया और नदियों के जलों में विकसित पुष्पों से युक्त वनभूमि को सिक्त किया ॥ २१ ॥

सीता—अज्जउत्त ! कुसुमपल्लवसमिद्धिहिं पण्णसालाविभूदिहिं कदत्थिदो पासादबहुमाणो । (आर्यपुत्र ! कुसुमपल्लवसमृद्धिभिः पर्णशालाविभूतिभिः कदर्थितः प्रासादबहुमानः ।)

रामः—देवि ! विविक्तं च स्थानमिदम् । सेव्यतां वनान्तमारुतः । तथाहि—

अशङ्किता शिथिलय पांसुधूसरं
स्तनांशुकं शुकहरितं शुकालपे ! ।
विशोषिताधरकमलं विसर्पता
तरङ्गितं तव मुखगन्धवाहिना ॥ २२ ॥

सीता प्रासादापेक्षया पर्णशालायां वैशिष्ट्यं प्रतिपादयति—आर्यपुत्र ! कुसुमपल्लवेति ॥ कुसुमानाम् = पुष्पाणाम्, पल्लवानि = किसलयानि तेषां समृद्धिः यासु ताभिः = पुष्पकिसलयसमृद्धिभिः, अथवा कुसुमपल्लवात्मिका समृद्धिः यासु ताभिः पर्णशालायाः विभूतिभिः = ऐश्वर्यैः, प्रासादबहुमानः = राजसदनपक्षपातः, कदर्थितः = अधरीकृतः, तिरस्कृत इत्यर्थः ।

विविक्तम् = विजनम्, एकान्तमिति यावत्, वनान्तमारुतः = काननपवनः, सेव्यताम् = स्पर्शसुखमनुभूयताम् ।

अशङ्कितेति ॥ हे शुकालपे ! विशोषिताधरकमलम् विसर्पता तव मुखगन्धवाहिना तरङ्गितम् (एवम्भूतम्) शुकहरितम् पांसुधूसरम् स्तनांशुकम् अशङ्किता (भूत्वा) शिथिलय इत्यन्वयः । हे शुकालपे ! शुकस्य = कीरस्य आलपः = आलापः स इव आलपो यस्याः तत्सम्बोधने शुकालपे, विशोषिताऽधरकमलम् = यथा अधरकमलम् = अधर एव = ओष्ठ एव कमलम् = सरोजम् विशोषितम् = शुष्कतां प्रापितं भवति तथा विसर्पता = विविधं निःसरता, तव = सीतायाः, मुखगन्धवाहिना = मुखोद्गतेन निःश्वासवायुना, तरङ्गितम् = तरङ्गवद्वर्त्तमानम् वीचिवच्चञ्चलमिति

सीता—आर्यपुत्र ! पुष्पों और लताओं की समृद्धि से युक्त पर्णकुटी के ऐश्वर्य ने राजमहल के सम्मान को भी तिरस्कृत कर दिया ।

राम—देवि ! यह स्थान निर्जन है । यहाँ पर वन के पवन का सेवन करो । क्योंकि—

हे शुक के समान मधुर बोलने वाली सीते ! तुम बिना शंका के धूलि-धूसरित और शुक के समान हरे रंग की अपनी चोली को शिथिल करो । वह चोली अधर-

सीता—जं अज्जउत्तो आणवेदि । (यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।)

(निष्क्रान्तौ)

इति शक्तिभद्रविरचिते चूडामणिनाटके

प्रथमोऽङ्कः ।

व्यज्यते, (एवम्भूतम्) शुकहरितम् = कीरवद्‌हरिद्वर्णम्, पांसुधूसरम् = रजोधू सरितम्, स्तनांशुकम् = पयोधरवसनम्, अशङ्किता (भूत्वा) = एकान्तत्वेन शंका रहिता भूत्वा शिथिलय = बन्धनादुन्मोचय । पर्णशालाद्वारं सर्वथा एकान्तमतोऽ शङ्किता भूत्वा कुचस्थं वस्त्रं शिथिलीकृत्य स्वेच्छं वनान्तमारुतसेवनेन अध्वश्रमाप नोदं कुरु इति भावः । सुचिरावृत्तम् । तल्लक्षणं तु—"चतुर्ग्रहैरिह उभौ सरौ नः" रूपकालङ्कारः ॥ २२ ॥

इति आश्चर्यचूडामणे 'रमा' टीकायां प्रथमोऽङ्कः ॥

कमल को सुखाकर बढ़ते हुये, तुम्हारे मुख के गंध को धारण करने वाले पवन से तरंगित है ॥ २२ ॥

सीता—आर्यपुत्र की जो आज्ञा ।

(दोनों चले जाते हैं ।)

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति ललितसुकुमारवेषा शूर्पणखा)

शूर्पणखा—(सनिर्वेदम्) पुणो वि तं एव्व रामं पदिभावे पसादइस्सम्। जस्स वअणप्पच्चएण लक्खणमासादिअ मूढसमिद्धं सरस्सदी विअ अकिदत्था एव्व णिवुत्तम्हि। अज्ज वि दाव मए पण्णसालस्स पस्से मुधा सो अअरुणो अपुरुसो अधम्मिओ अदक्खिणो सो मणुस्संतु पडिवालिदो। अहो! णु खु मए मन्दभाआए सेल्लो संपादिओ। अहवा एत्तिआइ वा तस्स भाअहेआणि जेण अहं पच्चादिट्ठम्हि। होदु इमस्स पुव्वजस्स सव्वं णिवेदिअ पच्चा जाणिस्सम् (परिक्रामति) (पुनरपि तमेव रामं पतिभावे प्रसादयिष्यामि यस्य वचनप्रत्ययेन लक्ष्मण-

---

यं ध्यात्वा जगदीश्वरं त्रिनयनं गौरीपतिं शंकरं,
रामेणापि च राक्षसेन्द्रविजये लब्धा प्रसिद्धिः परा।
यं ज्ञात्वा शिवतामुपैति परमां प्राज्ञो जनश्शाश्वतीं,
नित्यं रामपराय बन्धनभिदे देवाय तस्मै नमः॥

अथ शूर्पणखा कामानलदग्धहृदया लक्ष्मणवचनप्रत्ययेन पर्णशालासान्निध्यमवाप्य तस्यागमनं प्रतीक्षमाणाऽप्यनागतं तमवलोक्य सनिर्वेदं दीर्घश्वासादिभिरनुभावैरुपलक्षिता ततः प्रतिनिवृत्य किमिदानीम्मम कर्त्तव्यमस्तीति चिरं विमृश्य अनन्तरकरणीयं कर्म निश्चिनोति—पुनरपि इति॥ इतः पूर्वं रामेणापि सा निशाचरी वञ्चिताऽभूदत आह—पुनरपीति। तमेव रामम् = दयादाक्षिण्यादिगुणैः युक्तम् लक्ष्मणाग्रजम्, न लक्ष्मणवदतिरूक्षमिति। पतिभावे = भर्तृभावं निमित्तीकृत्य, यस्य वचनप्रत्ययेन='लक्ष्मणः त्वाम् स्वीकरिष्यति' इति वचने विश्वासेन, लक्ष्मणम्

(उसके बाद सुन्दर और सुकुमार वेषवाली शूर्पणखा प्रवेश करती है)

शूर्पणखा—(विराग के साथ) मैं फिर उसी राम को पतिरूप से प्राप्त करने के लिए प्रसन्न करूँगी जिसके वचन के विश्वास से लक्ष्मण के समीप जाकर, अधिक अज्ञानी पुरुष को प्राप्त कर सरस्वती की भाँति निष्फल ही लौट आयी हूँ। अभी भी पर्णकुटी के

मासाद्य मूढसमृद्धं सरस्वतीव अकृतार्थैव निवृत्तास्मि। अद्यापि तावत् मया पर्णशालायाः पार्श्वे मुधा सः अकरुणः अपुरुषः अधार्मिकः अदक्षिणः स मनुष्यजन्तुः प्रतिपालितः। अहो! नु खलु मया मन्दभाग्यया शल्यः सम्पादितः। अथवा एतावन्ति वा तस्य भागधेयानि येनाहं प्रत्यादिष्टास्मि। भवतु अस्य पूर्वजस्य सर्वं निवेद्य पश्चात् ज्ञास्ये।)

(ततः प्रविशति रामः सीतया सह)

रामः—वैदेहि! विदूरे सर्वं विस्मयनीयतया श्रूयते। पश्य—

आसाद्य लक्ष्मणं प्राप्य, सरस्वती इव = शारदा इव, मूढसमृद्धम् = मोहेनाधिकम्, अकृतार्थैव = अलब्धमनोरथैव, निवृत्तास्मि = प्रत्यावृत्तास्मि। यथा शारदा मूढोऽयमिति ज्ञात्वा तस्मान्निवर्त्तते तथाऽहमपि कामसुखानभिज्ञम् लक्ष्मणम्मत्वा निष्फलैव निवृत्तास्मीति भावः। अकरुणः = विपिने एकाकिनी शरणागताहं तेन संकेतव्याजेन दूरीकृता अतो दयारहितः, अधार्मिकः=सत्यपालनाद्याचारशून्यः, अपुरुषः= रसभावानभिज्ञत्वात् पौरुषहीनः, अदक्षिणः = प्रथमदर्शने वचनमात्रेणाप्यकृताभिनन्दः, अतो दाक्षिण्यरहितः, मनुष्यजन्तुः = यतोऽयं स्वदुर्भाग्यवशात् स्वयमुपनतं सुखं नाभिनन्दयत्यतो मनुष्यरूपेण जन्तुरेव। मन्दभाग्यया = मन्दं भाग्यं यस्याः तया, शल्यः = अत्र शल्यशब्दः पीडातिशयस्य लक्षकः, अतः शल्यसमुत्थदुःखमित्यर्थः। भागधेयानि = सौभाग्यानि, प्रत्यादिष्टास्मि = प्रत्याख्यातास्मि, यस्मात् त्रैलोक्यस्वामिनः रावणस्य सर्वाभिलाषपूरणैकसाधनभूता सहोदरी अहम् तेन प्रत्याख्याता अतः तस्य रामानुजस्य सौभाग्यमेतावदेव नाधिकम्, स्वल्पमेवेत्यर्थः। पूर्वजस्य = पूर्वं जातः पूर्वजः तस्य = रामस्य, सर्वम् = प्रत्याख्यानवृत्तं निवेद्य पश्चाद् ज्ञास्यामीत्यर्थः।

समीप उस दयाहीन, नीरस, अधार्मिक और अव्यावहारिक मनुष्य की मैंने व्यर्थ ही प्रतीक्षा की। ओह, मुझ अभागिन ने दुःख ही प्राप्त किया है। अथवा उसका इतना ही सौभाग्य है जिससे मैं तिरस्कृत हुई। अच्छा, इसके बड़े भाई को सारी घटना बता कर पीछे इससे समझूँगी।

(तदनन्तर सीता के साथ राम प्रवेश करते हैं)

राम—सीते! दूर में रहने वाली सभी चीजें अचरज भरी सुनी जाती हैं। देखो—

शैलायामिभिरम्बुवाहनिवहच्छायैस्त्रियामाचरैः
सेव्या पञ्चवटीति मे मतिरभूदुद्वेलकौतूहला।
सेयं देवि ! चिरोचितामुपनयत्युद्यानयोग्यां श्रियं
श्रोतुर्विस्मयनीयवस्तुविषयाः शैलाटवीसागराः ॥ १ ॥

सीतया सह रङ्गशालाप्रविष्टो रामः राक्षसावलोकनोत्कण्ठितः सन्ननेकाऽनेकविकटराक्षसव्याप्तत्वेन श्रुताम् पञ्चवटीमतथाविधां दृष्ट्वा लङ्कामपि तथैव मन्यमानो दूरवर्त्तिवस्तूनां तथाकथितविस्मयनीयत्वं प्रतिपादयति— शैलायामिभिरिति। शैलायामिभिः अम्बुवाहनिवहच्छायैः त्रियामाचरैः पञ्चवटी सेव्या इति मे मतिः उद्वेलकौतूहला अभूत्, देवि ! सा इयम् चिरोचिताम् उद्यानयोग्याम् श्रियम् उपनयति, शैलाटवीसागराः श्रोतुः विस्मयनीयवस्तुविषयाः (भवन्ति) इत्यन्वयः। शैलायामिभिः = पर्वतवद्विस्तृतैः पर्वताकारैरित्यर्थः, अम्बुवाहनिवहच्छायैः = अम्बुवाहानाम् = जलधराणाम् निवहः = समूहः, तस्य छाया इव छाया = शोभा येषाम् तैः= जलधरसमूहशोभैः, कृष्णवर्णैः, प्रतिक्षणं परिवर्तितशरीरैरिति वा, त्रियामाचरैः = निशाचरैः, पञ्चवटी = एतन्नामधेयाऽटवी, सेव्या = निवासयोग्या, इति, मे = मम (रामस्य) मतिः=बुद्धिः, उद्वेलकौतूहला=अतिशयकुतूहला, अभूत्, देवि !=सीते !, सा = विस्मयनीयत्वेन श्रुतिपथमागता, इयम् = अतथात्वेन दृश्यमाना पञ्चवटी, चिरोचिताम् = चिरपरिचिताम्, उद्यानयोग्याम् = उपवनोपयुक्ताम्, श्रियम् = शोभाम्, उपनयति = प्रापयति, शैलाटवीसागराः = शैलाश्च अटव्यश्च सागराश्चेति शैलाटवीसागराः = पर्वतारण्यसमुद्राः, श्रोतुः=श्रावकस्य, विस्मयनीयवस्तुविषयाः= आश्चर्यकरवस्त्वाश्रयाः, भवन्ति। 'पर्वताकारमायाविनिशाचराश्रया पञ्चवटी' इति मया पूर्वं श्रुतं न चात्र तथाविधं किमपि विस्मयनीयत्वेन दृष्टम्, प्रायः पर्वतादयो दूरत एव श्रावकस्य कौतूहलाश्रया भवन्तीति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १ ॥

पर्वत के शिखरों के समान विशाल, मेघसमूह की आकृति वाले राक्षसों के द्वारा पञ्चवटी निवास करने योग्य है, इस प्रकार की उत्सुकता से हमारी बुद्धि व्याप्त थी। हे देवि ! वही पञ्चवटी चिरपरिचित उपवन की शोभा को प्राप्त कर रही है। सुनने वालों के आश्चर्य के विषय पर्वत, जंगल और समुद्र ही होते हैं। (अर्थात् हम पञ्चवटी के सम्बन्ध में जिस भीषणता का अनुमान करते थे, यह ठीक उसके विपरीत प्रतीत होती है) ॥ १ ॥

सीता—अज्जउत्त ! अत्थि मह वि कोदूहलं वणन्तरप्पवुत्ताइ अच्छरिआइ पच्चा अन्तेउराणच्चवासस्स पुणो पुणो कहअमाणाए विह्मयं उप्पादेदुं। (आर्यपुत्र ! अस्ति ममापि कौतूहलं वनान्तरप्रवृत्तानि आश्चर्याणि पश्चादन्तःपुरनित्यवासस्य जनस्य पुनः पुनः कथ्यमानस्य विस्मयमुत्पादयितुम्।)

शूर्पणखा—(उपसृत्य) जेदु जेदु अज्जो। (जयतु जयत्वार्यः।)

रामः—सुन्दरि ! किं दृष्टस्त्वया लक्ष्मणः।

शूर्पणखा—आं दिट्ठो। (आं दृष्टः।)

रामः—किं श्रुतं तेन मे वचनम्।

शूर्पणखा—सुदं एव्व। (श्रुतमेव।)

रामः—किमिति तेन त्वं प्रत्याख्याता।

शूर्पणखा—तवस्सिधम्मेण अज्जं उवअरन्तस्स से किं तुए समाहि

सीतापि स्वकुतूहलं प्रकाशयति—आर्यपुत्र ! इति ॥ पश्चात् = वनवासानन्तरम्, वनान्तरप्रवृत्तानि आश्चर्याणि = वनमध्यघटितानि आश्चर्यकराणि अर्थान्तराणि, पुनः पुनः = वारम्वारम्, कथयन्त्याः = निवेदयन्त्याः (मम) अन्तःपुरनित्यवासस्य = नित्यं शुद्धान्तनिवासस्य जनस्य, विस्मयम् उत्पादयितुम् = आश्चर्यं जनयितुम्, कुतूहलमस्ति = कौतुकमस्ति।

प्रत्याख्यानकारणं पृच्छति—किमिति ॥ किमिति = तव प्रत्याख्यानस्य किं कारणमित्यर्थः।

अथ शूर्पणखा लक्ष्मणकृतस्वप्रत्याख्यानकारणं निवेदयति—तपस्विधर्मेणेति ॥

सीता—आर्यपुत्र ! मैं भी वनवास के बाद आश्चर्य उत्पन्न करने वाली बातों को बार बार कह कर बराबर राजमहल में रहने वाले लोगों को विस्मय में डालने के लिए उत्सुक हूँ।

शूर्पणखा—(समीप आकर) आर्य की जय हो।

राम—सुन्दरि ! क्या तुमने लक्ष्मण को देख लिया ?

शूर्पणखा—हाँ, देख लिया।

राम—क्या उसने मेरी बात सुनी।

शूर्पणखा—सिर्फ सुन ही लिया।

राम—उसने तुम्हें क्यों नहीं स्वीकार किया ?

शूर्पणखा—तपस्वी के आचरण से आर्य राम की सेवा करने वाले मुझे, तपस्या को

भङ्गस्स णिमित्तभूदाए त्ति। (तपस्विधर्मेण आर्यमुपचरतो मे किं त्वया समाधिभङ्गस्य निमित्तभूतयेति।)

रामः—(सस्मितमात्मगतम्) तस्यानेन वचनेन भवितव्यम्। (प्रकाशम्) भद्रे! पुनरपि भवतीं परिश्रमपथे नियोक्ष्यामि।

शूर्पणखा—मा मा एव्वं अज्जेण भणिदुं। एत्थ एव्व वसमाणा अज्जपादाइ अहं उवअरिस्सं। (मा मैवमार्येण भणितुम्। अत्रैव वसन्ती आर्यपादावहमुपचरिष्यामि।)

सीता—एसा खु तवस्सिणी अज्जउत्तं अहिकारिअ उप्पण्णेण सिणेहेण अत्तणो गुणपक्खपादं बिभावेदि। (एषा खलु तपस्विनी आर्यपुत्रमधिकृत्योत्पन्नेन स्नेहेन आत्मनो गुणपक्षपातं विभावयति।)

तपस्विधर्मेण = तपोव्रतानाम् नियमवलम्ब्य, आर्यम्=रामम्, उपचरतः = सेवमानस्य, मे = मम, किं त्वया समाधिभङ्गस्य=यमनियमादि–अङ्गसाध्योपास्यनिष्ठचित्तलयविनाशस्य, निमित्तभूतया = हेतुभूतया (प्रयोजनमिति शेषः)। तपोधनाऽऽचारमवलम्ब्य गुरुमनुचरतो मम सविधे समाधिभङ्गकारणभूतायास्तव नास्तिकिमपि प्रयोजनमिति भावः।

अथ सीता रामानुरक्तायां शूर्पणखायां गुणग्राहकतां प्रतिपादयति—एषा खल्विति॥ आर्यपुत्रम् = स्वामिनं रामम्, अधिकृत्य = विषयीकृत्य, अवलम्ब्येत्यर्थः, उत्पन्नेन = जातेन, स्नेहेन = अनुरागेण, एषा खलु = शूर्पणखा, तपस्विनी = तपोधना, आत्मनः = स्वस्य, गुणपक्षपातम् = गुणग्राहकत्वम्, विभावयति= प्रदर्शयति।

भङ्ग करने वाली तुम से क्या मतलब।

राम—(मन ही मन हँसते हुए) उसने ऐसा कहा होगा। (प्रकट) भद्रे! मैं फिर आप को लक्ष्मण के पास जाने का कष्ट देना चाहता हूँ।

शूर्पणखा—नहीं, आर्य ऐसा न कहें। यहीं पर रह कर मैं आप की सेवा करूँगी।

सीता—यह तपस्विनी आर्यपुत्र को लक्ष्य कर उत्पन्न प्रेम के द्वारा गुण के प्रति अपने पक्षपात को प्रकट करती है।

रामः—(शूर्पणखां विलोक्य) भद्रे ! तवायं व्यवसायः मयापि प्रार्थनीयः । किन्तु—

साक्षात्कृत्य समित्समिद्धमनलं यस्या गुरोराज्ञया
हस्तं दत्तमजात्मजेन मुनिना धर्मार्थमालम्बिषि ।
साप्येषा पदमक्षरं जिगमिषोर्बन्धाय मे कल्पते
सन्नाहोऽयमतः परं सुवदने ! चिन्त्यस्त्वया चिन्त्यताम् ॥२

अथ रामः शूर्पणखाया आत्मपरिग्रहाग्रहमवगत्य नैसर्गिकं गाम्भीर्यं प्रियम्वदत्वञ्च अपरित्यजन्नेव गम्भीरया वाचा प्रत्यादिशति भद्रे इति ॥ अत्र व्यवसायशब्दः व्यवसितवचनः । तवायं व्यवसायः = योऽयम्मया सह सम्वासः त्वया व्यवसितः सन् साम्प्रति प्रार्थ्यते सः मयापि = रामेणापि, प्रार्थनीयः = प्रार्थयितुं योग्यः ।

यद्यपि त्वं सौन्दर्यादिगुणैः मम सम्वासयोग्यैव तथाप्यस्ति कश्चिदुपरोध इति मत्वाऽऽह—साक्षात्कृत्येति ॥

सुवदने ! अहम् गुरोः आज्ञया अजात्मजेन मुनिना (सहितो भूत्वा) समित्समिद्धम् अनलम् साक्षात्कृत्य यस्याः दत्तम् हस्तम् आलम्बिषि साऽपि एषा अक्षरम् पदम् जिगमिषोः मे बन्धाय कल्पते (अतः) अयम् सन्नाहः, अतःपरम् त्वया चिन्त्यः चिन्त्यताम् इत्यन्वयः । हे सुवदने ! = हे सुमुखि !, अहम् = रामः, गुरोः = पितुः, आज्ञया = आदेशेन, अजात्मजेन मुनिना=वसिष्ठेन (सहितो भूत्वा) समित्समिद्धम् अनलम् = समिद्भिः = एधैः (यागादौ हूयमानैः काष्ठविशेषैः) समिद्धः = प्रवृद्धः यः अनलः = वह्निः तम् = हूयमानकाष्ठविशेषप्रज्वलिताग्निम्, साक्षात्कृत्य = साक्षित्वेन प्रमाणीकृत्य, यस्याः = सीतायाः, दत्तम् = कन्यापित्रा जनकेन तत्पुरोहितेन शतानन्देन वा प्रदत्तम्, हस्तम् = पाणिम्, धर्मार्थम् = अग्निहोत्रादिना धर्ममुद्दिश्य, आलम्बिषि = अवलम्बितवान्, गृहीतवानित्यर्थः, साऽपि

राम—(शूर्पणखा को देख कर) हमारे साथ रहने का तुम्हारा यह निश्चय हमारे द्वारा भी प्रार्थनीय है, किन्तु—काष्ठ से प्रवृद्ध अग्नि का साक्षात्कार करके (अग्नि को साक्षी रख कर) जनक अथवा शतानन्द के द्वारा प्रदत्त जिसके हाथ को हमने पिता की आज्ञा से ग्रहण किया, वह सीता भी ब्रह्मपद को प्राप्त करने के इच्छुक मेरे लिए बन्धन ही है । उसके अतिरिक्त हमने मुनिजन का यह वेष धारण कर लिया है, अतः हे सुन्दर मुखवाली रमणी ! अब इसके बाद विचारणीय विषय पर तुम स्वयं विचार करो । (अर्थात् अपने उपयुक्त किसी अन्य व्यक्ति का अन्वेषण करो) ॥ २ ॥

शूर्पणखा—जइ एव्वं ण सक्कुणोमि अण्णदो गमिदुं। एत्थ एव्व वसमाणा जीविअं परिच्चइस्सम्। (यद्येवं न शक्नोमि अन्यतो गन्तुम्। अत्रैव वसन्ती जीवितं परित्यक्ष्यामि।)

सीता—अज्जउत्त ! ण खु दाव उवेक्खणीओ से ववसाओ। (आर्यपुत्र ! न खलु तावदुपेक्षणीयोऽस्या व्यवसायः।)

रामः—भद्रे ! भूयोऽपि लक्ष्मणाभिगमनार्थमेव भवतीं प्रार्थये।

शूर्पणखा—संदं पावं, संदं पावं, अज्जस्स वअणं पमाणीकरन्तीए मए अपहत्थिदो इत्थिआसमुदाआरो। (शान्तं पापम्, शान्तं पापम्, आर्यस्य वचनं प्रमाणीकुर्वत्या मया अपहस्तितः स्त्रीसमुदाचारः।)

=पितुराज्ञया धर्मार्थं पत्नीत्वेन गृहीतापि, एषा = सीता, अक्षरम् = न क्षरतीति अक्षरम् = जन्मादिक्रियारहितम्, अविनाशि, नित्यमिति यावत्, पदम् = ब्रह्मप्राप्तिरूपमवस्थाविशेषम्, जिगमिषोः = प्राप्तुमिच्छतः, मे = मम, बन्धाय = अवरोधाय, कल्पते = भवति, अतोऽयं सन्नाहः = धर्ममुद्दिश्य विवाहितापि सीता मम मोक्षप्राप्तौ बाधिका भवेदतः प्रत्यक्षदृश्यमानवनवासजटावल्कलादि–धारणात्मिका सन्नद्धता ('तैयारी' इति लोके) अवलम्बितेति शेषः, अतः परम् = यतो मदीयः अवस्थाविशेषः ईदृशः, अतः परम् = अत ऊर्ध्वम्, चिन्त्यः = विचारणीयः विषयः, अथवा ममातिरिक्तः अन्य एव कश्चिद् युवा, त्वया = भवत्या, चिन्त्यताम् = विचार्यताम्, अथवा ईदृशे अवस्थाविशेषे विद्यमानस्य ममापि कर्तव्यम् त्वयैव चिन्तनीयम्, मत्कृते यदुचितं तद् ब्रूहीति रामाशयः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २ ॥

अथ राक्षसी रामोक्तिसूचितं प्रत्यादेशमवगम्य विक्षुब्धहृदयापि तं वशीकर्तुम् चेष्टमाना स्वाभिप्रायं प्रकटयति—यद्येवमिति ॥

व्यवसायः = भवत्सविधे प्राणत्यागात्मको निश्चयः,

अपहस्तितः = परित्यक्तः, स्त्रीसमुदाचारः = स्त्रीणाम् = नारीणाम् समुदाचारः = शीलरक्षणाचारः, मर्यादाविशेष इति यावत्,

---

शूर्पणखा—यदि ऐसा है तो मैं अन्यत्र नहीं जा सकती। यहीं पर रहती हुई मैं अपने प्राणों को छोड़ दूँगी।

सीता—आर्यपुत्र ! इस रमणी के व्यापार की उपेक्षा नहीं होनी चाहिये।

राम—भद्रे ! मैं आप से फिर लक्ष्मण के समीप ही जाने का आग्रह करता हूँ।

शूर्पणखा—अमङ्गल शान्त हो, अमङ्गल शान्त हो। आप की बातों को मान कर मैंने स्त्री के आचरण का परित्याग किया।

रामः—भद्रे ! मा मैवम् । एष सनातनो धर्मः । पश्य—

अभिसरणमयुक्तमङ्गनाना-
मिति तव सुन्दरि ! मा स्म भूद् वितर्कः ।
ननु पतिमगमत् स्वयं नदीनां
सरिदपि शम्भुजटामुहूर्तमाला ॥ ३ ॥

शूर्पणखा—अज्जपादेसु परवसा अहं किं ण करिस्सम् । (आत्मगतम् ।
होदु, जइ सो जणो दाणिं वि पच्चादेसपरुसो म अन्तरेण भवे, पच्चा अ
सहअं एत्थ अत्तणो पंकिदिं पडिवज्जिस्सम् । (इति निष्क्रान्ता) (आ
पादेषु परवशाहं किं न करिष्यामि । भवतु, यदि स जनः इदानीमपि प्रत्यादे

सनातनः=सदाभवः सनातनः=शाश्वतः । नारीणाम्प्रियं प्रति अभिसर
नाम धर्मः सनातन इति रामः प्रतिपादयति—अभिसरणमिति ॥ सुन्दरि ! अङ्गन
नाम् अभिसरणम् अयुक्तम् इति (योऽयम्) तव वितर्कः (सः) मा स्म भूत
ननु शम्भुजटामुहूर्त्तमालासरिदपि नदीनाम् पतिम् स्वयम् अगमत्, इत्यन्वयः
सुन्दरि ! =शोभने !, अङ्गनानाम्=रमणीनाम्, अभिसरणम् =प्रियमुद्दिश्य सङ्के
स्थानम्प्रति गमनम्, अयुक्तम् =अनुचितम्, इति=इत्येवं रूपम्, तव=भवत्य
वितर्कः=विकल्पः, मा स्म भूत्=न भवतु, ननु, शम्भुजटामुहूर्त्तमाला=शम्भोः
शङ्करस्य जटा=सटा तस्याः मुहूर्त्तम्=क्षणं यावत् मालाभूता=दामभूता, स
दपि=गङ्गापि, नदीनाम्=सरिताम्, पतिम्=भर्त्तारम्, सागरमिति यावत्, स
यम्=आत्मना, अगमत्=अगच्छत् । स्पर्शमात्रेण पातकिनः पुनाना गङ्गा सु
लोकात् शम्भोर्जटावल्लीमाश्रित्य तेन मुहूर्त्तं लालितापि बहुपत्नीकमम्बुधिं स्वेच्छ
प्राप्तवतीति लोके प्रथितमेवाऽतो रमणीनामभिसरणात्मको धर्मो लोकसम्म
एवेति भावः । पुष्पिताग्रावृत्तम् । तल्लक्षणं हि—"अयुजि न युगरेफतो यका
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।" अर्थान्तरन्यासालङ्कारः ॥ ३ ॥
अथ स्वकार्यसिद्धये 'आर्यपादेषु' इत्यादिना लक्ष्मणसमीपगमनरूपं र

राम—भद्रे ! ऐसा मत कहो । यह सनातन धर्म है । देखो—स्त्रियों का अभिस
करना अनुचित है, इस प्रकार का विकल्प तुम्हें नहीं होना चाहिए । शंकर की जटा
माला का रूप धारण करने वाली गंगा भी नदियों के स्वामी समुद्र के समीप स
गयी थी ॥ ३ ॥

शूर्पणखा—आर्य के चरणों में आसक्त मैं क्या नहीं करूँगी । (मन ही मन) अच्छ
यदि वह व्यक्ति (लक्ष्मण) अब भी मेरे प्रति उदासीन हुआ तो मैं फिर अपने वास्त

परुषो मामन्तरेण भवेत्, पश्चादहं सहजामेवात्मनः प्रकृतिं प्रतिपत्स्ये ।)

सीता—अज्जउत्त ! णं तवस्सिणीं बालिअं पच्चादिसंतेण अज्जउत्तेण अअं दाव जणो उक्कण्ठाभाअणं किदो । (आर्यपुत्र ! ननु तपस्विनीं बालिकां प्रत्यादिशता आर्यपुत्रेण अयं तावज्जनः उत्कण्ठाभाजनं कृतः ।)

रामः—देवि ! न संसर्गमर्हति कुटुम्बिनां अनर्गलः स्त्रीजनः ।

सीता—जइ एव्वं अविस्ससणीओ जणो किस्स हेदुणो कुमारस्स समीपे पेसिदो । (यद्येवम् अविश्वसनीयो जनः, कस्य हेतोः कुमारस्य समीपे प्रेषितः ।)

प्रस्तावं प्रकटरूपेण स्वीकृत्य पुनरपि लक्ष्मणकृतप्रत्यादेशं शङ्कमाना निशाचरी हार्दिकं दुरभिसन्धिम् प्रकटयति—भवतु इति ॥ यदि इदानीमपि = अधुनापि = पुनरपि तत्सविधे मम गमनानन्तरमपि, स जनः=लक्ष्मणः, मामन्तरेण=मामुद्दिश्य प्रत्यादेशपरुषोभवेत् = प्रत्याख्यानकठिनो भवेत्, पश्चात् = प्रत्यादेशानन्तरम्, आत्मनः = स्वस्य, सहजाम् = स्वाभाविकीम्, प्रकृतिम् = स्वरूपम्, राक्षसीरूपाकृतिमिति यावत्, प्रतिपत्स्ये = प्राप्स्यामि । पुनरपि लक्ष्मणेन प्रत्याख्याता सती मायारूपं परित्यज्य नैसर्गिकं निशाचरीरूपं धारयिष्यामीति भावः ।

शूर्पणखाविषयकं रामकृतप्रत्यादेशेन दुःखमनुभवन्ती सीता कथयति—आर्यपुत्रेति ॥ उत्कण्ठाभाजनं कृतः = उत्कण्ठाशब्दोऽत्र व्यसनवाची, अयं जनः व्यसनस्य भाजनम् = पात्रम् कृतः, स्वत्स्नेहव्यापृतायास्तस्या अतिचिन्तनीयं दशान्तरमालोच्य मम व्यसनाधिक्यं जायते इति सीताशयः ।

अनर्गलः = अर्गलशब्दः श्रुतिस्मृतिसिद्धमर्यादालक्षकः तामतिक्रम्य इतस्ततः परिभ्रमणस्वभावः स्त्रीजनः = उन्मर्यादः स्त्रीसमाजः, कुटुम्बिनाम् = गृहस्थानाम्, संसर्गम् = साहचर्यम्, नार्हति = प्राप्तुं न शक्नोति ।

स्वरूप को धारण करूँगी । (ऐसा सोचकर चली जाती है) ।

सीता—आर्यपुत्र ! तपस्विनी बालिका को अस्वीकार करते हुए आर्यपुत्र के द्वारा यह जन (सीता) अधिक दुःखी हो गया है ।

राम—देवि ! इधर उधर भटकने वाली स्त्री गृहस्थों का सम्बन्ध नहीं प्राप्त कर सकती है ।

सीता—इस प्रकार के अविश्वासी व्यक्ति को कुमार लक्ष्मणके पास क्यों भेजा ?

रामः—देवि ! तया सह कुमारस्य सम्बन्धः कुतः। ननु तस्याः प्रत्यादेशव्यपदेशः।

सीता—हा ! कुमारेण पच्चाखिदे का उण से गई। (हा ! कुमारेण प्रत्याख्याते का पुनरस्या गतिः।)

रामः—(सीतां निरीक्ष्य) देवि ! तिष्ठतु सर्वम्।

चरणनलिनसाध्यं यानमाहार्यमम्भः
शयनमवनिपृष्ठं मण्डनं स्नानमात्रम्।
तव तरुणि ! तथापि त्वं श्रिया चक्षुषी मे
हरसि पुरमयोध्यामावसन्तीव चित्रम् ॥ ४ ॥

प्रत्यादेशव्यपदेशः = प्रत्याख्यानार्थो व्याजः। लक्ष्मणसमीपप्रेषणात्मकेन छद्मना तस्याः प्रत्याख्यानं विहितमित्यर्थः।

चरणनलिन इति ॥ हे तरुणि ! तव यानम् चरणनलिनसाध्यम्, आहार्यम् अम्भः, शयनम् अवनिपृष्ठम्, मण्डनम् स्नानमात्रम्, तथापि त्वम् अयोध्याम् पुरम् आवसन्ती इव मे चक्षुषी श्रिया हरसि इति चित्रम्, इत्यन्वयः। हे तरुणि = हे नवयौवने (यद्यपि) तव = सीतायाः, यानम् = गमनम्, चरणनलिनसाध्यम् = कमलवत्सुन्दरसुकुमाराभ्यां पादाभ्यां साध्यम्, आहार्यम् = भोज्यम्, अम्भः = जलमात्रम्, शयनम् = शय्या, अवनिपृष्ठम् = भूतलम्, मण्डनम् = अलङ्कारः, प्रसाधनसाधनमिति यावत्, स्नानमात्रम् = मज्जनमात्रम्, (तथापि) त्वम् = सीता, अयोध्यां पुरम् = एतन्नाम्नीं नगरीम्, आवसन्ती इव = निवसन्ती इव, मे = रामस्य, चक्षुषी = नयने, श्रिया = कान्त्या, हरसि = कर्षसि, इति, चित्रम् = आश्चर्यम्।

राम—देवि ! उसके साथ कुमार का सम्बन्ध कैसा ? यह तो केवल उसको हटाने का बहाना था।

सीता—हा ! कुमार के द्वारा तिरस्कृत होने पर उसकी क्या दशा होगी ?

राम—(सीता को देखकर) देवि ! सब कुछ हो। तुम अपनी गमनक्रिया चरणकमलों से ही निष्पादन करती हो, जल तुम्हारा भोजन है। पृथिवी तुम्हारी शय्या है। स्नानमात्र तुम्हारा आभूषण है। फिर भी हे सुन्दरि ! तुम अयोध्या नगरी में निवास करती हुई की भाँति अपनी शोभा से मेरी आँखों को हर लेती हो, यह आश्चर्य की बात है ॥ ४ ॥

सीता—(आत्मगतम्) किं णु खु ण जाणादि अज्जउत्तो णं महरिसिपदिणीए अणसूआए अस्समे मं विसज्जअन्तीए मए दिण्णं वरं तुह भत्तुणो दंसणपहे सव्वं मण्डणं भविस्सदित्ति। (किन्तु खलु न जानात्यार्यपुत्रः ननु महर्षिपत्न्या अनसूयया आश्रमे मां विसर्जयन्त्या मे दत्तं वरं तव भर्तुर्दर्शनपथे सर्वं मण्डमं भविष्यतीति ।)

(नेपथ्ये) तिष्ठ तिष्ठ पिशिताशने ! तिष्ठ ।

रामः—(आकर्ण्य) अये ! लक्ष्मणस्येव स्वरः ।

सीता—हं सो एव्व । (हं तस्यैव ।)

यद्यपि पूर्वोक्तं सर्वमपि वस्तुजातं ग्लानिनिमित्तं तथापि त्वं स्व-स्वाभाविककान्त्या मम नेत्रयुगलं विषयान्तरेभ्यो निवर्त्य, अन्तःकरणेन सह आत्मतादात्म्यं नयसीति आश्चर्यमिति भावः । मालिनीवृत्तम् । तल्लक्षणं हि—"न न म य य युतेयमालिनी भोगिलोकैः" । उत्प्रेक्षा-लुप्तोपमयोः संसृष्टिः ॥ ४ ॥

अथ सीता स्वयमेव आश्चर्यकारणं विमृशति—किन्तु खल्विति ॥ आर्यपुत्रः मम मण्डनविषयकम् अनसूयाऽनुग्रहं न जानाति इत्यर्थः । तव भर्तुरिति ॥ इदमेव वरं सीतायै अनसूयया प्रदत्तम्, तच्चान्तिमेऽङ्के लङ्कायां सीताया अग्निप्रवेशबीजम् । पिशिताशने = पिशितम् = शुष्कमांसम् अशनम् = भोजनं यस्याः तत्सम्बोधने पिशिताशने राक्षसि इत्यर्थः ।

निष्कोशेन = कोषबहिर्गतेन, निस्त्रिंशेन = खड्गेन ।

(अर्थात् जिस प्रकार आभूषणभण्डिता तुम अयोध्या में मुझे आनन्दित करती थी उसी प्रकार वनवास काल में भी अपने स्वाभाविक सौन्दर्य से मेरे नयनों को आनन्दित करती हो ।)

सीता—(मन ही मन) क्या आर्यपुत्र यह नहीं जानते हैं कि मुनिपत्नी अनसूया ने विदा करते समय हमें यह वरदान दिया था कि तुम्हारे स्वामी की दृष्टि में तुम्हारे शरीर में संलग्न सभी वस्तु आभूषण ही प्रतीत होगी । (नेपथ्य में) ठहरो ठहरो राक्षसि ! ठहरो ।

राम—(सुनकर) अरे, यह तो लक्ष्मण की सी आवाज है ।

सीता—ओह, उसी की है ।

(ततः प्रविशति लक्ष्मणः स्वरूपधारिण्या शूर्पणखया निष्कोशेन निस्त्रिंशेन च)

लक्ष्मणः— तिष्ठ तिष्ठ पिशिताशने ! तिष्ठ ।

रामः—(आकर्ण्य दृष्ट्वा) लक्ष्मण ! किमिदम् ।

भीमदंष्ट्रमरुणोर्ध्वमूर्धजं शैलवर्ष्म जलदोदरच्छवि ।
ताटकां हतवतस्ततोऽपि मे रूपमेतदवशं भयावहम् ॥ ५ ॥

सीता—(ससम्भ्रमम्) अज्जउत्त ! वारेहि वारेहि दाणिं रक्खसिं । (आर्यपुत्र ! वारय वारयेदानीं राक्षसीम् ।)

लक्ष्मण ! किमिद मिति ॥ पुरोदृश्यमानविलक्षणवस्तुस्वरूपजिज्ञासाविषयकमिदस्वाक्यम् । भीमदंष्ट्रमिति ॥ भीमदंष्ट्रम् अरुणोर्ध्वमूर्धजम् शैलवर्ष्म जलदोदरच्छवि एतत् अवशम् रूपम् ताटकाम् हतवतः मे ततोऽपि भयावहम् (प्रतिभाति) इत्यन्वयः । भीमदंष्ट्रम् = विकटदशनम्, अरुणोर्ध्वमूर्धजम् = अरुणाः = रक्तवर्णाः ऊर्ध्वंगताश्च मूर्धजाः = कचाः यस्मिन् तत् रक्तवर्णोर्ध्वगतकुन्तलमित्यर्थः, शैलवर्ष्म = शैल इव = पर्वत इव (कठोरं विस्तृतञ्च) वर्ष्म = शरीरं यस्य तत् पर्वताकारमिति यावत्, जलदोदरच्छवि = जलदस्य = पयोधरस्य यत् उदरम् = मध्यभागः तस्य छविरिव छविः = शोभा यस्य तत् अतिश्यामलमित्यर्थः, एतत् = पुरोदृश्यमानम्, अवशं रूपम् = रूपविशेषम् (ईर्ष्याक्रोधादिपरवशं रूपम्) ताटकाम् = एतन्नाम्नीं निशाचरीम्, हतवतः = प्राणान् हतवतः, मे = मम ततोऽपि = ताटकाया अपि, भयावहम् = भयप्रदम् (प्रतिभाति) । ताटकापेक्षयाऽपि स्वविकटस्वरूपेणेयं भयावहेति भावः । रथोद्धता वृत्तम् । तल्लक्षणं हि—"रात्परैर्नरलगै रथोद्धता" । लुप्तोपमालङ्कारः ॥ ५ ॥

(उसके बाद अपने राक्षसी रूप को धारण किये शूर्पणखा के साथ हाथ में तलवार लिए लक्ष्मण प्रवेश करते हैं)

लक्ष्मण—ठहरो, ठहरो राक्षसि ! ठहरो ।

(सुनकर तथा देखकर) लक्ष्मण ! यह क्या ?

भयङ्कर दातों वाला, लाल और ऊपर उठे हुये केशोंवाला पर्वत के समान कठोर शरीर वाला, मेघ के समान शोभा वाला, और ईर्ष्या-क्रोध आदि के वशीभूत यह स्वरूप ताटका जैसी राक्षसी को मारने वाले मेरे लिये भी उससे भयङ्कर है ॥ ५ ॥

सीता—(डर से घबड़ाती हुई) आर्यपुत्र ! इस समय रासक्षी को रोकिए रोकिए ।

रामः—देवि ! न भेतव्यम् । किं न दृष्टपूर्वं त्वया चित्रभित्तौ पिशाचिकारूपम् ।

सीता—हिअअ ! किं एदं । णं एसो अज्जउत्तो । अज्जउत्तसणाहस्स तुह किं पडवेपणं । (हृदय ! किमेतत् । नन्वेष आर्यपुत्रः । आर्यपुत्रसनाथस्य तव किं प्रवेपनम् ।)

शूर्पणखा—दिट्ठिआ बुभुक्खिदाए मए तावसपिशिदासणजादणिव्वेदाए सअं एव्व उवणदाइ सिणिद्धसुउमाराइ भक्खरूपाइ । आं इमाइ खादिअ सीदं अज्जरावणस्स उपाअणं करिस्सम् (इत्यभिधावति) (दिष्ट्या बुभुक्षिताया मम तापसपिशिताशनजातनिर्वेदायाः स्वयमेवोपनते स्निग्धसुकुमारे भक्षरूपे । आं इमे खादित्वा सीतामार्यरावणस्य उपायनं करिष्ये ।)

लक्ष्मणः—अभिधावत्येषा ।

व्याजृम्भते जलधरोदरचुम्बिबाहु-

प्रवेपनम् = कम्पनम् ।

तापसपिशिताशनेति ॥ तापसानाम् = तपोधनानाम् , पिशितानि = मांसानि, तेषाम् अशनेन = भक्षणेन जातः = समुत्पन्नः निर्वेदः = वैराग्यं यस्याः सा तापसपिशिताशनजातनिर्वेदा । उपायनम् = उपहारः । तपस्विमांसभक्षणे जातवैराग्यायाः क्षुधापीडितायाः ममकृते स्निग्धकुमारद्वयं भोज्यत्वेन स्वयमेव उपस्थितम् अतोऽनेन भक्ष्येण क्षुधां पूरयित्वा सीताम् आर्यरावणाय उपहाररूपेण दास्यामि, इति शूर्पणखाया आशयः ।

व्याजृम्भते इति ॥ (एषा) जलधरोदरचुम्बिबाहुः भीमं व्याजृम्भते, क्षणनतो-

---

राम—देवि ! डरो मत । क्या तुमने पहले चित्रभित्ति में राक्षसी का रूप नहीं देखा ?

सीता—हृदय ! यह क्या ! अरे, यह आर्यपुत्र हैं । आर्यपुत्र के साथ रहते हुए तुम्हें कम्पन क्यों ?

शूर्पणखा—भाग्य से भूखी तथा तपस्वियों के मांस खाने में उदासीन मेरे भोजन के रूप में दो सुन्दर राजकुमार स्वयं उपस्थित हैं । हाँ, इन्हें खाकर सीता को भाई रावण को उपहार के रूप में दूँगी ।

लक्ष्मण—यह तो (हमारी ओर) दौड़ती है ।

आकाश को छूने में समर्थ भुजाओं वाली यह (राक्षसी) विकट रूप से मुँह बाती

रावर्तते क्षणनतोन्नतभूमिचक्रा ।
व्यादाय वक्त्रमभिधावति भीममस्मा-
नुद्घाटितार्गलकवाटपुटा पुरीव ॥ ६ ॥

रामः—एषैषा

गगनमुत्पतति क्षितिमण्डले भ्रमति धावति तिष्ठति जृम्भते ।
नखमुखैरसिवर्ष्मभिरम्बरे जलमुचां शकलीकुरुते कुलम् ॥ ७ ॥

न्नतभूमिचक्रा आवर्त्तते, वक्त्रं व्यादाय उद्घाटितार्गलकवाटपुटा पुरीव अस्मान् अभिधावति इत्यन्वयः । जलधरोदरचुम्बिबाहुः = पयोधरमध्यस्पर्शिभुजा, भीमं व्याजृम्भते = भयङ्करं यथा स्यात्तथा जृम्भां करोति, क्षणनतोन्नतभूमिचक्रा = प्रतिक्षणं पद्भ्याम् नतम् उन्नतञ्च भूमिचक्रं यस्याः सा तथाविधा भूत्वा, आवर्त्तते = परिवर्त्तते, (एवम्भूता सा) उद्घाटितार्गलकवाटपुटा = उद्घाटितम् अर्गलम् = कवाटनिरोधकयन्त्रम् ययोः ते कवाटपुटे यस्यां तथाविधा, पुरीव = नगरीव अस्मान् = अस्माकमभिमुखीभूत्वा, भीमम्=भयङ्करम्, वक्त्रम्=मुखम्, व्यादाय= विदीर्य, अभिधावति=वेगेन आगच्छति । वसन्ततिलकं वृत्तम् । उपमालङ्कारः ॥६॥

गगनमुत्पततीति ॥ (एषा) गगनम् उत्पति, क्षितिमण्डले भ्रमति, धावति, तिष्ठति, जृम्भते, अम्बरे असिवर्ष्मभिः नखमुखैः जलमुचाम् कुलम् शकलीकुरुते इत्यन्वयः । (एषा निशाचरी) गगनम् = आकाशम्, उत्पतति = ऊर्ध्वं गच्छति, क्षितिमण्डले = भूमण्डले, भ्रमति = इतस्ततः भ्रमणं करोति, धावति = अतिवेगेन चलति, तिष्ठति = स्थितिं करोति, जृम्भते = जृम्भां करोति (जंभाई इति लोके) अम्बरे = आकाशे, असिवर्ष्मभिः = खड्गशरीरैः, नखमुखैः = नखाग्रभागैः, जलमुचाम् = पयोधराणाम्, कुलम् = समूहम्, शकलीकरोति = खण्डशः करोति । पृथिव्यामाकाशे चैककालावच्छेदेनैव धावनजलधरखण्डनादिनानाव्यापारं करोतीति

है । ऊँची नीची जमीन पर चक्र की तरह चक्कर काटती है । अपना विकराल मुँह खोलकर हम लोगों की ओर दौड़ती है । यह साँकल खुले हुये दोनों किवाड़ों वाली किसी नगरी के समान मालूम पड़ती है ॥ ६ ॥

राम—यह, यह—

आकाश में उछलती है, पृथिवी पर घूमती है, दौड़ती है, बैठती है और फैलती हैं । तलवार के समान कठोर नखों के अग्रभाग से आकाश में बादलों के समूह को टुकड़े टुकड़े करती है ॥ ७ ॥

सीता—अज्जउत्त ! वारेहि वारेहि दाणिं रक्खसिं । (आर्यपुत्र ! वारय वारयेदानीं राक्षसीम् ।)

रामः—देवि ! न भेतव्यं न भेतव्यम् ।

शून्यमन्तररविन्दलोचने ! यन्त्रमेतदपरं न राक्षसी ।
लीढमीषदधुना ममायुधैरार्तनादमवनौ पतिष्यति ॥ ८ ॥

लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्यः । अहमेवैनां प्रतिबध्नामि ।

(इत्यन्तरं प्रविशति)

भावः । द्रुतविलम्बितवृत्तम् । तल्लक्षणं हि—"द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ" । दीपकालंकारः ॥ ७ ॥

शून्यमन्तरेति ॥ हे अरविन्दलोचने ! (एषा) न राक्षसी (किन्तु) एतत् अपरम् अन्तः शून्यम् यन्त्रम् । अधुना ममायुधैः ईषत् लीढम् आर्त्तनादम् अवनौ पतिष्यति इत्यन्वयः । अरविन्दलोचने ! = कमलनयने !, (एषा) न राक्षसी = न निशाचरी (अपितु) एतत् = पुरोवर्त्ति, अपरम् = द्वितीयम् , अन्तः शून्यम् = सत्त्वबलरहितम् , असारमित्यर्थः, यन्त्रम् = दार्वादिनिर्मितं चेतनव्यापारितभ्रमणादिविलासास्पदम् यन्त्रम् (मशीन इति लोके) अधुना = इदानीम् . ममायुधैः = ममास्त्रैः, ईषत् लीढम् = किञ्चिद्ग्रसितम् खण्डितमित्यर्थः, आर्त्तनादम् = आर्त्तः = दुःखविधुरः नादः = ध्वनिः यस्मिन् पतने (तथा भूत्वा) अवनौ = पृथिव्याम् , पतिष्यति = आगमिष्यति । एषा निशाचरी साम्प्रतमेव मम शस्त्रप्रहारैः विनश्यत्यतो नास्ति त्वत्कृते भयावसर इति भयविह्वलां सीताम्प्रति रामस्य सान्त्वनावचनम् । रथोद्धतावृत्तम् । अपह्नुत्यलङ्कारः ॥ ८ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! इस समय राक्षसी को रोकिए ।

राम—देवि ! मत डरो मत डरो ।

हे कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली । यह राक्षसी नहीं, अपि तु भीतर से शून्य दूसरा यन्त्र है । इस समय मेरे अस्त्रों से थोड़ा आक्रान्त होकर चिल्लाती हुई पृथिवी पर गिरेगी ॥ ८ ॥

लक्ष्मण—आर्य प्रसन्न हों । मैं ही इसे रोकता हूँ !

(बीच में आ जाते हैं)

शूर्पणखा—हद्धि, अच्चाहिदं खु एदम्। भक्खरूपाइ मे परक्कमंति
(हा धिक्, अत्याहितं खल्वेतत्। भक्षरूपाणि मे पराक्रमन्ते।)

लक्ष्मणः—आः त्वामद्य विहङ्गेभ्यो विभजामि।

शूर्पणखा—इमं दाव पुव्वं कठोरहिअअं एक्कन्दे खादिस्सं (इमं तावत् पूर्वं कठोरहृदयं एकान्ते खादिष्यामि।)

लक्ष्मणः—एष गृहीतोऽहम्। अये! प्रमत्तोऽस्मि।

रामः—तिष्ठ तिष्ठ।

मुनयो न वयं कृतागसि त्यज संरम्भमिदं धृतं धनुः।
करुणाविमुखाः शिलीमुखाः सततं राक्षसि! राक्षसेषु नः ॥९॥

आः त्वामिति ॥ आः, इति कोपसूचकम् अव्ययम्, अद्य = इदानीमेव, त्वाम् = शूर्पणखाम्, विहङ्गेभ्यः = गृध्रकाकादिपक्षिभ्यः, विभजामि = विभज्य ददामि।

इमं तावदिति ॥ इमम् = लक्ष्मणम्, कठोरहृदयम्=कठिनान्तःकरणम्, एकान्ते रहसि। प्रथमम् एकान्ते एनं नीत्वा वशीकरिष्यामि, तत्रापि यद्ययं पूर्ववदेव कठोरहृदयः स्यात्तदा निर्विघ्नमेनं हत्वा क्षुत्पीडामपनेष्यामि, पश्चात् रामं प्रत्यपि इममेव दण्डप्रयोगं करिष्यामीति शूर्पणखाया गूढाशयः।

मुनयो नेति ॥ राक्षसि! कृतागसि वयम् न मुनयः, इदं धनुः धृतम्, संरम्भं त्यज, नः शिलीमुखाः राक्षसेषु सततं करुणाविमुखाः (सन्ति) इत्यन्वयः। राक्षसि! = निशाचरि! कृतागसि = कृतापराधे, कृतापराधंजनमुद्दिश्य वयं न मुनयः = वयं न क्षमाशीलाः तपस्विनः, इदम् = मत्समीपवर्त्ति, धनुः = शरासनम्, धृतम् = गृहीतम्, संरम्भम् = क्षोभम्, त्यज = जहीहि, नः = अस्माकम्, शिलीमुखाः = बाणाः, राक्षसेषु = निशाचरेषु, सततम् = निरन्तरम्, करुणाविमुखाः =

शूर्पणखा—आह! धिक्कार है। यह तो अनर्थ है। मेरा भक्ष्य होकर मुझ पर आक्रमण करते हैं।

लक्ष्मण—अरी, अभी तुमको (मारकर) पशुओं को पृथक् पृथक् देता हूँ।

शूर्पणखा—पहले इस कठोर हृदय को एकान्त में खाऊँगी।

लक्ष्मण—यह मैं पकड़ा गया। अरे मैं पागल हो गया हूँ।

राम—ठहरो, ठहरो।

हे राक्षसि! अपराधी के लिये हम लोग मुनि नहीं है। हम लोगों के विषय में मुनि की असमर्थता की शंका छोड़ दो। तुम्हारे समान अपराधी को दण्ड देने के लिये हमने इस धनुष को धारण किया है। राक्षसों के प्रति हम लोगों के ये बाण सदा निर्दय ही हैं ॥ ९ ॥

शूर्पणखा—(लक्ष्मणं गृहीत्वा) हद्धि, लहूइ गिरिसिहराइ। (हा धिक्, लघूनि गिरिशिखराणि।)

(खमुत्पत्य निष्क्रान्ता)

रामः—(सशोकम्) देवि ! किमद्यापि स्त्रीस्वभावं न मुञ्चसि।

साध्वसेन सह धैर्यमास्थिता मुञ्च मां हरिणमुग्धलोचने !।
तूर्णमुत्पतति वर्त्म वार्मुचां राक्षसी भुजगृहीतलक्ष्मणा ॥ १० ॥

सीता—अज्जउत्त ! को मं रक्खदि। (आर्यपुत्र ! को मां रक्षति।)

दयापराङ्मुखाः पतन्तीति शेषः। यथा तपोभङ्गभीरवः मुनयः लोकैः कृतमपराधं क्षमन्ते न तथा वयं त्वदपराधं क्षन्तुं शक्नुमः, सर्वेष्वेव राक्षसजातीयेषु बद्धवैराः वयं त्वादृशां कृतापराधानां निग्रहाय निष्करुणबाणसन्नद्धं धनुः धृतवन्तः, अतोऽलङ्घ्योभेणेति भावः। सुन्दरी वृत्तम्। तल्लक्षणं हि—अयुजो यदि सौ जगौ युजोः सभरालगौ यदि सुन्दरी तदा।'यमकाऽलङ्कारः ॥ ९ ॥

साध्वसेनेति ॥ हे हरिणमुग्धलोचने ! (यतः) राक्षसी भुजगृहीतलक्ष्मणा सती वार्मुचाम् वर्त्म तूर्णमुत्पतति (अतः) धैर्यम् आस्थिता साध्वसेन सह माम् मुञ्च इत्यन्वयः। हरिणमुग्धलोचने ! = मृगवत्सुन्दरनयने, (भयप्रसङ्गात्) राक्षसी = निशाचरी, भुजगृहीतलक्ष्मणा = भुजाभ्यां गृहीतः लक्ष्मणः यया तथाभूता सती, वार्मुचाम् = जलदानाम्, वर्त्म = मार्गम्, नभसि इत्यर्थः, तूर्णमुत्पतति = शीघ्रमूर्ध्वं गच्छति (अतः) धैर्यमास्थिता = धृतिमास्थिता धैर्यमवलम्ब्येति यावत्, साध्वसेन = त्रासेन सह, माम् = रामम् मुञ्च = परित्यज। नास्त्यवसरो भयस्य। आपन्नो लक्ष्मणोऽतस्तत्कृते मम साहाय्यमपेक्षितम्। रथोद्धतावृत्तम्। सहोक्त्यलङ्कारः ॥ १० ॥

शूर्पणखा—(लक्ष्मण को पकड़ कर) हा, धिक्कार है। इसके सामने पर्वत की चोटियाँ भी हल्की हैं।

(आकाश में उड़कर निकल जाती है)

राम—(शोक के साथ) देवि ! क्या अभी भी स्त्री के स्वभाव को नहीं छोड़ती हो ? हे हरिण के समान सुन्दर नेत्रों वाली सीते ! धैर्य धारण करती हुई तुम भय के साथ मुझे छोड़ दो (अर्थात निर्भय होकर मुझ से दूर हटो) अपनी भुजाओं से लक्ष्मण को पकड़ कर यह राक्षसी आकाश में शीघ्र उछल रही है ॥ १० ॥

सीता—आर्यपुत्र ! मेरी रक्षा कौन करता है ?

रामः—कुमारः केन रक्ष्यते ।

सीता—णं तस्स हत्थगदं आउहं । (ननु तस्य हस्तगतमायुधम् ।)

रामः—(सविषादम्) आयुधेन किं प्रयोजनं राक्षसीभुजगृहीतस्य ।

धिगहं मानुषं जन्म वसुधामात्रगोचरम् ।
राक्षसी लक्ष्मणं हृत्वा तिरोऽभूत् पश्यतो मम ॥ ११ ॥

सीता—(सविषादम्) हदाए मए अज्जउत्तं पडिबन्धमाणाए कुमा हिअसेल्लं कारिदो । (हतया मयार्यपुत्रं प्रतिबध्नत्या कुमारो हृदय कारितः ।)

रामः—(शरमुद्धरन्) कस्य नु खलु दिव्यास्त्रस्यैषा विषयः ।

(नेपथ्ये) हं ! पादिदम्हि, अज्ज ! सरणं सरणं । (हं ! पातिता आर्य ! शरणं शरणम् ।)

धिगहमिति ॥ वसुधामात्रगोचरम् मानुषं जन्म अहम् धिक (करोमीति शे पश्यतः मम राक्षसी लक्ष्मणं हृत्वा तिरोऽभूदित्यन्वयः । वसुधामात्रगोचर पृथिवीमात्रविषयम्, मानुषं जन्म = मनुष्यजन्म, अहम् = रामः धिक्=अत्य निन्दामि, मम पश्यतः = पश्यन्तम्मामनादृत्य, राक्षसी, लक्ष्मणं हृत्वा = मम मपहृत्य, तिरोऽभूत् = अदृश्याऽभूत् । गृहीतलक्ष्मणां राक्षसीं हन्तुं शक्ता तस्या आकाशोत्पतनकारणात् गगनमार्गगमनासमर्था वयं किं कर्तव्यवि स्मः, अतोऽतिकुत्सितमिदम्मनुष्यजन्मेति भावः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ११ ॥

राम—कुमार लक्ष्मण की रक्षा कौन करता है ?

सीता—उसके हाथ का शस्त्र ।

राम—(दुःख के साथ) राक्षसी की भुजा से पकड़े गये उसको शस्त्र से प्रयोजन ?

केवल पृथिवी पर विचरण करने वाले मेरे मनुष्य जन्म को धिक्कार है । (क्यों मेरे देखते देखते राक्षसी लक्ष्मण को हर कर अदृश्य हो गयी ॥ ११ ॥

सीता—(शोक से) आर्यपुत्र को रोकती हुई मुझ अभागिन के द्वारा ही लक्ष्मण हृदय के दारुण दुःख बनाए गये ।

राम—(बाण को उठाते हुये) यह किस दिव्य अस्त्र का लक्ष्य है ?

(नेपथ्य में) हा, मैं गिरायी गयी । आर्य ! शरण दीजिये शरण ।

रामः—अये ! स्त्रीस्वर इव । कुतोऽयं भूमिकम्पः । नूनं पातिता लक्ष्मणेन राक्षसी ।

सीता—अहं वि तं एव्व तक्केमि । (अहमपि तदेव तर्कयामि ।)

रामः—भद्रे ! हस्तमवलम्ब्य मामनुगच्छ, यावदहं लक्ष्मणमन्विच्छामि ।

सीता—पत्तिस्सं । (प्रयतिष्ये ।)

(उभौ परिक्रामतः)

रामः—(परिक्रम्यावलोक्य) अये !

जगतीधरधातुसान्द्रमम्भः
सरितः सर्पति किन्नु काननान्तम् ।
तरुणारुणकान्ति लोहितं नु
च्युतमुत्पातपयोधरोदरेभ्यः ॥ १२ ॥

अथ रामो दूरादेव राक्षस्याः रक्तप्रवाहमालोक्य अन्यथा सम्भावयन्नाह—जगतीधरेति ॥ जगतीधरधातुसान्द्रम् सरितः अम्भः काननान्तम् सर्पति किन्नु, उत्पातपयोधरोदरेभ्यः च्युतम् तरुणारुणकान्ति लोहितं किन्नु इत्यन्वयः । जगतीधरधातुसान्द्रम् = पर्वतस्थगैरिकैः अत्यधिकं कलुषितम्, अतिरक्तमिति यावत्, सरितः = उन्नतशिखरान्निःसरन्त्या नद्याः, अम्भः = जलम्, काननान्तम् = पर्वतमधोऽधोवनमध्यम्, सर्पति किन्नु = प्रवहति किन्नु ? उत्पातपयोधरोदरेभ्यः = उत्पातपयोधराणाम् = जगद्विनाशसूचकमेघानाम् उदरेभ्यः = मध्यभागेभ्यः, च्युतम् = स्खलितम् पतितमित्यर्थः, तरुणारुणकान्ति = बालादित्यसमानशोभम्, लोहितम् =

राम—अरे, यह तो स्त्री की आवाज है। यह भूकम्प कैसा ? लक्ष्मण ने निश्चय ही राक्षसी को मार गिराया।

सीता—मैं भी यही अनुमान करती हूँ।

राम—देवि। हाथ का सहारा लेकर मेरे पीछे आओ। तबतक मैं लक्ष्मण को देखता हूँ।

सीता—प्रयास करूँगी। (दोनों घूमते हैं।)

राम—(घूम कर और देख कर) अरे, पर्वत के धातुओं से कलुषित अतएव अत्यन्त रक्त नदी का जल क्या दूसरे जंगल को जा रहा है, अथवा संसार-विनाशक मेघों के मध्य भाग से निकलने वाले प्रातः कालीन सूर्य की शोभा के समान शोणित है क्या ? ॥१२॥

(ततः प्रविशति लक्ष्मणः)

लक्ष्मणः—(सानुक्रोशम्) हन्त ! धिङ्मां स्त्रीव्यपदेशिनीं प्रति प्रथम-मुद्यतास्त्रम । अथवा नेदमनुशयस्थानम् ।

दृष्ट्वा तस्याश्च दौरात्म्यं ज्ञात्वा भ्रातुश्च निश्चितम् ।
न्यस्तमस्त्रं निशाचर्याः कथञ्चित् कर्णनासिके ॥ १३ ॥

रुधिरम् किन्तु ! लक्ष्मणखड्गेनोच्छिन्नकर्णनासिकायाश्शूर्पणखायाः प्रवहद्रुधिरं विलोक्य तत्र पर्वतस्थगैरिकैः कलुषीकृतमम्भस्त्वं सन्दिह्यते । कालभारिणी वृत्तम् । तल्लक्षणं हि—विषमे ससजा यदा गुरू चेत्, समरा येन तु कालभारिणीयम् । सन्देहाऽलंकारः ॥ १२ ॥

सानुक्रोशम् = अनुक्रोशेन सह यथा स्यात्तथा । सकरुणमित्यर्थः । स्त्रीव्यपदेशिनीम् = स्त्री इति व्यपदेशः शब्दमात्रम् अस्याम् अस्तीति स्त्रीव्यपदेशिनी ताम् स्त्री इति शब्दमात्रवाच्याम् प्रति प्रथमम् उद्यतास्त्रम् = समुन्नतायुधम्, माम् = लक्ष्मणम्, धिक् = स्वात्मानं कुत्सयामि ।

नेदमनुचितमित्यभिप्रायेणाह—अथवेति ॥ इदम् = मदीयं कर्म अनुशयस्य = पश्चात्तापस्य, इयं हि नाम्ना स्त्री न तु कर्मणा तथापि एनां प्रति मम शस्त्रप्रहारो निन्दाया एव विषयः । अथवा भ्रात्राऽभिलषितमेव कर्म मया कृतमतो नास्ति चिन्ताऽवसर इति भावः ।

स्वकर्मण औचित्यं समर्थयन्नाह—दृष्ट्वेति ॥ तस्याः दौरात्म्यम् दृष्ट्वा, भ्रातुः च निश्चितम् ज्ञात्वा, निशाचर्याः कर्णनासिके कथञ्चित् अस्त्रम् न्यस्तमित्यन्वयः । तस्याः = राक्षस्याः, दौरात्म्यम् = दुष्टभावम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, भ्रातुः च = रामस्य च निश्चितम् = निश्चयम्, ज्ञात्वा = अवगत्य निशाचर्याः = राक्षस्याः, कर्णनासिके = कर्णौ च नासिका च तस्मिन् कर्णनासिके, कथञ्चित् = येन केन प्रकारेण (स्त्रीत्वात्) अस्त्रम् = आयुधम् , न्यस्तम् = स्थापितम् । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १३ ॥

(उसके बाद लक्ष्मण प्रवेश करते हैं)

लक्ष्मण—(क्रोध से) नाममात्र की स्त्री के ऊपर पहले पहल शस्त्र उठाने वाले मुझको धिक्कार है । अथवा यह शोक का स्थान नहीं है ।

उसकी दुष्टता को देख कर तथा भाई के निश्चय को जानकर इस राक्षसी के नाक और कान पर किसी तरह हमने शस्त्र रखा । (प्रहार किया) ॥ १३ ॥

यावदार्यमुपसर्पामि (उपसृत्य) जयत्वार्यः ।

रामः—(सहर्षमालिङ्ग्य)

समुच्छ्वसिहि चेतस्त्वं कुशली लक्ष्मणोऽधुना ।
रेमे वनेऽपि येनाहमयोध्यामावसन्निव ॥ १४ ॥

(भूयः परिष्वज्य) कुमार ! क सा राक्षसी ।

लक्ष्मणः—(आत्मगतम्) किमिति वक्ष्यामि । (अधोमुखस्तिष्ठति)

(ततः प्रविशति साक्रन्दा शूर्पणखा)

शूर्पणखा—हा अज्जलावण ! हा अज्जकुंभअण्ण ! हा अज्जविभीसण ! परित्ताअहि परित्ताअहि मं तापसव्वाजपडिच्छण्णाणं मणुस्साणं अविणआदो । (हा आर्यरावण ! हा आर्यकुम्भकर्ण ! हा आर्यविभीषण ! परित्रायस्व परित्रायस्व मां तापसव्याजप्रतिच्छन्नयोर्मनुष्ययोरविनयात् ।)

प्रहृष्टमना रामो लक्ष्मणं समालिङ्ग्य आनन्दविह्वलः सन् स्वहृदयमेव सम्बोधयन्नाह—समुच्छ्वसिहीति । हे चेतः । अधुना त्वम् समुच्छ्वसिहि, लक्ष्मणः कुशली । येन अहम् वनेऽपि अयोध्याम् आवसन् इव रेमे इत्यन्वयः । हे चेतः = हे हृदय, अधुना = इदानीम् समुच्छ्वसिहि = श्वासं गृहाण, लक्ष्मणः = एतन्नामको ममानुजः कुशली = सकुशलः, येन = लक्ष्मणेन (यं प्राप्येति यावत् , ।) अहम् = रामः, वनेऽपि = काननेऽपि, अयोध्याम् = साकेतम् आवसन् इव = निवसन् इव, रेमे = रमणं करोमि । लक्ष्मणप्रभावादेव विपिनेऽपि मया साकेतनिवाससुखमनुभूयते । अनुष्टुब्वृत्तम् । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ॥ १४ ॥

तापसव्याजप्रतिच्छन्नयोः = तापसानाम् = तपोधनानाम् व्याजेन = छद्मना,

---

अच्छा, अब आर्य के समीप जाता हूं । (समीप जाकर) आर्य की जय हो ।

राम—(प्रसन्नता से आलिङ्गन करके) हृदय, अब तुम ठीक से साँस लो । इस समय लक्ष्मण सकुशल है, जिसके कारण मैं जंगल में भी अयोध्या में निवास करने की भाँति आनन्द का अनुभव करता हूँ (पुनः आलिंगन करके) कुमार ! वह राक्षसी कहाँ है ? ॥ १४ ॥

लक्ष्मण—(मन ही मन) क्या कहूँ ? (मुँह नीचे कर लेते हैं) (तदनन्तर रोती हुई शूर्पणखा आती है)

शूर्पणखा—हा, आर्य रावण ! हा कुम्भकर्ण, हा आर्य विभीषण, तपस्वी का रूप धारण करने वाले इन दोनों मनुष्यों की धृष्टता से मेरी रक्षा करो, रक्षा करो ।

रामः—लक्ष्मण ! पश्य पश्य—

सन्ध्यारुणा सलिलवाहपरम्परेव
शैलस्य धातुरसधूसरितेव भित्तिः ।
बालातपप्रणयिनीव तमालवीथी
सन्दृश्यते सरसलोहितताम्रमूर्तिः ॥ १५ ॥

लक्ष्मणः—(स्वगतम्) दिष्ट्या कुत्सनीयं कर्मेदमार्यः स्वयमेव परिच्छिनत्ति ।

प्रतिच्छन्नयोः समाच्छन्नयोः (मनुष्ययोः) अविनयात् = चापल्यात्, माम् = शूर्पणखाम्, परित्रायस्व = रक्ष । अनेन वचसा राक्षसी रामलक्ष्मणयोः तथाकथिततापसवेषत्वमारोपयति ।

अथ रामश्शूर्पणखाया दृष्टपूर्वमेव रूपं वर्णयति—सन्ध्यारुणेति ॥ (एषा राक्षसी) सरसलोहितताम्रमूर्तिः सन्दिश्यते, (उत्तिष्ठन्ती) सन्ध्यारुणा सलिलवाहपरम्परा इव, (भवति) (आसीना) धातुरसधूसरिता शैलस्य भित्ति इव, (दृश्यते) (शयाना) बालातपप्रणयिनी तमालवीथी इव (दृश्यते) इत्यन्वयः । एषा पुरो दृश्यमाना निशाचरी सरसलोहितताम्रमूर्तिः = सरसेन = अत्यन्तं द्रवीभूतेन लोहितताम्रमूर्तिः = ताम्रा = ताम्रवर्णा मूर्तिः = आकृतिः यस्याः तथा भूता संदृश्यते = समवलोक्यते । (एवं भूता सा उत्तिष्ठन्ती) सन्ध्यारुणा = सायंरक्ता, सलिलवाहपरम्परा इव = सलिलवाहानाम् = मेघानाम् परम्परा इव = पङ्क्तिः इव भवतीति शेषः । (आसीना सती) धातुरसधूसरिता = धातुरसेन = गैरिकद्रवेण, धूसरिता = सम्पृक्ता, शैलस्य = पर्वतस्य, भित्तिः इव = कुड्यम् इव (दृश्यते) (शयाना एषा) बालातपप्रणयिनी = नवातपस्निग्धा तमालवीथी इव = तमालश्रेणी इव (दृश्यते) उपमात्रयेण तस्या अवस्थान्तरं प्रदर्श्यते । वसन्ततिलकं वृत्तम् । उपमाऽलङ्कारः ॥ १५ ॥

कुत्सनीयम् = निन्दायोग्यम्, कर्म = स्त्रीविषयशस्त्रप्रहाररूपं कार्यम्, परि-

---

राम—लक्ष्मण ! देखो, देखो ।

यह राक्षसी सायंकालीन लालिमा से युक्त मेघपङ्क्ति की भाँति लग रही है । (बैठी हुई) यह धातुरस से धूसरित पर्वत की दीवाल सी लगती है । (सोई हुई) यह प्रातःकालीन सूर्य की किरणों से युक्त तमालवीथी के समान नजर आती है, और निरन्तर बहते हुए रूधिर से लाल वर्ण की मूर्ति वाली दिखायी पड़ती है ॥ १५ ॥

लक्ष्मण—(मन ही मन) सौभाग्य से इस निन्दित कार्य को आर्य स्वयं जानते हैं ।

रामः—लक्ष्मण! युक्तं कृतं त्वया। ननु वधस्थाने स्त्रीणामेष एव दण्डः।

सैषा शूर्पणखा नाम वसन्ती दण्डके वने।
खरदूषणयोर्ज्येष्ठा रावणस्य कनीयसी॥ १६॥

इति श्रूयते।

शूर्पणखा—सुमरह सुमरह मणुस्सा तुम्हाणं अविणअं, तस्स फलं अज्जप्पहुदि दक्खिस्सह। (स्मरतं स्मरतं मनुष्यौ! युवयोरविनयम्, तस्य फलमद्यप्रभृति द्रक्ष्यथः।)

लक्ष्मणः—आः अपेहि तावत्।

शूर्पणखा—खरदूसणाणं मे इमं अवत्थं दंसइस्सम्। (निष्क्रान्ता) (खरदूषणयोः मे इमामवस्थां दर्शयिष्यामि।)

विच्छनन्ति = जानाति।

रामो लक्ष्मणकृतशूर्पणखाकर्णनासिकच्छेदनस्यौचित्यं समर्थयते—युक्तं कृतमित्यादिना। सैषा शूर्पणखेति॥ सा एषा शूर्पणखा नाम दण्डके वने वसन्ती खरदूषणयोः ज्येष्ठा रावणस्य कनीयसी इति श्रूयते इत्यग्रिमादन्वयः। या शूर्पणखा नाम राक्षसी श्रूयते सा एषा इत्यर्थः। दण्डके वने = एतन्नामके विपिने वसन्ती = निवसन्ती, खरदूषणयोः = एतन्नामकयोः राक्षसयोः, ज्येष्ठा = अग्रजा, रावणस्य एतन्नामकस्य राक्षसराजस्य, कनीयसी = अनुजा कनिष्ठेत्यर्थः, श्रूयते = श्रुतिपथमायाति, मुनिवचनाच्छ्रुतपूर्वेयमित्यर्थः। अनुष्टुब्वृत्तम्॥ १६॥

अपेहि = दूर गच्छ।

राम—लक्ष्मण! तुमने ठीक किया। मारने की जगह स्त्रियों का यही दण्ड है। वह यह दण्डकवन में रहती हुई, खर और दूषण की बड़ी तथा रावण की छोटी बहन शूर्पणखा है, ऐसा सुना जाता है॥ १६॥

शूर्पणखा—याद रखो, मनुष्यो! अपनी धृष्टता को याद रखो। अब से उसका फल देखोगे।

लक्ष्मण—अरी, दूर हट जा।

शूर्पणखा—मैं अपनी इस दुर्दशा को खर और दूषण को दिखाऊँगी। (चली जाती है)

सीता—अज्जउत्त ! अज्ज उच्छसिदम्हि । अहवा इत्थं पडिभये रक्खसीहिं वणप्पदेसे तह लावण्णवदी सुउमारगत्ता सीमंतिणी कहं विअ वत्तदि । (आर्यपुत्र ! अद्योच्छ्वसितास्मि । अथवा इत्थं प्रतिभये राक्षसीभिर्वनप्रदेशे तथा लावण्यवती सुकुमारगात्रा सीमन्तिनी कथमिव वर्तते ।)

(रामो लक्ष्मणमीक्षते)

लक्ष्मणः—(कर्णे) एवमिव ।

सीता—अज्जउत्त ! किं कुमारो मन्तेदि । (आर्यपुत्र ! किं कुमारो मन्त्रयते ।)

रामः—देवि !

वक्त्रेण स्फुरिताधरेण शफरप्रस्पन्दिना चक्षुषा

अथ निष्क्रान्तायां राक्षस्यां सीता समाश्वास्याऽऽह—अद्येति । अद्य = साम्प्रतं राक्षसीगमनानन्तरम् , उच्छ्वसिताऽस्मि = सनिश्वासाऽस्मि । अथवा राक्षसीभिः= निशाचरीभिः, प्रतिभये = भयप्रदे, वनप्रदेशे = काननप्रान्ते, लावण्यवती = सौन्दर्यवती, सुकुमारगात्रा = सुकोमलशरीरा, सीमन्तिनी = रमणी, कथमिव = केन प्रकारेण वर्तते = (एकाकिनी) विद्यते ।

सीतया पृष्टो रामश्शूर्पणखावृत्तान्तं निवेदयति—वक्त्रेणेति ॥ स्फुरिताऽधरेण वक्त्रेण, शफरप्रस्पन्दिना चक्षुषा, स्तननम्रितेन मध्येन, पृथुलेन आरोहचक्रेण च (सह वर्त्तमानया) यया लीलया सव्रीडं चकितम् पदे पदशतं न्यस्तम् , सा रक्षसाम् द्विषः विधेः शक्त्या तव भयकारणम् जाता इत्यन्वयः । स्फुरिताधरेण = स्फुरितः = चञ्चलः अधरः = ओष्ठः यस्मिन् तेन वक्त्रेण = मुखेन, (सह वर्त्तमानया

सीता—आर्यपुत्र ! अब जान में जान आयी । अथवा इस प्रकार राक्षसियों के निवास से भयंकर इस वनप्रान्त में इस प्रकार की सुकुमार शरीर वाली यह सुन्दर रमणो किस प्रकार रहती है ।

(राम लक्ष्मण को देखते हैं)

लक्ष्मण—(कान में) इस तरह ।

सीता—आर्यपुत्र ! कुमार क्या कहते हैं ?

राम—देवि !—

फड़कते हुऐ अधर वाले मुख से, मछली के समान चंचल नेत्र से, स्तन के भार से

मध्येन स्तननम्रितेन पृथुलेनारोहचक्रेण च ।
सव्रीडं चकितं पदे पदशतं न्यस्तं यया लीलया
सा जाता भयकारणं तव विधेः शक्त्या द्विषो रक्षसाम् ॥१७॥

सीता—अलिअं अलिअं एदं । (अलीकमलीकमेतत् ।)

रामः—ननु लक्ष्मणः कथयति ।

सीता—हं तस्सिं जणे मे विस्संभो आसी । अज्जउत्तेण साहु णिवारिदो । (हं तस्मिन् जने मे विस्रम्भ आसीत् । आर्यपुत्रेण साधु निवारितः ।)

यया इत्यस्य सर्वत्रान्वयः) शफरप्रस्पन्दिना = शफरवत् = मीनवत् प्रस्पन्दितुम् = प्रस्फुरितुम् शीलम् अस्य तथाविधेन चक्षुषा = नेत्रेण, स्तननम्रितेन = स्तनाभ्याम् = कुचाभ्याम् नम्रितेन = नम्रीभूतेन (भाराधिक्यात्) मध्येन = मध्यभागेन कटिप्रदेशेनेत्यर्थः, पृथुलेन = विपुलेन, आरोहचक्रेण = जघनमण्डलेन च, सह वर्त्तमानया यया = शूर्पणखया, सव्रीडम् = सलज्जम् , चकितम् = साश्चर्यं यथा स्यात्तथा, पदे = पदप्रमाणप्रदेशे, पदशतम् = पदानाम् = पदन्यासानाम् शतम् , लीलया = विलासपूर्वकम् , न्यस्तम् = कृतम् , सा = स्वरूपप्राप्ता शूर्पणखा, रक्षसाम् = निशाचराणाम्, द्विषः = शत्रोः, विधेः = विधातुः, शक्त्या = प्रभावेण, तव = सीतायाः, भयकारणम् = भीतिहेतुः, जाता = अभूत् । ललितसुकुमारवेषया यया सव्रीडं लीलया वयमवलोकिताः सैव राक्षसविनाशहेतोर्विधेः प्रभावेण तव भयदा सञ्जाता। शूर्पणखामाध्यमेन राक्षसैः सह अस्माकं वैरभावमुत्पाद्यास्मद्द्वारा विधिना राक्षसविनाशप्रसङ्गः समानीत इति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। लुप्तोपमाऽलङ्कारः ॥ १७ ॥

हमिति ॥ हम् इति अनुतापकार्यभूतो वाग्रूपोऽनुतापः । तस्मिञ्जने मे विस्रम्भः=

झुकी हुई कमर से, और मोटे जघन से लज्जा से विस्मय के साथ लीलापूर्वक उसने जो सैकड़ों चरणों को रखा वही राक्षसों के शत्रु भाग्य की शक्ति से तुम्हारे भय का कारण बनी (अर्थात् जिसने छल से सुन्दर रूप धारण कर हम लोगों को लुभाने का उपक्रम किया था उसीने भयंकर रूप धारण कर हमें डराने का भी प्रयास किया ॥ १७ ॥

सीता—यह तो झूठ है ।

राम—अरी, लक्ष्मण कह रहा है ।

सीता—उस व्यक्ति पर तो मेरा विश्वास था । आर्यपुत्रने ठीक ही रोका ।

रामः—वत्स ! लक्ष्मण ! कथं त्वया पूर्वमुपलक्षिता सा ।

लक्ष्मणः—(सस्मितम्) सर्वत्र दाक्षिण्यात् दोषं न पश्यत्यार्यः। कथमौष्ण्यमग्नेश्छाद्यते ।

रामः—सत्यमेतत् ।

दाक्षिण्यमृद्वी जनता शठानां वशवर्तिनी ।
स्वयमुद्धर्तुकामानां लतेवोज्झितकण्टका ॥ १८ ॥

विश्वासः आसीत् यत् तत् कष्टम् । आर्यपुत्रेण स जनः = राक्षसीरूपः निवारितः = अवरोधितः इति यत् तत् साधु इति योजना अत्र द्रष्टव्या ।

सर्वत्र दाक्षिण्यादिति ॥ सर्वत्र = सर्वस्मिन्स्थाने, मित्रे रिपौ च, दाक्षिण्यात् = दक्षिणस्य भावः दाक्षिण्यं तस्मात् = अनुकूलतागुणकारणात् । दाक्षिण्यगुणादेव राक्षस्याः प्रत्यादेशः साक्षान्न कृतः न तु तस्याः दुष्टाचरणज्ञानाभावात् । अग्नेः = अनलस्य, औष्ण्यम् = उष्णता, कथम् = केन प्रकारेण छाद्यते = आच्छाद्यते । परन्तु दोषः आच्छन्नः स्थातुं न सम्भवति । यतः आर्यस्य एतत् दाक्षिण्यं नैसर्गिकमत एव विदितदौरात्म्याया राक्षस्याः साक्षात्प्रत्याख्यानाभावे मत्समीपप्रेषणे वा नानौचित्यमितिलक्ष्मणस्याशयः ।

दुर्जनं प्रति विहितं दाक्षिण्यमपि दोषत्वमावहति—इत्यत आह—सत्यमिति॥ तदेव समर्थयते—दाक्षिण्यमृद्वीति ॥ दाक्षिण्यमृद्वी जनता स्वयम् शठानाम् उद्धर्तुकामानाम् उज्झितकण्टका लता इव वशवर्त्तिनी (भवति) इत्यन्वयः । दाक्षिण्यमृद्वी = दाक्षिण्यगुणेन सरला, जनता = जनसमूहः, शठानाम् = दुर्जनानाम्, स्वयमेव = आत्मनैव, उद्धर्तुकामानाम् = पश्वादिबन्धनार्थं लतोद्धारणार्थमुद्यतानां पुरुषाणाम्, उज्झितकण्टका = स्वभावतः कण्टकरहिता, लता इव = वल्ली इव, वशवर्त्तिनी = वशङ्गता भवतीति शेषः । यथा कण्टकरहिता लता उद्धर्त्तुकामानां

राम—वत्स लक्ष्मण ! तुमने उसे पहले कैसे समझा ?

लक्ष्मण—(मुस्कुरा कर) सभी जगह दया-भाव के कारण आप कहीं भी दोष नहीं देखते हैं । क्या अग्नि की गर्मी छिपायी जा सकती है ?

राम—यह ठीक है ।

स्वभावतः कोमल जन समुदाय स्वयं नीच पुरुषों की चाल में उसी प्रकार आ जाता है जिस प्रकार पशु आदि को बांधने के लिए उखाड़ने के इच्छुक व्यक्ति के लिये लता स्वयं कांटों से मुक्त हो जाती है ॥ १८ ॥

सा खलु स्त्रीसामान्यान्नावमन्तव्या । दुष्करं खलु त्वया कृतम् ।

(लक्ष्मणः अधोमुखस्तिष्ठति)

सीता—अज्जउत्त ! दाणिं वि रक्खसीं पेक्खामि विअ । (आर्यपुत्र ! इदानीमपि राक्षसीं पश्यामीव ।)

रामः—

त्रिभुवनरिपुरस्या रावणः पूर्वजश्चे-
दसुलभ इति नूनं विश्रमः कार्मुकस्य ।

स्वयं वशङ्गता भवति तथैव स्वभावतः सरलो जनसमूहः स्वयमेव दुष्टानां वशवर्ती भवतीति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् । उपमालङ्कारः ॥ १८ ॥

दाक्षिण्याभावेऽपि तस्याः प्रत्याख्यानं दुष्करमेवेत्याशयेनाह—सा खलु इति ॥ खलु शब्दोऽत्र प्रसिद्धवाची, तेन अरण्यरमणीभ्यस्तस्याः सौन्दर्यादिकं महद्वैशिष्ट्यं प्रसिद्धत्वेन दर्शयति । एषा या काचन, इति स्त्रीसामान्यबुद्ध्या = नारीसामान्यज्ञानेन त्वया अवमानिता न खलु सा लोकोत्तरसौन्दर्यादिगुणैस्तादृगवमननयोग्येत्याशयः । अत एवम्भूतायास्तस्याः त्वया कृतः प्रत्यादेशो दुष्कर इति भावः ।

इदानीं शूर्पणखावैरूप्यकरणमेव पूर्वप्रतिज्ञातस्य सकलनिशाचरवधस्य परमं द्वारम्मन्यमानो राम आह—त्रिभुवनरिपुरिति ॥ त्रिभुवनरिपुः रावणः अस्याः पूर्वजः चेत् (तर्हि) कार्मुकस्य विश्रमः असुलभः इति नूनम्, एतत् वैरम् प्रायशः रजनिचरनिबद्धम् (अतः) सर्वरक्षोवधेन भुवनभूत्यै (एतद् वैरम्) भवतु इत्यन्वयः । त्रिभुवनरिपुः = सर्वलोकपीडनात् त्रिलोकीशत्रुः, रावणः = दशकन्धरः, अस्याः = उच्छिन्नकर्णनासिकायाः शूर्पणखायाः, पूर्वजः = अग्रजः, चेत् = यदि (तर्हि) कार्मुकस्य = शरासनस्य, विश्रमः = विश्रामः, असुलभः = कठिनः, इति नूनम् = निश्चितम्, तेन सह नैरन्तर्येण युद्धमनिवार्यमिति व्यज्यते, एतद् वैरम् = शूर्पणखा-

---

उसे साधारण स्त्री नहीं समझना चाहिए । तुमने बहुत कठिन काम किया है ।

(लक्ष्मण लज्जा से मुह नीचे कर लेते हैं)

सीता—आर्यपुत्र ! मैं अभी भी मानों राक्षसी को देख रही हूँ ।

राम—तीन लोकों का शत्रु रावण यदि इसका बड़ा भाई है तब इस धनुष का विश्राम सुलभ नहीं है ।

(अर्थात् इसके साथ युद्ध अनिवार्य है) राक्षसों से सम्बन्धित यह भाव समस्त राक्षसों

रजनिचरनिबद्धं प्रायशो वैरमेतद्
भवतु भुवनभूत्यै सर्वरक्षोवधेन ॥ १९ ॥

सीता—अज्जउत्त ! पेक्ख पेक्ख दिवसक्खअपाडलेहिं किरणेहिं उद्धरिअ रक्खसीए लोहिदकद्दमं पाअवसिहराइ लिंपदि विअ भअवं सुज्जो। (आर्यपुत्र ! पश्य पश्य दिवसक्षयपाटलैः किरणैरुद्धृत्य राक्षस्या लोहितकर्दमं पादपशिखराणि लिम्पतीव भगवान् सूर्यः।)

रामः—एष परिणतो दिवसः। वत्स। लक्ष्मण !

खड्गं निधेहि शिथिलीकुरु कार्मुकज्या-

वैरूप्यहेतुकः शत्रुभावः, प्रायशः = प्रायः, रजनिचरनिबद्धम् = राक्षसजातिसम्बद्ध (अतः) सर्वरक्षोवधेन = सकलराक्षसविनाशेन, (हेतुना) भुवनभूत्यै = लोक कल्याणाय, भवतु = अस्तु। स्वभगिनीवैरूप्येण वात्सल्यवशात्सञ्जातक्रोधो रावण मया सहावश्यं युद्धं करिष्यत्यतो नास्ति मम शरामनस्य विश्रामावसरः, किन्तु तेन सह इयमेव शत्रुता सर्वराक्षसविनाशकारिणी भूता सती लोकाभ्युदयहेतुक भविष्यतीति भावः। मालिनीवृत्तम् ॥ १९ ॥

अथ सीता अस्ताचलगामिनं सूर्यमवलोक्य कौतुकाशयं द्योतयति—आर्यपुत्र पश्येति ॥ भगवान् सूर्यः = भुवनभास्करो रविः, दिवसक्षयपाटलैः = दिनावसाना हेतोः अतिरक्तैः, किरणैः = रश्मिभिः, राक्षस्याः लोहितकर्दमम् = रक्तपङ्कम्, उद्धृत्य = हस्ते कृत्वा, पादपशिखराणि = वृक्षाग्रभागान्, लिम्पति इव = लेपनं करोति इव। अत्र राक्षस्याः रक्तकर्दमम् पादपाग्रभागलेपनसाधनत्वेनोत्प्रेक्षितम्।

अथ राम आसन्नसान्ध्यवेलामालोक्य लक्ष्मणसीताभ्यां साकं सायन्तनविहितं कर्म चिकीर्षुः लक्ष्मणं प्रति शत्रुविषयसन्नाहमोचनाय कथयति—खड्गमिति। (लक्ष्मण !) खड्गं निधेहि, कार्मुकज्यां शिथिलीकुरु, विरजसाम् अपाम् अवगाहनार्द्रैः अङ्गैः (सहिताः) वयम् मरुतः अन्तर्नियम्य, मन्त्रान् परिवर्त्य, अद्य साय-

---

के वध के द्वारा संसार के कल्याण के लिये हो ॥ १९ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! देखिये, देखिये। दिन के बीत जाने के कारण अत्यन्त लाल किरणों से राक्षसी के रुधिरपङ्क को उठाकर भगवान् सूर्य वृक्षों के शिखरों को मानो लीप रहे हैं।

राम—यह सन्ध्या हो गयी। वत्स लक्ष्मण !

तलवार रख दो। धनुष की डोरी को ढीली करो। धूलि से रहित जल में स्नान द्वारा

मङ्गैरपां विरजसामवगाहनार्द्रैः।
अन्तर्नियम्य मरुतः परिवर्त्य मन्त्रान्
सायन्तनं नियममद्य वयं चरामः॥ २०॥

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः। (तथा करोति)

राम—एष एषः—

रथचरणायुधस्य चरणेन हतो रभसा-
न्नभस इव च्युतो नमुचिरस्रकणैः क्षरितैः।

न्तनं नियमं चरामः इत्यन्वयः। लक्ष्मण! खड्गम् = असिम्, निधेहि = नीचैः स्थापय, कार्मुकज्याम् = धनुर्मौर्वीम्, शिथिलीकुरु = उत्तरितां कुरु, विरजसाम् = विगतधूलीनाम्, अपाम् = जलानाम्, अवगाहनार्द्रैः = अवगाहनाद्धेतोः आर्द्रैः = सिक्तैः, अङ्गैः = अवयवैः (सहिताः) वयम् = रामादयः, मरुतः = प्राणवायून्, अन्तर्नियम्य = अन्तर्मुखीकृत्य, मन्त्रान् = गायत्र्यादीन्, परिवर्त्य = आवृत्तिपूर्वकं जप्त्वा, अद्य = इदानीम्, सायन्तनम् = सायङ्कालेऽवश्यकर्त्तव्यत्वेन विहितम्, नियमम् = सन्ध्यावन्दनादिकं कर्म, चरामः = अनुतिष्ठामः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ २०॥

अथ राममुखेन कविः सन्ध्यावर्णनमवलम्ब्य अङ्कं समापयति—एष एष-रथचरणायुधस्येति। हे शशिमुखि, सविता चरणायुधस्य चरणेन हतः रभसात् नभसः च्युतः नमुचिः इव क्षरितैः अस्रकणैः प्रतिनवबन्धुजीवकुसुमच्छविभिः किरणैः दिङ्मुखानि अरुणीकुरुते इत्यन्वयः। शशिमुखि! = चन्द्रवदने!, सविता = सूर्यः, रथचणायुधस्य = विष्णोः, चरणेन = पादेन, हतः = प्रक्षिप्तः, रभसात् = वेगात्, नभसः = आकाशात्, च्युतः = स्खलितः, नमुचिः इव = एतन्नामकराक्षस इव, पतनसमये परितः क्षरितैः = प्रसृतैः, अस्रकणैः = रुधिरबिन्दुभिः, प्रतिनवबन्धुजीवकुसुमच्छविभिः = प्रतिनवानाम् = अभिनवानाम् बन्धुजीवकुसुमानाम् = बन्धूक-

---

गीले शरीर से वायु को अन्तःकरण में रोकर, (प्राणायाम करके) मन्त्रों को जप कर हम लोग अब सायंकालिक नियम का पालन करते हैं॥ २०॥

लक्ष्मण—आपकी जो आज्ञा। (वैसा करते हैं)

राम—यह यह—

हे चन्द्रवदने! जिस प्रकार (देवासुर संग्राम में) विष्णु भगवान् के क्रोध पूर्वक चरण-

प्रतिनवबन्धुजीवकुसुमच्छविभिः सविता
शशिमुखि ! दिङ्मुखानि किरणैररुणीकुरुते ॥ २१ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति श्रीशक्तिभद्रविरचिते चूडामणिनाटके द्वितीयोऽङ्कः ।

पुष्पाणाम् , "रक्तकस्तु बन्धूको बन्धुजीवकः" इत्यमरः, छविरिव छविः = शोभ येषाम् तैः अतिरक्तैः, किरणैः = रश्मिभिः, दिङ्मुखानि = आशामुखानि, अरुणीकुरुते रक्तीकरोति । यथा देवासुरसंग्रामे विष्णोः सुदर्शनचक्रेणोच्छिन्नशिराः नमुचि गनात पतितः सन् स्वशोणितकणैः ककुबाननानि अरुणीचकार तथैवाधुना अस्ताच चूडावलम्बी भास्करो बन्धूकपुष्पशोभै रश्मिभिर्दिशामुखानि रक्तीकरोतीति भावः नर्दटकं वृत्तम् । तल्लक्षणं हि—यदि भवतो नजौ भजजला गुरुनर्दटकम् । पूर्णो माऽलङ्कारः ॥ २१ ॥

निष्क्रान्ताः = सर्वेऽपि रङ्गशालातः बहिर्गताः ।

॥ इति आश्चर्यचूडामणे रमाटीकायां द्वितीयोऽङ्कः ॥

प्रहार से आकाश से गिरे हुए नमुचि नामक असुर ने बहते हुये अपने रक्त से दिशा के मुख को लाल कर दिया था, उसी प्रकार नूतन नूतन बन्धुजीव फूलों की शोभा धार करने वाले किरणों से सूर्य दिशाओं के मुख को रक्त वर्ण का बना रहा है ॥ २१ ॥

द्वितीय अङ्क समाप्त ।

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति श्रमवानृषिकुमारः)

ऋषिः—तिष्ठतु चिराय दिवसकरान्वयो यं विभूषयता रामेण खरदूषणकर्णधारां यातुधानकेतुमतीं जनस्थानतो यमस्थानवर्तिनीं कृतवता कृताः खलु मद्विधानामपि स्वैरसञ्चारक्षमा वनभूमयः। साम्प्रतं नूनं

रामस्य दास्यपदवीमधिगत्य नित्यं,
योऽलङ्करोति भुवनं रघुवंशनामा।
यत्पादपद्मकलिका भ्रमरीकरोति,
चेतः स मे विजयते प्रथमो गुरूणाम् ॥

अथ कवी रसदृष्ट्या नीरसं शास्त्रदृष्ट्या चानुचितं खरदूषणादिवधवस्तुजातं विष्कम्भकेन सूचयति। मुनिकुमारवृद्धतापसरूपमध्यमपात्राभ्यां प्रयोजितोऽयं विष्कम्भकः शुद्ध इति ज्ञेयम्।

अथाधीतसकलशास्त्रः कश्चिन्मुनिकुमारो विषयनिर्लिप्तो भूत्वा तीर्थानि सेवमानो मध्येमार्गं रामकृतखरदूषणादिवधं विज्ञाय भ्रमणपरिश्रान्तोऽप्यानन्दितो भूत्वा सूर्यकुलाशीर्वादप्रदानपूर्वकं रामं प्रशंसति—तिष्ठतु चिरायेति॥ दिवसकरान्वयः = सूर्यकुलम्, चिराय = बहुकालं यावत्, तिष्ठतु = निरुपद्रवमवतिष्ठताम्, यम् = दिवसकरान्वयम्, विभूषयता = अलङ्कुर्वता, रामेण = दशरथापत्येन पुरुषोत्तमेन, खरदूषणकर्णधाराम् = खरदूषणौ कर्णधारौ = नायकौ पक्षे—नाविकौ यस्याः ताम्, यातुधानकेतुमतीम् = राक्षससेनाम् (सेनायाः केतुना नित्ययोगात्) पक्षे—पोतम्, पोतस्यापि कूपकेन नित्ययोगात् केतुमतीशब्दाभिधेयत्वम्। सेनाम्प्रति खरदूषणयोर्नियन्त्रित्वात् कर्णधारत्वारोपः। जनस्थानतः = जनस्थानाख्यारण्यविशेषात्, यमस्थानवर्त्तिनीम् = मृत्युलोकनिवासिनीम्, कृतवता = विदधता, मद्विधानाम् अपि = अस्मत्सदृशानामपि (कौमारे वयसि स्थितानाम्) वनभूमयः = कानन-

---

(अनन्तर थके हुए ऋषिकुमार प्रवेश करते हैं)

ऋषि—सूर्यकुल बहुत दिनों तक प्रतिष्ठित रहे, जिसको विभूषित करते हुए रामचन्द्र ने खर और दूषण सदृश नाविक से युक्त राक्षससेनारूपी नौका को जनस्थान नामक जंगल से यमराज के घर पहुँचा कर वनभूमि को हम लोगों के लिये भी स्वेच्छापूर्वक विचरण

रामाश्रयाद् राक्षसजीवितरसज्ञा मृत्युजिह्वा लङ्कामपि लेढि। (किञ्चिद्गत्वा) तत् क नु खलु तीर्थयात्राश्रमं विगमयामि। (परिक्रम्यावलोक्य) अत्रा- न्नेनाश्रमेण भवितव्यम्। तथा हि—

दर्भैः सैकतमण्डलानि सरितः श्यामानि मन्त्रास्तृतै-
रभ्यासात् कलमाह शाखिनि शुकी वाक्यानि वैखानसैः।

प्रदेशाः, स्वैरसञ्चारक्षमाः = स्वेच्छया विचरणयोग्याः, कृताः = सम्पादिता रामस्य प्रभावेणैव वयमप्युच्छिन्नराक्षसकुलेऽस्मिन् विपिने यथेच्छं भ्रमणशील सञ्जाता इति भावः। साम्प्रतम् = अधुना, नूनम् = अवश्यम्, रामाश्रयात् लोकोत्तरगुणसम्पन्नस्य रामस्याश्रयणात्, राक्षसजीवितरसज्ञा = राक्षसानाम् निशाचराणाम् जीवितरसम् = जीवनानन्दस्वादनम् अनुभवन्ती, मृत्युजिह्वा अन्तकरसना, लङ्कामपि = रावणस्य राजधानीभूतां स्वर्णपुरीमपि, लेढि = स्वा विषयं करिष्यति। विगमयामि = दूरीकरोमि। अत्र = नदीतीरे, आसन्नेन समीपस्थेन। अत्रायो ग्रन्थप्रसङ्गः सर्वराक्षसवधोत्साहभूतस्य 'बीजस्य खरदू वधेनावान्तरप्रयोजनेन विच्छेदे प्रसक्ते तस्याऽविच्छेदाय नाटककृता विन्दु द्वितीयार्थप्रकृतित्वेनोपन्यस्तः।

आश्रमं सम्भावयन्नाह—दर्भैरिति॥ सरितः सैकतमण्डलानि मन्त्रास्त दर्भैः श्यामानि, शाखिनि (स्थिता) शुकी वैखानसैः (सह) अभ्यासा वाक्यानि कलमाह, मुनिसुतैः नीवाराञ्जलिभिः भृताः बालाः मृगाः मातुः ऊधो पास्य जटाचीराजिनप्रत्ययात् साम्प्रति आयान्ति इत्यन्वयः। सरितः = नद्या सैकतमण्डलानि = बालुकामयप्रदेशसमूहाः, मन्त्रास्तृतैः = यज्ञसम्पादनाय मन्त्र पूर्वकं विस्तृतैः, दर्भैः = कुशैः, श्यामानि = कृष्णानि (प्रतीयन्ते) शाखिनि पादपे (स्थिता) शुकी = कीराङ्गना, वैखानसैः = वानप्रस्थाश्रमे विद्यमाने मुनिभिः, (सह) अभ्यासात् = असकृदुच्चारणात् पौनःपुन्येनावर्त्तनादि

करने योग्य बना दिया है। इस समय राम के आश्रय से राक्षसों के प्राणों के स्वाद के जानने वाली मृत्यु की जिह्वा निश्चय ही लङ्का को भी चाट डालेगी। (थोड़ी दूर जाकर तो तीर्थयात्रा से उत्पन्न थकावट को मैं कहाँ दूर करूँ? (घूम कर और देखकर यहाँ समीप में आश्रम होना चाहिए। क्योंकि—

नदी के बालुकामय प्रदेश मन्त्रपूर्वक बिछाये गये कुशों से श्यामवर्ण के हैं। वृक्ष प विद्यमान शुकाङ्गना ऋषियों के साथ प्रतिदिन के अभ्यास से स्वयम् वाक्यों का उच्चार

ऊधो मातुरपास्य मां प्रति जटाचीराजिनप्रत्ययाद्
नीवाराञ्जलिभिर्भृता मुनिसुतैरायान्ति बाला मृगाः ॥ १ ॥

अत्र न शृणोमि स्वाध्यायम् । (ध्यायन्) न पश्यामि होमधूमम् । ...वतु, प्रविश्य ज्ञास्ये । (प्रविश्यावलोक्य) इदमाश्रमपदमचिरोत्सन्नमिव ...श्यते । तथा हि—

विसृजति हुतगन्धं वेदिरास्तीर्णदर्भा

...वत्, वाक्यानि = पदसमूहान्, कलमाह = उच्चारयति, मुनिसुतैः = ऋषि-...मारैः, नीवाराञ्जलिभिः = नीवारसंज्ञकतपोवनधान्यविशेषैः पूरितकरपुटैः, ...ताः = उपलालिताः, बालाः = वयसः अल्पत्वेन स्वयं तृणादिभक्षणायोग्याः, ...गाः = हरिणादयः, मातुः = जनन्याः, ऊधः = स्तनभारम्, अपास्य = उत्सृज्य, ...टाचीराजिनप्रत्ययात् = सटाचीवरमृगचर्मभिः (कृतात्) विश्वासात्, माम्प्रति= ...निकुमारं मामुद्दिश्य, आयान्ति = आगच्छन्ति । मुनिकुमारकृतोपलालनाति-...यसमुत्पन्नस्नेहविशेषेण मातुः स्रवत्क्षीरमपि स्तनमुत्सृज्य पूर्वविश्वासकार-...त् अयमपि मुनिकुमार इति मत्वा माम्प्रत्यागच्छन्ति वन्या हरिणादय इति ...वः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । स्वभावोक्त्यलङ्कारः ॥ १ ॥

स्वाध्यायम् = वेदाध्ययनम् । होमधूमम् = यज्ञाग्निप्रदत्तहोमद्रव्यसमुत्पन्न-...मम् । अचिरोत्सन्नम् = अचिरेण = इदानीमेव उत्सन्नम् = विनष्टम् ।

आश्रमस्योत्सन्नत्वमेव समर्थयते—विसृजतीति ॥ (इयम्) आस्तीर्णदर्भा ...दिः हुतगन्धं विसृजति, वलिभूमौ षट्पदाः सौहृदय्यं न जहति, तरुशाखा-...क्रवाले विषक्तम् इदम् वल्कलम् अपि पल्लवानाम् पिशङ्गम् द्विगुणयति इत्य-...यः । इयं पुरोदृश्यमाना, आस्तीर्णदर्भा = आकीर्णकुशा, वेदिः = यज्ञार्थं परिष्कृता

...रती है । मुनिकुमारों के द्वारा नीवार की अञ्जलियों से पोषित होने वाले मृग के बच्चे ...ता के दूध भरे स्तन को छोड़ कर जटा और वल्कल के विश्वास से (मुनि समझ कर) ...रे पास आते हैं ॥ १ ॥

यहाँ पर वेदों का पाठ नहीं सुन रहा हूँ । (ध्यान करते हुए) हवन के धूम को भी ...हीं देखता हूँ । अच्छा, (आश्रम में) प्रवेश करके जानूँगा । (प्रवेश कर और देखकर) ...ह आश्रम शीघ्र उजड़ा हुआ सा जान पड़ता है । क्योंकि—

बिछे हुए कुशों से आपूर्ण यह यज्ञकुण्ड हवन-द्रव्य के गन्ध को छोड़ता है । (सर्वत्र

न जहति बलिभूमौ षट्पदाः सौहृदय्यम् ।
इदमपि तरुशाखाचक्रवाले विषक्तं
द्विगुणयति पिशङ्गं वल्कलं पल्लवानाम् ॥ २ ॥

अत्र हि कश्चिद् विद्यते चेदाह्वयामि । अहमतिथिः कोऽत्र भोः
(नेपथ्ये) इत इतः स्वागतमतिथये ।

ऋषिः—न शून्यमिव ।

(ततः प्रविशति यात्रासम्भारव्यापृतो वृद्धतापसः)

भूमिः, वेदिकेति यावत्, हुतगन्धम् = हवनद्रव्योत्पन्नसुगन्धिम्, विसृजति परित्यजति (प्रसङ्गात् विस्तारयति) षट्पदाः = भ्रमराः, बलिभूमौ = शालायाम्, सौहृदय्यम् = सौहार्दम् हृदयसौख्यमिति यावत्, न जहति त्यजन्ति, बल्यर्थचन्दनपुष्पपरिमलादिसम्भूतानन्दमनुभवन्तीत्यर्थः, तरुशाखा चक्रवाले = पादपशाखासमूहे, विषक्तम् = अवस्थितम्, संलग्नमित्यर्थः, इदम् परिदृश्यमानम्, वल्कलमपि = मुनिचीवरभूतमहीरुहत्वगपि, पल्लवानाम् किसलयानाम्, पिशङ्गम् = पिङ्गलं कपिलवर्णमित्यर्थः, द्विगुणयति = द्विगुणं करोति । वल्कलगतस्य कपिलवर्णस्य किसलयेषु संक्रमणात् द्विगुणत्वमुक्तम् मालिनीवृत्तम् ॥ २ ॥

स्वागतम् = शोभनम् आगतम् = आगमनम् स्वागतम् । अतिथये = न विद्यते तिथिः यस्य, सः, यस्यागमनस्य न काचिन्निश्चिता तिथिर्भवति, अनिश्चितरूपेण यस्मिन् कस्मिन् दिने च आगच्छति सोऽतिथिः = लोकेऽभ्यागत इत्युच्यते ।

न शून्यमिति ॥ अस्ति कश्चिदिति शेषः ।

यात्रासम्भारव्यापृतः = यात्रार्थं दण्डासनकमण्डल्वादिसामग्रीसमुद्वहनव्यग्रः वृद्धतापसः रङ्गशालायां प्रवेशं नाटयति ।

आहुति का सुगन्ध फैल रहा है) भौंरे यज्ञभूमि में विद्यमान फूलों के रस के हृदय को नहीं छोड़ते हैं (अर्थात् बलिरूप में प्रदत्त पुष्परस का आस्वादन कर रहे हैं) की शाखाओं में टँगा हुआ यह वल्कलवस्त्र भी किसलयों के भूरे रंग को और अधिक रहा है ॥ २ ॥

यदि यहाँ कोई है तो बुलाता हूँ । मैं अतिथि हूँ । यहाँ कौन है ? (नेपथ्य में) आइये इधर, अतिथि का स्वागत है ।

ऋषि—सूना नहीं है ।

(तदनन्तर यात्रा-सामग्री में व्यस्त वृद्ध तपस्वी प्रवेश करता है ।)

वृद्धः—इत इतः स्वागतमतिथये ।

ऋषिः—तपोधन ! भवन्मात्रावशेषं बह्वाभोगमाश्रमसहं पश्यामि ।

वृद्धः—अयं तावत् पौलस्त्यबन्धोर्मारीचस्याश्रमः ।

ऋषिः—श्रूयते स कौशिकसुतेभ्यो रामशरोच्छिष्ट इति । किं स एव ।

वृद्धः—अथ किम् । अस्ति रावणभगिनी शूर्पणखा ।

ऋषिः—तिष्ठ, तपोवने रामशासनात् सञ्चरतो लक्ष्मणस्य मुखादेव तं शूर्पणखाविरूपकरणं खरदूषणवधश्च, ममापूर्वो मारीचवृत्तान्त एव ।

तपोधन != व्रतमेव धनं यस्य तत्सम्बोधने । भवन्मात्रावशेषम्=भवन्मात्रम्= वानेव अवशेषः = अवशिष्टो यस्मिन् । बह्वाभोगम् = बहुः = अधिकः, आभोगः = रिपूर्णता यस्मिन्, एतादृशम् आश्रमम् = तपोवनम्, अहमवलोकयामि ।

पौलस्त्यबन्धोः = पुलस्तस्य अपत्यं पुमान् पौलस्त्यः = रावणप्रभृतिराक्षस- र्गः स बन्धुः = स्वजनः यस्य तस्य मारीचस्य = एतन्नामकराक्षसस्य, अयमाश्र- ोऽस्तीति शेषः ।

रामशरोच्छिष्टः=रामस्य=कौशिकयज्ञप्रसङ्गे दशरथसूनोः शरैः,=बाणैः उच्छिष्टः= न् कुष्टवदुपेक्षितः दूरं प्रक्षिप्त इत्यर्थः ।

शूर्पणखाविरूपकरणम् = शूर्पणखावैरूप्यकर्मेति वृत्तम् । अपूर्वः = अज्ञातस्वा- नूतनः । शूर्पणखावृत्तान्तो मया लक्ष्मणमुखादेव श्रुतः, इदानीम् मारीचेति- त्तमेव त्वया वक्तव्यमस्तीति भावः ।

वृद्ध—इधर आइये इधर, आपका स्वागत है ।

ऋषि—तपोधन ! बहुत विस्तृत इस आश्रम में केवल आपको ही देखता हूँ । (अर्थात इस विस्तृत आश्रम में बहुत ऋषियों की संभावना है किन्तु सम्प्रति आप अकेले नजर आते हैं)

वृद्ध—यह पुलस्त्य की सन्तान के बान्धव मारीच का आश्रम है ।

ऋषि—राम के बाण से वह फेंका गया, यह बात कौशिक के पुत्रों से सुनी जाती है । क्या वही मारीच ?

वृद्ध—और क्या ? रावण की एक बहन शूर्पणखा है ।

ऋषि—ठहरो, राम की आज्ञा से तपोवन में घूमते हुए लक्ष्मण के मुख से ही शूर्प- णखा के नाक और कान काटने की बात तथा खर और दूषण के वध का समाचार सुन चुका हूँ । केवल मारीच का वृत्तान्त अज्ञात है ।

वृद्धः—ततः सक्रोधो रावणः मारीचस्याश्रममागतवान् ।

ऋषिः—ततस्ततः ।

वृद्धः—ततः "त्वं मृगरूपेण रामं विलोभ्य दूरीकुरुष्व, तावदहं सी[illegible] स्वीकरिष्यामि" इति बहुशस्तेन स निर्बद्धः ।

ऋषिः—ततस्ततः ।

वृद्धः—ततस्तदानीं रामगौरवं बहुधा व्याहृत्य मुहूर्तं तूष्णीं स[illegible] पद्यत स मारीचः ।

ऋषिः—सदृशमनुष्ठानमस्य । ततस्ततः ।

वृद्धः—ततः सक्रोधो रावणः—

रचयन् भ्रुकुटीः प्रहस्य कोशा-
दुदहासीदसिमुन्मयूखरेखम् ।

मारीचमुखात् रामगौरवपरं वाक्यं श्रुत्वा क्रुद्धः सन् रावणः कोशात् च[illegible] हासमाकर्षति । रचयन्निति ॥ (रावणः) प्रहस्य भ्रुकुटीः रचयन् कोशात् उन्मयू[illegible] रेखम् असिम् उदहासीत् । यस्य धारा ऐरावतदन्तिदन्तकोशैः समम् विष[illegible] भवति स्म इत्यन्वयः (रावणः) प्रहस्य = अट्टहासं कृत्वा, भ्रुकुटीः रचयन् कुटिलाः दृष्टीः विदधत्, कोशात् = खङ्गपिधानात्, उन्मयूखरेखम् = उद्गता मयू[illegible] रेखा = किरणपंक्तिः यस्मात् तम् = उद्गतरश्मिजालम्, असिम् = चन्द्रहासा[illegible]

वृद्ध—उसके बाद क्रोध से युक्त रावण मारीच के आश्रम में आया ।

ऋषि—उसके बाद ?

वृद्ध—उसके बाद "तुम मृग के वेश से राम को लुभा कर दूर ले जाओ, तबतक सीता का ग्रहण करूँगा।" इस प्रकार उसने मारीच से बहुत आग्रह किया ।

ऋषि—उसके बाद ?

वृद्ध—तब वह मारीच राम की महिमा को बहुत तरह से कह कर कुछ देर [illegible] लिये चुप हो गया ।

ऋषि—उसका आचरण ठीक था । उसके बाद ?

वृद्ध—उसके बाद क्रोध से युक्त रावण—त्यौरी चढ़ाते हुए अट्टहास करके कृप[illegible]

विषमीभवति स्म यस्य धारा-
समसैरावतदन्तिदन्तकोशैः ॥ ३ ॥

ऋषिः—तत्र न विस्मयः । ततस्ततः ।

वृद्धः—ततः सद्यः प्राणभयान्नु पूर्ववैरस्मरणान्नु स रावणविधेयतां प्रतिपन्नः ।

ऋषिः—ध्रुवमभिजनानुरूपमनुष्ठानम् । कुतः,

असतां सहजो भावश्छन्नः केनापि हेतुना ।
संस्कार इव बीजानां फलेन सह जायते ॥ ४ ॥

खड्गम् , उदहासीत् = उद्धृतवान् , रावणः स्वकीयादेशपालने शिथिलं मारीचं चन्द्रहासेन हन्तुमुद्यतोऽभूदित्यर्थः, यस्य = चन्द्रहासस्य, धारा, ऐरावतदन्तिदन्तकोशैः = ऐरावतनामकस्येन्द्रगजस्य दन्तकोशैः = चतुर्भिरपि दन्तसमूहैः, विषमीभवति स्म = विप्रतिपद्यते स्म, निम्नोन्नता भवति स्मेत्यर्थः । कालभारिणी वृत्तम् ॥ ३ ॥

रावणविधेयतां प्रतिपन्नः = स्वभागिनेयस्य रावणस्य कार्यं कर्त्तुमुद्यतोऽभूत् । अभिजनानुरूपम् = दुष्टजनमनोऽनुकूलम् अनुष्ठानम् अथवा अभिजनः = कुलम् तदनुकूलम् , राक्षसकुलानुरूपमेतदनुष्ठानमित्यर्थः । तदेव समर्थयति— असतामिति ॥ असताम् सहजो भावः केनापि हेतुना छन्नः बीजानाम् संस्कार इव फलेन सह जायते इत्यन्वयः । असताम् = जात्या दुर्जनानाम् , सहजः = सहजातः, भावः = परपीडावञ्चनाद्यभिरुचिः, केनापि हेतुना = भयादिकारणेन, छन्नः = तिरोहितः, बीजानाम् = धान्यबीजानाम्, संस्कार इव = दृष्टरूपत्वात्

उठती हुई किरणरेखाओं से युक्त तलवार को, जिसकी धारा ऐरावत हाथी के दन्तकोशों के साथ टेढ़ी होती थी, म्यान से खींच लिया ॥ ३ ॥

ऋषि—इसमें कोई आश्चर्य नहीं । उसके बाद ?

वृद्ध—उसके बाद तत्क्षण प्राणों के भय से अथवा अपनी पुरानी शत्रुता के स्मरण से वह रावण के कार्य में तत्पर हो गया ।

ऋषि—उसका यह आचरण निश्चय ही उसके कुल के अनुसार हुआ ।

क्योंकि—

किसी कारण से छिपा हुआ दुष्ट-जनों का स्वाभाविक भाव बीजों के संस्कार की भाँति फल के साथ प्रतीत होता है ॥ ४ ॥

ततस्ततः।

वृद्धः—ततस्तस्मादितो रावणदूषितादुद्विग्ना निरगच्छन्नियमिनः दृश्यते ननु त्वयापि मे गमनत्वरा।

ऋषिः—यद्येवं साधयतु भवान्। अहमितो गच्छामि।

वृद्धः—बाढम्।

(निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः।

(ततः प्रविशति रामः सीतया सह)

रामः—(निमित्तं सूचयन्) देवि! अयमद्य

आक्रान्ताः किन्तु बालो भरत इति परैरुत्तराः कोसला मे

स्वभावत एव अनभिव्यक्तः इव, फलेन = वञ्चनमरणादिरूपपरमफलेन, प व्रीह्यादिना सह जायते = अभिव्यज्यते। यथा धान्यबीजानां संस्कारः स्वभाव एव अनभिव्यक्तः सन्नङ्कुरादिकार्यं कुर्वाणो व्रीह्यादिफलेन सहावगम्यते तथै दुष्टानां नैसर्गिकः परहिंसावञ्चनादिको भावस्तिरोहितः सन् प्रवञ्चनमरणादिन सहाभिव्यज्यते इति भावः। अनुष्टुब् वृत्तम्। उपमालङ्कारः॥ ४॥

साधयतु = शीघ्रं गच्छतु।

रामः सीतया सह रङ्गशालां प्रविश्य अनिष्टसूचकं वामबाहुस्फुरणादिकम भिनयन्नाह—आक्रान्ता इति॥ जनकसुते! बालः भरतः इति मे उत्तराः कोशलाः परैः आक्रान्ताः किन्तु, शोकातिभारात् मम जनन्यः स्वर्गं याताः किन्तु, अन्यैः रक्षोभिः खरवधरभसात् छन्नम् मया वर्त्तते किन्तु, वामाक्षि! तव शिखाबन्धन-

---

उसके बाद?

वृद्ध—उसके बाद यहाँ से रावण की दुष्टता से उद्विग्न होकर तपस्वी लोग चले गये। मेरे जाने की शीघ्रता को भी आप देख ही रहे हैं।

ऋषि—यदि ऐसा है तो आप जाइये। मैं यहाँ से जाता हूँ।

वृद्ध—अच्छा। (दोनों चले जाते हैं)।

विष्कम्भक समाप्त।

(तदनन्तर सीता के साथ राम प्रवेश करते हैं)

राम—(अनिष्ट की सूचना देते हुए) देवि! आज यह भरत अभी बच्चे हैं ऐसा

स्वर्गं शोकातिभारान्मम जनकसुते ! किन्नु याता जनन्यः ।
रक्षोभिश्छन्नमन्यैः खरवधरभसाद् वर्तते किन्नु माया
वामो वामाक्षि ! बाहुः स्फुरति तव शिखाबन्धनस्यैकबन्धुः ॥५॥

सीता—अज्जउत्त ! णं तवो एव्व संति अमङ्गलस्स । (आर्यपुत्र ! ननु तप एव शान्तिरमङ्गलस्य ।)

(ततः प्रविशति मारीचः)

मारीचः—(सचिन्तम्)

बन्धुस्नेहो नु पापस्य जन्मनः प्रभुता नु मे ।

स्यैकहेतुः वामो बाहुः स्फुरति इत्यन्वयः। जनकसुते !=जनकतनये !, बालः भरतः इति=अशक्तः कैकेयीसुत इति तं परिभूय, मे=मम, उत्तराः कोशलाः= उत्तरादिग्वर्त्तिकोशलाख्यप्रदेशाः, परैः=शत्रुभिः, आक्रान्ताः किन्नु=आक्रमण-विषयीभूताः किन्नु, शोकातिभारात्=भर्तृवियोगात्, अस्मद्विप्रवासजन्यशोकाधि-पयाच्च, मम जनन्यः=मम कौशल्यादयो मातरः, स्वर्गम्=दिवम्, याताः= गताः, किन्नु, अन्यैः रक्षोभिः=साक्षादस्मान् परिभवितुमसमर्थैः राक्षसैः, खरवध-रसात्=खरदूषणादिहननजन्यक्रोधात् छन्नम्=परोक्षीभूय क्रियमाणा इति शेषः, माया=छलना किन्नु, वामाक्षि ! तव=भवत्याः, शिखाबन्धनस्यैकबन्धुः= शिखाबन्धनस्य=केशकलापस्य एकबन्धुः=प्रधानभूतः सहायः वामो बाहुः= दक्षिणेतरो भुजः, स्फुरति=स्पन्दते। मम वामभुजस्य स्फुरणं पूर्वोक्तमनिष्टजातं सूचयतीत्यर्थः। स्रग्धरा वृत्तम्। सन्देहालङ्कारः॥ ५॥

अथ मारीचोऽनिच्छन्नपि विधिबलाद् रावणनियोगं स्वीकृत्य रामं वञ्चयितु-मुद्यतः सानुतापं वदति—बन्धुस्नेह इति॥ मया यद् अपहस्तितसद्वृत्तम् इदम्

समझ कर क्या शत्रुओं ने हमारे उत्तर कोशल पर आक्रमण कर दिया है ? अथवा हे जनक तनये ! शोक की अधिकता के कारण क्या हमारी माताएँ स्वर्ग सिधार गयीं ? अथवा खर की हत्या के क्षोभ से अन्य राक्षसों के द्वारा प्रच्छन्न क्या कोई छलना है ? हे सुन्दर नेत्रों वाली ! तुम्हारे केशसमूह का एकमात्र बन्धु मेरी बाँयी भुजा फरक रही हैं ॥ ५ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! तपस्या ही अमंगल की शान्ति है ।

(उसके बाद मारीच प्रवेश करता है)

मारीच—(चिन्ता से) मैंने राम को धोखा देकर अपने पुण्यकर्म को जो नष्ट कर

अपहस्तितसद्वृत्तं यन्मयेदमनुष्ठितम् ॥ ६ ॥

अथवा किं बहुना ।

रामाभिधानस्य परस्य पुंसः
शरव्यमापाद्य शरीरमेतत् ।
रक्षांसि सर्वाणि यमस्य लोकं
प्रविश्य पूर्वं प्रतिपालयामि ॥ ७ ॥

अनुष्ठितम् तत् मे बन्धुस्नेहो नु, मे पापस्य जन्मनः प्रभुता नु इत्यन्वयः। मया = मारीचेन, यद्, अपहस्तितसद्वृत्तम् = अपहस्तितम् = हस्तात्परित्यक्तम् सद्वृत्तम् = शिष्टाचारः यस्मिन् तत्, इदम् = रामवञ्चनात्मकं कर्म, अनुष्ठितम् = अनुष्ठीयते, वर्त्तमाने निष्ठाप्रत्ययः, तत्, बन्धुस्नेहः = स्वजनानुरागः, नु = किन्तु (अथवा) मे = मम, पापस्य = निन्दितस्य, जन्मनः = उत्पत्तेः, कुलस्य वा प्रभुता = शक्तिः, नु = किन्तु । पूर्वं मया किमपि तपोऽनुष्ठानात्मकं सद्वृत्तमङ्गीकृतं तदिदानीं बन्धुस्नेहेन पापजातिसम्बन्धेन वा रामवञ्चनात्मकेन निन्दितकर्मणा परित्यक्तमिति वितर्कस्याशयः । अनुष्टुब् वृत्तम् । सन्देहालङ्कारः ॥ ६ ॥

प्रस्तुतस्य कर्मणः श्रेयस्करत्वमवगम्य तस्य श्रेयोहेतुत्वं प्रतिपादयति—रामाभिधानस्येति ॥ (अहम्) एतत् शरीरम् रामाभिधानस्य परस्य पुंसः शरव्यम् आपाद्य पूर्वम् यमस्य लोकम् प्रविश्य सर्वाणि रक्षांसि प्रतिपालयामि इत्यन्वयः । अहम् = मारीचः, एतत् = साक्षाद् विद्यमानम्, शरीरम् = स्वकायम्, रामाभिधानस्य = राम इति नामधेयस्य, परस्य पुंसः = पुरुषोत्तमस्य श्रीनारायणस्य, शरव्यम् = लक्ष्यम्, आपाद्य = प्रतिपाद्य, पूर्वम् = प्रथमम्, यमस्य = धर्मराजस्य, लोकम्, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, सर्वाणि = सकलानि, रक्षांसि = राक्षसान्, प्रतिपालयामि = प्रतीक्षां करोमि । मम नाशानन्तरं सर्वे एव राक्षसा रामशरासनशरव्या भविष्यन्तीत्यर्थः । उपजातिवृत्तम् ॥ ७ ॥

दिया है, क्या वह भाई के प्रेम के कारण अथवा पापी राक्षस-कुल में जन्म लेने के प्रभाव के कारण ? ॥ ६ ॥

अथवा और अधिक क्या—

अपने इस शरीर को राम-नामधारी परमपुरुष के बाण का लक्ष्य बना कर यमलोक में प्रवेश करके सभी राक्षसों की पहले से ही प्रतीक्षा करता हूँ ॥ ७ ॥

तत् क नु खलु रामाश्रमः। यत्र सपत्नीकं रामं विचित्रमृगरूपेण विलोभयामि। (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति लक्ष्मणः कवचधरः)

लक्ष्मणः—"खरदूषणवधादुद्धृतकण्टकं जनस्थानमासीत्। अतो यथास्वं युष्माभिराश्रमपदानि सनाथीक्रियन्ताम्" इत्यार्यशासनात् विज्ञापितानां मुनिवृषभाणामनुग्रहाल्लब्धं कवचमकालेऽपि धारयामि। अपि च तैर्दत्तमार्याभ्यामलङ्करणीयम्—

वहामि मायापिशुनं रिपूणां
शरीरयोगे सति धार्यमाणम्।

न केवलं राममेवापि तु सीतामपि स्वकपटवेषेण विलोभयास्यत आह—सपत्नीकमिति॥

उद्धृतकण्टकम् = उद्धृतम् = उत्पाटितम्, कण्टकम् = कण्टकवद् विद्यमानम् राक्षसकुलम् यस्मात् एतादृशं जनस्थानम् = एतन्नामधेयं वनम्। अकालेऽपि = युद्धकाले एव कवचधारणस्यौचित्यमिति मन्यमान आह अकाले इति।

आर्याभ्याम् = आर्यायै आर्याय च दत्तम् अलङ्करणीयम् ताभ्याम्।

वहामीति॥ धार्यमाणम् रिपूणाम् शरीरयोगे सति मायापिशुनम् अंशुमालागूढम् सरत्नम् आश्चर्यभूतम् मणिम् कराङ्गुलीयम् च वहामीत्यन्वयः। धार्यमाणम् = अलङ्क्रियमाणम्, रिपूणाम् = शत्रूणाम्, शरीरयोगे सति = गात्रसंस्पर्शे सति (तेषाम्) मायापिशुनम् = कपटसूचकम्, (मायेयमिति ज्ञानस्य कारणभूतम्) अंशुमालागूढम् = अंशुमालाभिः = रश्मिसमूहैः, गूढम् = छन्नम्, सरत्नम् =

तो राम का आश्रम कहाँ है? जहाँ अपने अद्भुत मृगरूप से पत्नी के साथ राम को मोहित करूँ? (चला जाता है।)

(उसके बाद कवच धारण किए लक्ष्मण प्रवेश करते हैं)

लक्ष्मण—"खर और दूषण की हत्या से यह जनस्थान कण्टकरहित हो गया, अतएव आप लोग अपने योग्य आश्रम को सनाथ करें" आर्य राम के इस आदेश से चित ऋषिवरों के अनुग्रह से प्राप्त कवच को असमय में भी धारण करता हूँ। और उन लोगों के द्वारा दिए गये, आर्य और आर्या के आभूषण योग्य—रश्मि-समूह से

आश्चर्यभूतं मणिमंशुमाला-
गूढं सरत्नं च कराङ्गुलीयम् ॥ ८ ॥

यावदार्यमुपसर्पामि । (उपेत्य) जयत्वार्यः ।

रामः—(विलोक्य) दिष्ट्या लब्धानुग्रहो लक्ष्मणः । लक्ष्मण ! कि-
द्दृष्टस्त्वया स वन्द्यो जनः ।

लक्ष्मणः—दृष्टः प्रत्येकं समूहतश्च । यथोक्तं विज्ञापितश्च ।

रामः—(आसनादुत्थाय) किमाज्ञापयन्ति परापरविदः ।

लक्ष्मणः—आर्य ! श्रूयताम् ।

रत्नसहितम्, आश्चर्यभूतम् = विस्मयोत्पादनक्षमम्, मणिम् = चूडामणिम्
कराङ्गुलीयम् च = अङ्गुरीयकम् च, वहामि = धारयामि । मुनिश्रेष्ठैरार्याभ्यां प्रद
राक्षसमायानिवर्तकमाश्चर्यभूतं चूडामण्यङ्गुलीयाख्यं रत्नखचितं भूषणद्वय
मुद्वहामीति भावः । उपजातिवृत्तम् । दीपकाऽलङ्कारः ॥ ८ ॥

परापरविद इति ॥ परापरविदः = परम् = उत्कृष्टम् परं ब्रह्म, अपरम् = कार्यब्रह्म
तदुभयं विदन्ति = जानन्ति इति परापरविदः सूक्ष्मतत्त्वदर्शिन इत्यर्थः ।

व्याप्त अद्भुत मणि और रत्न युक्त इस अंगूठी को, जो धारण किये जाने पर राक्षसों के
शरीर के स्पर्श होने पर उनकी माया की सूचना देने वाली है, लेकर चलता हूँ ॥ ८ ॥

(तब तक आर्य राम के पास जाता हूँ)

(समीप जाकर) आर्य की जय हो ।

राम—(देखकर) सौभाग्य से लक्ष्मण ऋषियों का कृपापात्र बना । लक्ष्मण
क्या तुमने पूज्य जनों का दर्शन कर लिया ?

लक्ष्मण—अलग अलग और सामूहिक रूप से दर्शन किया । आपने जैसा कहा थ
वैसा सूचित भी कर दिया ।

राम—(आसन से उठकर) परम ब्रह्मतत्त्व और अविद्या-प्रधान पुरुषतत्त्व को
जानने वाले मुनि लोग क्या आदेश देते हैं ?

लक्ष्मण—आर्य ! सुनिये—

"क्षतजकणिकापातात् सन्ध्याघनच्छवि रक्षसां
नृवर ! सलिलं गोदावर्या न नो नियमक्षमम् ।
विषमिततला देवी विश्वम्भरा च समन्ततो
धरणिधरसङ्काशैस्तेषां कलेवरसञ्चयैः ॥ ९ ॥

ततः कतिपयाहमत्रस्था एव वयं भद्रमुखमाशीर्भिर्वर्धयाम" इति ।

रामः—अयमनिर्बन्धविषयो राशिः । (उपविशति)

ऋषेराज्ञापनप्रकारं लक्ष्मणो निवेदयति—क्षतजेति ॥ हे नृवर ! रक्षसाम् क्षतजकणिकापातात् सन्ध्याघनच्छवि गोदावर्याः सलिलम् नः नियमक्षमं न, देवी विश्वम्भरा धरणिधरसङ्काशैः तेषाम् कलेवरसञ्चयैः समन्ततः विषमिततला (विद्यते) इत्यन्वयः । हे नृवर ! हे नरश्रेष्ठ !, रक्षसाम् = मायिनाम्, क्षतज-कणिकापातात् = रुधिरविन्दुक्षरणात्, सन्ध्याघनच्छवि = संध्याघनस्य = सायंतन-मेघस्य छविः इव छविः शोभा यस्य तत् गोदावर्याः = एतन्नामिकायाः नद्याः, सलिलम् = जलम् राक्षसरक्तसम्पृक्तजलमित्यर्थः, नः = अस्माकम्, नियमक्षमम् = सन्ध्यावन्दनब्रह्मयज्ञतर्पणादियोग्यम्, न = नास्ति, शोणितसम्मिश्रणतया दूषित-त्वात् । अनेन रामस्य प्रशंसाऽपि व्यज्यते । देवी = भगवती, विश्वम्भरा = वसुन्धरा, धरणिधरसङ्काशैः = पर्वतसदृशैः, तेषाम् = राक्षसानाम्, कलेवर-सञ्चयैः = शरीरसमूहैः, समन्ततः = समन्तात् (सर्वस्याम् दिशि इति यावत्) विषमिततला = सञ्जातनिम्नोन्नतस्वरूपा विद्यते । हरिणीवृत्तम् । तल्लक्षणं हि—"रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा" । उपमाऽलंकारः ॥ ९ ॥

अथ रामो मुनीनां स्वातंत्र्यमनुभवन्नाह—अयमिति ॥ अत्र राशिशब्दः समूह-

---

"नरश्रेष्ठ ! राक्षसों के रुधिर-विन्दु के गिरने से संध्याकालीन मेघ की शोभा धारण करने वाला, गोदावरी नदी का यह जल हम लोगों के नियम-पालन के उपयुक्त नहीं है । (रुधिर के सम्पर्क से जल अपवित्र हो गया है) और पर्वत के समान उनके शरीर-समूह से पृथिवी ऊँची नीची हो गयी है ॥ ९ ॥

इसलिये हम लोग कुछ दिनों तक यहीं रह कर आशीर्वादों से आपका कल्याण चाहते हैं ।

राम—मुनियों का यह समूह बन्धन का विषय नहीं है । (बैठते हैं)

लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्यः। (दर्शयत्याश्चर्यचूडामणिमद्भुताङ्गुलीयकं च)

रामः—(दृष्ट्वा सविस्मयम्) आश्चर्यमाश्चर्यम्।

सीता—अच्चरं अच्चरं। (आश्चर्यमाश्चर्यम्।)

रामः—किमाह फलं स वन्द्यो जनः।

लक्ष्मणः—आर्य !

मणिमंशुकेसरितमङ्गुलीयकं
कलधौतसिद्धमपि धारयन्ति ये।
समवाप्य तामवशमाशु मायिनः
प्रकृतिं व्रजन्ति सहसा क्षपाचराः॥ १०॥

वाची, निर्बन्धविषयः = न कस्यचिदपि बन्धनस्य विषयः। ऋषयः सर्वथा स्वतन्त्रा भवन्तीत्यर्थः।

अथ लक्ष्मण आभूषणधारणफलं कथयति—मणिमंशुकेसरितमिति॥ ये अंशुकेसरितम् मणिम् कलधौतसिद्धम् अङ्गुलीयकम् अपि धारयन्ति, मायिनः क्षपाचराः तान् आशु अवशम् प्रकृतिम् व्रजन्तीति अन्वयः। ये (पुरुषाः) अंशुकेसरितम् = अंशवः = रश्मय एव केसराः = किञ्जल्काः "किञ्जल्कः केसरोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः, सञ्जाता अस्य इति अंशुकेसरितम् (तथाभूतम्) मणिम् = चूडामणिम्, कलधौतसिद्धम् = कलधौतेन = सुवर्णेन सिद्धम् = सिद्धिमुपगतम् सुवर्णनिर्मितमित्यर्थः, अङ्गुलीयम् = मुद्रिकाम्, अपि = च, धारयन्ति = भूषणत्वेन स्वीकुर्वन्ति, मायिनः = वञ्चनपराः, मायया रूपान्तरं प्रतिपन्ना वा, क्षपाचराः = निशाचराः, तान् = मण्यङ्गुलीयधारिणः पुरुषान्, समवाप्य = संस्पृश्य, आशु = तत्क्षणमेव, अवशम् = बलात्, प्रकृतिम् = स्वरूपम्, व्रजन्ति = गच्छन्ति। एतद्रत्नद्वयसंस्प-

---

लक्ष्मण—आर्य प्रसन्न हों। (आश्चर्य चूड़ामणि और अद्भुत अंगूठी को दिखाते हैं)

राम—(देखकर आश्चर्य से) आश्चर्य है आश्चर्य।

सीता—अद्भुत है अद्भुत।

राम—पूज्यजन ने इसका क्या फल कहा है ?

लक्ष्मण—आर्य !

किरण के केशर से युक्त मणि और स्वर्ण की बनी इस अंगूठी को जो लोग धारण करते है उन्हें पाकर मायावी राक्षस तुरत अपने स्वरूप में आ जाते हैं॥ १०॥

इति । प्रसीदत्वार्यः न महर्षिशासनमुपेक्षणीयम् ।

(पुनरुपनयति)

रामः—लक्ष्मण ! कवचस्य किमाह फलमसाधारणसुखार्थी वर्गः ।

लक्ष्मणः—शरेभ्यो मर्माणि रक्षतीति ।

रामः—यद्येवम् , आनय प्रतिगृह्णामि सिद्धार्थानां प्रीतिलताकुसुमम् ।

(आदाय चूडामणिं सीतायाः शिखापाशे बद्ध्वा आत्मनः करांङ्गुलिमङ्गुलीयेन योजयति)

सीता—(ससंभ्रममवलोक्य) अज्जउत्त ! किं एदं अपरं अच्चरिअं । (आर्यपुत्र ! किमेतदपरमाश्चर्यम् ।)

रामः—लक्ष्मण ! पश्य पश्य रूपपरिवर्तनं वनान्तरस्य ।

र्शन मायारूपं प्रतिपन्ना राक्षसा अचिरमेव स्वरूपं प्राप्नुवन्तीति भावः । मञ्जुभाषिणी वृत्तम् । तल्लक्षणम्=सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी ॥ १० ॥

असाधारणेति ॥ न साधारणम् असाधारणम्=अलौकिकम् सुखम् अर्थयते इति असाधारणसुखार्थी, नित्यानन्दान्वेषक इत्यर्थः ।

सिद्धार्थानामिति ॥ सिद्धः=प्राप्तः अर्थः=मोक्षरूपः परमपुरुषार्थः यैः ते सिद्धार्थाः तेषाम् लब्धपरमपुरुषार्थानाम् । प्रीतिलताकुसुमम्=प्रीतिः=प्रेम एव लता=वल्ली तस्याः कुसुमम्=कुसुमरूपेण विद्यमानमाभूषणम् ।

आर्य प्रसन्न हों । महर्षि की आज्ञा उपेक्षा-योग्य नहीं है । (पुनः राम को अंगूठी देते हैं)

राम—लक्ष्मण ! अलौकिक सुख के अभिलाषी ऋषिजनने कवच का क्या फल कहा है ?

लक्ष्मण—बाणों से हृदय-स्थान की रक्षा करता है ।

राम—यदि ऐसा ही है तो लाओ । मैं ऋषियों के स्नेहरूपी लता के फूल को ग्रहण करता हूँ ।

(चूड़ामणि लेकर और सीता के केशबन्ध में बांध कर अंगूठी को अपनी अंगुली में पहनते हैं)

सीता—(आश्चर्य से देखकर) आर्यपुत्र ! यह दूसरा आश्चर्य क्या है ?

राम—लक्ष्मण ! जंगल के रूप-परिवर्तन को देखो ।

लक्ष्मणः—आर्य ! पश्यामि ।

कस्य किन्नु कुतस्त्यन्नु केनेदं दीप्यते वनम् ।
अनभ्रविद्युदापातपरीतैरिव पादपैः ॥ ११ ॥

(नेपथ्ये मुर्मुराशब्दः क्रियते । सर्वे ससम्भ्रमं विलोकयन्ति)

रामः—

पथि जलमुचामुत्सर्पिण्या रुचा गतिविभ्रमा-
दनिमिषपतेरातन्वानं शरासनमद्भुतम् ।
रजतचरणं रत्नग्रीवं हिरण्मयविग्रहं
तरुणि ! तरुणं वीक्षस्वारान्मृगं मृगलोचने ! ॥ १२ ॥

अथ लक्ष्मणः परिवर्त्तितरूपं रामदर्शितं वनं समर्थयन्नाह—कस्य कि इति ।। अनभ्रविद्युदापातपरीतैः इव पादपैः (सहितम्) इदम् वनम् कस्य कुतस्त्यम् किन्नु दीप्यते इत्यन्वयः । अनभ्रविद्युदापातपरीतैरिव = अनभ्रविद्युत घनरहितचपलायाः आपातः = सम्पातः तेन परीतैरिव = अनुलिप्तैरिव, पादपैः महीरुहैः (सहितम्) इदम् = पुरोदृश्यमानम् , वनम् = विपिनम् , कस्य = दा भ्रिसौदामिन्यादीनामन्यतमस्य कतमस्य, केन = तेजोविशेषेण, कुतस्त्यम् = दिशमुद्दिश्य, किन्नु = कथं नु, दीप्यते = प्रकाशयते । अनुष्टब् वृत्तम् । उत्प्रे लंकारः ॥ ११ ॥

अथ रामो नेपथ्ये मुर्मुराशब्दमाकर्ण्य तदनुसारेण दृष्टमृगः सीतायै तं गु वर्णनपूर्वकं दर्शयति—पथि जलमुचामिति ॥ तरुणि ! मृगलोचने ! गतिविभ्रम जलमुचाम् पथि उत्सर्पिण्या रुचा अनिमिषपतेः अद्भुतम् शरासनम् आतन्वा रजतचरणम् रत्नग्रीवम् हिरण्मयविग्रहम् आरात् तरुणम् मृगम् वीक्षस्व इ न्वयः । तरुणि ! पूर्णयौवने !, मृगलोचने ! = हरिणनयने !, गतिविभ्रमात् = गम

लक्ष्मण—आर्य देखता हूँ ।

विना मेघ के बिजलीपात से मानो अनुलिप्त वृक्षों से युक्त यह जंगल किस किसदिशा के, किस तेज विशेष से प्रकाशित हो रहा है ? ॥ ११ ॥

(नेपथ्य में मुर्मुर शब्द होता है सभी आश्चर्य से देखते हैं)

राम—हे नवयौवने । दूरवर्ती युवा मृग को देखो । यह मृग अपनी चाल के विल से मेघमार्ग में ऊपर उठनेवाली सफेद, श्याम और रक्तवर्ण की कान्ति से इन्द्र विलक्षण धनुष की आकृति का विस्तार करता हुआ चाँदी के चरण, रत्न की गर्द और सोने का शरीर वाला है ॥ १२ ॥

सीता—अज्जउत्त! अब्भुददंसणबहुरसो खु वणणिवासो। (आर्यपुत्र! अद्भुतदर्शनबहुरसः खलु वननिवासः।)

रामः—देवि! किमस्मिन्नस्त्यादरः।

सीता—अज्जउत्त! जस्स उज्जाणे अअं मिओ पडिवसदि, तस्स किं अपराहि इद्धीहि। (आर्यपुत्र! यस्योद्यानेऽयं मृगः प्रतिवसति, तस्य किमपराभिः ऋद्धिभिः।)

रामः—ममाप्येष एव मनोरथः।

सीता—अवि णाम अअं मिओ अज्जउत्तहत्थब्भासं गच्छे। (अपि नामायं मृगः आर्यपुत्रहस्ताभ्याशं गच्छेत्।)

रामः—यदि सजीवो न गृह्येत, ततः सावयवेनास्य चर्मणा वा रत्नातिशयभाजनं भविष्यामः।

लक्ष्मणः—आर्य! अपि नासेयं राक्षसी माया न स्यात्।

विलासात्, जलमुचाम्=मेघानाम्, पथि=मार्गे (अन्तरिक्षे इत्यर्थः) उत्सर्पिण्या=ऊर्ध्वं प्रसरन्त्या, रुचा=कान्त्या, अनिमिषपतेः=इन्द्रस्य, अद्भुतम्=विलक्षणम्, शरासनम्=धनुः, आतन्वानम् (मृगं वीक्षस्व इत्यग्रिमेणान्वयः)=विडम्बयन्तम्, रजतचरणम्=रजतमयौ=रूप्यमयौ, चरणौ=पादौ यस्य तम् रूप्यमयपादम्, रत्नग्रीवम्=अत्र रत्नशब्देन मरकतरत्नमभिप्रेतम्, अतः मरकतमयी ग्रीवा यस्य तम्=मरकतमयग्रीवम्, हिरण्मयविग्रहम्=सुवर्णमयदेहम्, आरात्=दूरे स्थितम्, तरुणम्=युवानम् यौवनोदयेन रमणीयदर्शनमित्यर्थः, मृगम्=हरिणम्, वीक्षस्व=पश्य। ईदृशसुन्दरसुवर्णमृगदर्शने त्वयाऽऽदरो विधेयः, रमणीयवस्तुनः सर्वथा दर्शनीयत्वादिति भावः। हरिणी वृत्तम् ॥ १२ ॥

सीता—आर्यपुत्र! वनवास अनेक आश्चर्यजनक रसों से परिपूर्ण है।

राम—देवि! इसमें अधिक आदर क्या है?

सीता—आर्यपुत्र! जिसके उद्यान में इस प्रकार का मृग रहता है उसको अन्य समृद्धियों से क्या प्रयोजन?

राम—हमारी भी यही अभिलाषा है।

सीता—यदि यह मृग आर्यपुत्र के हाथ का लक्ष्य होता?

राम—यदि यह जीवित नहीं पकड़ा गया तो इसके अङ्ग अथवा चर्म से हम लोग बहुमूल्य रत्न का पात्र बनेंगे।

लक्ष्मण—आर्य! यदि यह राक्षसी माया न हो।

रामः—अस्मिन्नुभयथापि यत्नः कर्तव्यः ।

परमार्थमृगोऽयं चेत् सिद्ध्यत्यस्या मनोरथः ।
परीक्ष्यो व्यक्तमस्माभिरत्र मायामृगो यदि ॥ १३ ॥

लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्यः । (प्रस्थातुमिच्छति)

रामः—तिष्ठ, ननु रक्षणं देव्यास्तवाधिकारः । अपि च,

अभिगम्य मुनीन् वने वने विनिवृत्तस्य विदूरवर्तिनः ।
श्रमवारि ललाटमण्डले तव बध्नाति कुमार ! जालकम् ॥१४

रामो मृगं प्रति लक्ष्मणस्य राक्षसकृतमायाशङ्कां समालोचयन्नाह—परमार्थ इति ॥ अयम् परमार्थमृगः चेत्, अस्याः मनोरथः सिद्ध्यति, यदि मायामृ (तर्हि) अत्र अस्माभिः व्यक्तम् परीक्ष्यः (मृग इति शेषः) इत्यन्वयः । अयम् पुरोदृश्यमानः, परमार्थमृगः = वास्तविकहरिणः, चेत् = यदि, (तदा) अस्याः सीतायाः, मनोरथः = अभिलाषः, सिद्ध्यति = सफलीभवति, यदि मायामृगः कपटहरिणः (तर्हि) अत्र = अस्मिन् विषये, अस्माभिः, व्यक्तम् = स्पष्टत परीक्ष्यः = परीक्षाविषयीकर्तव्यः, तत्त्वतः ज्ञातव्यः कोऽयमिति, उभयथाऽप्यनु णीय एवेति भावः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ १३ ॥

अथ रामो मायामृगग्रहणार्थमुद्यतं लक्ष्मणं निवारयन्नाह—अभिगम्येति ॥

कुमार ! विदूरवर्त्तिनः मुनीन् वने वने अभिगम्य विनिवृत्तस्य तव लल मण्डले श्रमवारि जालकम् बध्नाति, इत्यन्वयः । कुमार ! = वत्स, विदूरवर्त्तिनः इतोऽत्यन्तं दूरे वर्त्तमानान्, मुनीन् = तपोधनान्, वने वने = प्रतिवनम्, अभि गम्य = प्रत्येकं प्राप्य, (सर्वेषां समीपं क्रमेण गत्वेति यावत्) विनिवृत्तस्य = प वृत्तस्य, तव = लक्ष्मणस्य, ललाटमण्डले = भालप्रदेशे, श्रमवारि = स्वेदजल (साम्प्रतम्) जालकम् = कोरकम्, बिन्दुधारामित्यर्थः, बध्नाति = करोति तव भालप्रदेशे मार्गश्रमजनिताः स्वेदबिन्दवोऽधुनापि कोरकाऽऽकारेण प

राम—इसमें दोनों तरह से प्रयत्न करना चाहिये ।

यदि यह वास्तविक मृग है तो इस सीता की अभिलाषा पूर्ण होती हैं । यदि म मृग है तो हम लोगों को स्पष्ट रूप से इसकी जाँच करनी चाहिये ॥ १३ ॥

लक्ष्मण—आर्य प्रसन्न हों । (प्रस्थान करना चाहते हैं)

राम—ठहरो, सीता की रक्षा का उत्तरदायित्व तुम पर है । और भी—

दूर दूर रहने वाले ऋषियों के समीप जाकर वहाँ से लौटे तुम्हारे ललाट प्रदेश पसीना जालक बांध रहा है । (अर्थात् तुम्हारे ललाट में गोलाकार में विद्यमान पसीनें बूँदें तुम्हारी थकावट का प्रतीक हैं ।) ॥ १४ ॥

लक्ष्मणः—भवतु, ननु यथोक्तानुष्ठानं गुरुजनानुवृत्तिः।

रामः—लक्ष्मण! धनुस्तावदानय, यावदयं न दूरीभवति।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः। (धनुरुपनयति)

रामः—(धनुर्गृहीत्वा निष्क्रान्तः)

लक्ष्मणः—हन्त! न स्वन्तोऽयमारम्भः। अयमयं मृगः,

मरतकमयीं ग्रीवां साचीकरोति पुनः पुनः
तृणमभिनवं जिह्वाग्रेण स्पृशन्निव धावति।
भ्रमति परितो वृक्षानुच्चैरधोऽपि च दृश्यते
नमयति धनुः कोपादार्ये तिरोभवति स्थले॥ १५॥

द्यन्ते, अतस्त्वास्मृगग्रहणकर्मणि न क्लेशयामीत्यर्थः। सुन्दरीवृत्तम्॥ १४॥

अथ लक्ष्मणो धनुर्गृहीत्वा मायामृगमनुसरन्तं रामं विलोक्य सविषादमाह—
तेति॥ न स्वन्तः = न विद्यते सु = शोभनः अन्तः = परिणामः यस्येति विग्रहः।
लक्ष्मणो मायामृगस्य चेष्टाविशेषान् प्रदर्शयति—न तकमयीमिति। (अयम्मृगः,
ति उपरिष्टाद् ग्राह्यम्) मरतकमयीम् ग्रीवाम् पुनः पुनः साचीकरोति, अभि·
वम् तृणम् जिह्वाग्रेण स्पृशन् इव धावति, आर्ये (ग्रहणार्थं प्रयतमाने) वृक्षान्
रितो भ्रमति, (आर्ये ग्रहणार्थं प्रयतमाने) अधोऽपि उच्चैः दृश्यते, आर्ये कोपात्
नुः नमयति (सति) स्थले तिरोभवति इत्यन्वयः। अयम्मृगः, मरतकमयीम् =
कतमणिनिर्मिताम्, ग्रीवाम् = कन्धराम्, पुनः पुनः = वारम्वारम्, साची·
ोति = तिर्यक्करोति, अनुगच्छन्तम् आर्यं पुनः पुनरीक्षते इति भावः, अभि·
म् = नूतनम्, तृणम् = घासम्, जिह्वाग्रेण = रसनाग्रभागेन, स्पृशन् इव = स्पर्शं
न् इव, धावति = त्वरितं गच्छति, आर्ये ग्रहणार्थं प्रयतमाने सति वृक्षान् =
दपान्, परितः = सर्वतः, भ्रमति = भ्रमणं करोति, अधःस्थितस्य अस्य मृगस्य

लक्ष्मण—अच्छा, कथित आदेश का पालन गुरुजनों का अनुकरण है।

राम—लक्ष्मण! तब तक धनुष लाओ जब तक यह मृग दूर नहीं होता है।

लक्ष्मण—आर्य की जो आज्ञा। (धनुष लाकर देते हैं)

राम—(धनुष लेकर जाते हैं)

लक्ष्मण—दुःख है, यह आरम्भ शुभ परिणामदायक नहीं है। यह मृग—

मरकत मणि से निर्मित गर्दन को बार बार टेढ़ा करता है। नये घास को जिह्वा छूता हुआ सा दौड़ता है। वृक्षों के चारों ओर घूमता है। ऊँचे और नीचे स्थानों में दिखाई पड़ता है। क्रोध से आर्य के धनुष चढ़ाने पर छिप जाता है॥ १५॥

हा ! हन्त चक्षुषोर्न गतिस्ततः परम् ।

सीता—हं णअणगोअरं अदिक्कन्दो अज्जउत्तो । (हं नयनगोचरम् अतिक्रान्तः आर्यपुत्रः ।) [ततः प्रविशति रावणो रथेन शूर्पणखया सूतेन च]

रावणः—

मयि जीवति मानुषादवाप्ता विपदं मे सहजा शुचं जहातु ।
अपमृद्य पतिं हरामि सीतां तुरगान् सूत ! जवेन चोदय त्वम् ॥१६॥

ग्रहणार्थं प्रयतमाने आर्ये उच्चैः=उपरिभागे, दृश्यते=अवलोक्यते, ग्रहणे प्रया... वैफल्यजनितात् कोपात्=रोषात्, आर्ये तस्य निग्रहार्थं धनुः=शरासनम्, ... यति (सति)=सन्दधाने सति, धनुषि शरसन्धाने कृते सति, स्थले=भू... तिरोभवति=तत्क्षणे छन्नो भवति । विलक्षणोऽयं मृगः स्वचापल्यात् स्व... विविधाश्चेष्टाः प्रदर्शयन्नार्यं सर्वथा विस्मयपथं समानीय क्लेशयतीति भा... हरिणीवृत्तम् । स्वभावोक्त्यलङ्कारः ॥ १५ ॥

अथ रावणः सीताहरणकार्ये स्वल्पमपि कालविलम्बमसहमानः सूतं स... रथचोदनाय नियुंक्ते—मयि जीवतीति ॥ सूत ! (एषा) मे सहजा मयि जी... मानुषात् विपदम् अवाप्ता, (एषा) शुचम् जहातु, पतिम् अपमृद्य सीताम् ह... (अहमिति शेषः) (अतः) त्वम् जवेन तुरगान् चोदय इत्यन्वयः । सूत ! सारथे !, (एषा) मे=मम, सहजा=साक्षात् सहोदरी, मयि जीवति=... विद्यमाने, मानुषात्=साधारणजनात्, विपदम्=कर्णनासिकच्छेदरूपां विपत्ति... अवाप्ता=प्राप्ता, साम्प्रतम् एषा प्रतिक्रियाविधानात् अपमानहेतुकाम् शुच... दुःखम्, जहातु=त्यजतु, प्रतिक्रियास्वरूपमाह—अपमृद्येति । पतिम्=स्वामिन... भर्त्तारं राममिति यावत्, अपमृद्य=संग्रामे निहत्य, सीताम्=एतन्नाम्नीं ... प्रियाम्, हरामि=हरणं करोमि, (अतः) त्वम्=सूतः, जवेन=वेगेन, तुरगा... अश्वान्, चोदय=प्रेरय । साधारणमानवेन रामेण मम सहोदरी कर्णनासि... दनद्वारा बलात्तिरस्कृता, तस्य भार्याऽपहरणद्वारा मयाऽपि तत्प्रतीकारोऽवश्यं... योऽतस्त्वयाऽपि वेगेन वाजिनः प्रेरयितव्या इति भावः । कालभारिणीवृत्तम् ।

ओह ! खेद, उसके बाद तो आँखों की गति भी नहीं है ।

सीता—अरे, आर्यपुत्र आँखों से ओझल हो गये ?

(उसके बाद रावण-रथ, शूर्पणखा और साथी के साथ प्रवेश करता है)

रावण—मेरे जीवित रहते मनुष्य से विपत्ति प्राप्त करने वाली मेरी बहन शो... दूर करे । पति को मार कर सीता का अपहरण करता हूँ । सूत ! तुम घोड़ों को... से बढ़ाओ ॥ १६ ॥

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (रथं चोदयति)

शूर्पणखा—अज्ज ! मा मा संरंभक्कमेण । कदत्थिदमहेन्दविक्कम- अज्जस्स कहं सो माणुसो विसओ भवे । जह उव्वेएण सा जीविअं परित्तजति तह सीदं हत्थे करिस्सामो । णं सा तस्स पाणा । (आर्य ! मा संरम्भक्रमेण । कदर्थितमहेन्द्रविक्रमस्यार्यस्य कथं स मानुषो विषयो भवेत् । द्वेगेन सा जीवितं न परित्यजति तथा सीतां हस्ते करिष्यामः । ननु सा प्राणाः ।)

सूतः—(आत्मगतम्) हताः स्त्रियः पापे कर्मणि पण्डितानतिशेरते ।

रावणः—(मुहूर्तं ध्यात्वा) युक्तमभिहितमनया । सा सीता नाम,

युधि सरभसं हत्वा रामं बलान्मयि गृह्णति
स्वयमनुचिता भर्तुः शोकादसून् न किमुज्झति ।

अथ रामेऽनुरक्तहृदया शूर्पणखा तं वशीकर्त्तुकामा निमित्तान्तरेण निषेधति— ! मा मेति ॥ संरम्भस्य=क्रोधस्य, क्रमः=प्राप्तिः, तेन संरम्भक्रमेण अलमित्यर्थः। र्थितमहेन्द्रविक्रमस्य = कदर्थितः = निन्दितः महेन्द्रस्य = वासवस्य विक्रमः = मः येन तस्य तिरस्कृतसुरेन्द्रपराक्रमस्य ।

अथ रावणः शूर्पणखाप्रतिपादितराम-वधनिषेधं समर्थयन्नाह—युधि सरभस- ॥ युधि सरभसम् रामम् हत्वा मयि बलात् सीताम् गृह्णति (सति) अनु- सा भर्तुः शोकात् स्वयम् असून् किं न उज्झति, अपि च त्रिदशविजय- ापात्रीकृताः मम बाहवः मनुजम् रामम् हन्तुम् किम् आयुधम् स्पृशन्ति ? वयः । युधि = संग्रामे, सरभसम् = सक्रोधम् , रामम् = सीतापतिम् , हत्वा = य, बलात् = हठात् , मयि = रावणे, सीताम् = जनकपुत्रीम् , गृह्णति = अप- सति (सा) भर्तुः = पत्युः, शोकात् = पतिहननजनितदुःखात् , अनुचिता=

सूत—दीर्घजीवी की जो आज्ञा । (रथ को बढ़ाता है)

शूर्पणखा—घबड़ाहट की कोई बात नहीं है । इन्द्र के पराक्रम को तिरस्कृत करने आर्य का भला वह मनुष्य कैसे विषय बन सकता है ? जिस तरह वह उद्वेग के अपने प्राणों को नहीं छोड़ती है उस तरह सीता को अपने वश में करूँगी । क्योंकि सका प्राण है ।

सूत—(मन ही मन) निराश स्त्रियाँ विद्वानों को भी पाप कर्म में प्रवृत्त कराती हैं ।

रावण—(एक क्षण ध्यान करके) इसने ठीक कहा । वह सीता—संग्राम में क्रोध म को मार कर बलात् मेरे ग्रहण करने पर पति के शोक से मुझको बिना पहचाने

अपि च मनुजं हन्तुं रामं स्पृशन्ति किमायुधं
त्रिदशविजयश्लाघापात्रीकृता मम बाहवः ॥ १७ ॥

सूतः—आयुष्मन् !

तनुभिः सवेपथुभिरश्रुवर्षिभि-
र्नयनैर्मनोभिरनवस्थितैरमी ।
अतिशायिनोऽपि हरितां स्खलन्ति ते
रथवाजिनो नभसि हेतुना विना ॥ १८ ॥

असञ्जातमत्परिचया, स्वयमेव = आत्मनैव, असून् = प्राणान्, किं नोज्झति ? = न त्यजति, अर्थात् उज्झिष्यत्येवेति काक्वा व्यज्यते । अपिच=किञ्च, त्रिदशविजयश्लाघापात्रीकृताः=देवविजयप्रशंसाभाजनीभूताः, मम =विदितविक्रमस्य लङ्कापतेः, बाहवः=भुजाः, मनुजम्=मानवम्, रामम्=रामाख्यं जनम्, हन्तुम्=विनाशयितुम्, किम्, आयुधम् = शस्त्रम्, स्पृशन्ति ? = गृह्णन्ति, न स्पृशन्तीत्यर्थः संग्रामे रामस्य हननात् जीवितसीताहरणमेव शङ्कितम्, अयञ्च अमरविजयप्रशंसाभाजनीभूता मम बाहवो मनुष्ययोनिं भ्रष्टराज्यं रामं हन्तुमायुधग्रहणे नैवो[...]सन्ति अत उभयथापि रामवधो नोचित इति भावः । हरिणीवृत्तम् ॥ १७ ॥

अथ सूतोऽनिष्टसूचकानालोक्य सीताहरणाद्रावणं निवर्त्तयितुं निवेदयति— तनुभिरिति ॥ आयुष्मन् ! ते अमी हरिताम् अतिशायिनः अपि रथवाजिनः हेतुं विना सवेपथुभिः तनुभिः, अश्रुवर्षिभिः नयनैः, अनवस्थितैः मनोभिः नभसि स्खलन्ति इत्यन्वयः । आयुष्मन् ! = दीर्घजीविन्, ते = भवतः, अमी = [...] हरिताम् = सूर्याश्वानाम्, अतिशायिनोऽपि = अश्वगुणैः तानतिक्रम्य वर्तमाना अपि, रथवाजिनः=स्यन्दननियुक्ततुरगाः, हेतुना विना=कारणेन विना, सवेपथुभिः= सकम्पैः, तनुभिः = शरीरावयवैः, अश्रुवर्षिभिः = नयनजलस्रवद्भिः, नयनैः = लोचनैः, अनवस्थितैः = अस्थिरैः, मनोभिः = चेतोभिः (उपलक्षिता भूत्वा) नभसि = अन्तरिक्षे, समतलेऽप्याकाशमार्गे इत्यर्थः, स्खलन्ति = परिपतन्ति, कारणाभावेऽपि तवाश्वानां स्खलनमवश्यमनिष्टसूचकमस्तीति भावः । मञ्जुभाषिणी वृत्तम् । विभावनाऽलङ्कारः ॥ १८ ॥

क्या अपने प्राणों को नहीं त्याग देगी ? और भी, देव-विजय की अभिलाषिणी [...] भुजायें मनुष्य राम को मारने के लिए क्या शस्त्र को छू सकती हैं ॥ १७ ॥

सूत—आयुष्मन् ! सूर्य के अश्वों को भी तिरस्कृत करनेवाले आप के रथ के [...] काँपते हुए शरीर से, आंसू बरसाने वाले नेत्रों से, चञ्चल मनों से अकारण ही आका[श में] लड़खड़ा रहे हैं ॥ १८ ॥

रावणः—सूत ! यातव्या रामपर्णशाला न कैलासः।

सूतः—आयुष्मन्नधिकारनिरपराद्धोऽहम् , अतः परमायुष्मानेव प्रमाणम्। एष मुञ्चामि (आत्मगतम्) प्रथमं साध्वाचारं पश्चात् प्रग्रहम्। (चोदयति। सर्वे रथवेगं निरूपयन्ति) [प्रकाशम्] आयुष्मन्! पश्यतु रथवेगम्—

तोयोद्गारि कदम्बकं जलमुचामायाममापद्यते
घण्टाः स्तम्भितश्रृङ्खलाश्चपलतामुज्झन्ति मूकैर्मुखैः।

अधिकारनिरपराद्धोऽहमिति ॥ अनिष्टज्ञापनमात्रम्ममाधिकारः, कृतञ्च मया तदिति अधिकारे निरपराद्धः। विज्ञापनानन्तरं प्रवर्त्तने निवर्त्तने वा भवत एव अधिकारो न ममेति भावः। साध्वाचारम् = साधूनाम् = शिष्टानाम् आचारः = आचरणं व्यवहारो वा तम् साध्वाचारम्। अथवा साधुः = शोभनः आचारः इति साध्वाचारः तम्। अत्र पापकर्मानुष्ठाने रावणस्याऽसाहाय्यमेव साध्वाचारः, स इदानीं तस्य सहायभूतेन मया परित्यज्यते इति गूढाशयः।

सूतो रथवेगं रावणाय निवेदयति—तोयोद्गारि इति ॥ जलमुचाम् कदम्बकम् तोयोद्गारि (भूत्वा) आयामम् आपद्यते (अश्वानाम्) स्तम्भितश्रृङ्खलाः घण्टाः मूकैः मुखैः चपलताम् उज्झन्ति, वायुना संस्तम्भितम् इदम् चामरम् कर्णान्ते जपति इव, पुरतः यातव्यम् इच्छावशात् तूर्णम् त्वाम् उपसर्पति इत्यन्वयः, जलमुचाम् = पयोगर्भाणाम् , कदम्बकम् = वृन्दम् समूह इत्यर्थः, तोयोद्गारि = जलवर्षि, (भूत्वा) आयामम् = दैर्घ्यम् , विपुलतामित्यर्थः, आपद्यते = प्राप्नोति (तथा अश्वानाम्) स्तम्भितश्रृङ्खलाः = रथवेगेन स्तम्भिताः = स्तब्धीकृताः आधारभूताः श्रृङ्खलाः = निगडाः यासाम् ताः

रावण—सूत ! राम का आश्रम जाना है, कैलाश नहीं।

सूत—हम अपने अधिकार में निर्दोष हैं, इसके बाद आप जानें (अर्थात् हमने अनिष्ट की सूचना दे दी, अब आपकी जैसी इच्छा।) यह छोड़ता हूँ। (मन ही मन) पहले नैतिक आचरण को, बाद में घोड़े की लगाम को (घोड़े को प्रेरित करता है, सभी रथ के वेग को देखते हैं) [प्रकट] आयुष्मन् ! रथ के वेग को देखिये। जलवर्षी बादलों का समूह लम्बाई को प्राप्त कर रहा है। घोड़ों की गर्दन में आभूषण रूप में बँधी घंटियां शब्दरहित मुखों से चञ्चलता को छोड़ रही है। वायु से सम्यक् स्तब्ध यह चामर कान के अग्रभाग में कुछ कह सा रहा है।

कर्णान्ते जपतीव चामरमिदं संस्तम्भितं वायुना
तूर्णं त्वामुपसर्पतीव पुरतो यातव्यमिच्छावशात् ॥ १९ ॥

शूर्पणखा—सच्चं एव्व सूदो मंतेदि । अज्ज ! आअदम्ह रामतपोवणं । (सत्यमेव सूतो मन्त्रयते । आर्य ! आगताः स्मो रामतपोवनम् ।)

रावणः—क च ते व्यसनमूलस्य रामस्य प्राणसमा ।

शूर्पणखा—णं एसा सा । (नन्वेषा सा ।) [अङ्गुल्या निर्दिशति]

रावणः—(सीतां विलोक्य सविस्मयम्) इयं सा त्रैलोक्यसुन्दरी सीता नाम । अहो ! चित्रमहो ! चित्रम् ।

इन्द्राणीमहमप्सरोभिरनयं कारागृहे गण्यतां
संहारो जयता दिशो दश मया स्त्रीणां कृतः पुष्पके ।

घण्टाः = कण्ठालङ्कारभूताः घटिकाः, मूकैः उपरतस्वनैः, मुखैः = आननैः चपलताम् = कम्पनम्, उज्झन्ति = त्यजन्ति, वायुना = पवनेन, संस्तम्भितं सम्यक्स्थिरीभूतम्, कर्णान्ते = श्रोत्रसमीपे, जपति इव = किमपि रहस्य मन्त्रयते इव, तथा, पुरतः = अग्रतः, यातव्यम् = गन्तव्यस्थानम्, इच्छावशात् अभिलाषाधीनात्, तूर्णम् = शीघ्रम्, त्वाम् = रावणम्, उपसर्पति इव = समीपमागच्छति इव । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । क्रियोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ॥ १९ ॥

अथ रावणः सीतां दृष्ट्वा तस्यां त्रैलोक्यसुन्दरीत्वमुपपादयति—इन्द्राणीमिति अहम् अप्सरोभिः (सह) इन्द्राणीम् कारागृहे गण्यताम् अनयम्, दश दिशो जयता

आपका गन्तव्य स्थान स्वेच्छा से शीघ्र आपके समीप मानों पहले से ही पहुँच रहा है ॥ १९ ॥

शूर्पणखा—सारथी सच ही कह रहा है । आर्य ! हम लोग राम के तपोवन में आ गये हैं ।

रावण—और तुम्हारे दुःख का कारण राम का प्राणभूत वह (सीता) कहां है ?

शूर्पणखा—वह यह है । (अङ्गुली से दिखाती है)

रावण—(सीता को देख कर आश्चर्य से)

वही वह त्रिलोकसुन्दरी सीता है ? अहा, आश्चर्य है अहो, आश्चर्य है ।

वन्दीगृह में अप्सराओं के साथ हमने इन्द्राणी (शची) को दर्शन का विषय बनाया दशो दिशाओं को जीतते हुये हमने पुष्पक विमान में स्त्रियों का अपहरण किया

कैलासोद्धरणेऽपि वेपथुमतीमद्राक्षमद्रेः सुतां
दृष्टं तासु न रूपमीदृशमहो ! चक्षुश्चिरात् सार्थकम् ॥२०॥

(सङ्कल्पपर्याकुलो भूत्वा) सम्प्रति हि,

पानाद् रूपरसायनस्य बहुधा सन्तर्पयन्ती मनो
जाता नेत्रपरम्परा फलवती धीरेतरेयं मम ।

मया स्त्रीणाम् पुष्पके संहारः कृतः, कैलासोद्धरणे अद्रेः वेपथुमतीम् सुताम् अपि अद्राक्षम् , तासु ईदृशम् रूपम् न दृष्टम् , अहो, चिरात् चक्षुः सार्थकम् (जातमिति शेषः) इत्यन्वयः । अहम् = रावणः, अप्सरोभिः = स्ववेश्याभिः, सह, इन्द्राणीम् = इन्द्रपत्नीम् शचीम् , कारागृहे = बन्धनालये, गण्यताम् = दृश्यताम् , अनयम् = आनीतवान् , दशदिशः = भुवनमण्डलानि, जयता = विजयं कुर्वता, मया = रावणेन, स्त्रीणाम् = रमणीनाम् , पुष्पके=पुष्पकविमाने, संहारः = सम्भूय हरणम् , कृतः = सम्पादितः, कैलासोद्धरणे = कैलासनामधेयनगाधिराजोत्थापनसमये, अद्रेः = पर्वतस्य, वेपथुमतीम् = सकम्पाम् , सुताम् = तनयाम् , जगद्वन्द्यां पार्वतीमित्यर्थः, अद्राक्षम् = अपश्यम् , तासु = पूर्वोक्तासु त्रैलोक्यनिवासिनीषु वनितासु, ईदृशं रूपम् = एतादृक् सौन्दर्यविशिष्टं स्वरूपम् , न दृष्टम् = नावलोकितम् , (मयेति शेषः) अहो, इति विस्मयमिश्रितप्रसन्नतासूचकमव्ययम् , चक्षुः = नयनम् , चिरात् = बहुकालानन्तरम् , सार्थकम् = सफलम् , जातमिति शेषः । जन्मकालत एवेदृशरूपदर्शनाभावाल्लोचनस्य साफल्यमिदानीमवाप्तमिति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २० ॥

अभिलाषानन्तरं कामिनां संकल्पो जायतेऽतो रावणः संकल्पव्याकुलो भूत्वा सीताशरीरालिङ्गनेन स्वभुजानां सौख्यकल्पनां करोति—पानादिति ॥ रूपरसायनस्य बहुधा पानात् मनः सन्तर्पयन्ती मम इयम् धीरतरा नेत्रपरम्परा

कैलास पर्वत को उठाने के समय कांपती हुई पार्वती को भी हमने देखा। किन्तु उन सबों में इस प्रकार का सुन्दर रूप नहीं देखा। अहो, बहुत दिनों पर नेत्र सार्थक हुआ है ॥ २० ॥

(संकल्प से व्यग्र होकर) इस समय तो—सौन्दर्य रसायन के अनेक प्रकार से पीने से मन को परितृप्त करती हुई हमारी यह नयनपंक्ति सफल हुई है। किसलय के

अस्याः पल्लवकोमलां तनुमिमामालिङ्ग्य कृत्स्नामहं
निर्वेक्ष्यामि कदा नु विंशतिममून् वीरव्रणाङ्कान् भुजान् ॥२१

शूर्पणखा—(आत्मगतम्) फलिदो मे कामो। (फलितो मे कामः।)
रावणः—(लक्ष्मणं विलोक्य) अयमपरः कः।

कवचिततनुः पृष्ठावापी दृढज्यशरासनो

फलवती जाता, अहम् अस्याः पल्लवकोमलाम्, कृत्स्नाम् तनुम् आलिङ्ग्य वीरव्रणाङ्कान् विंशतिभुजान् कदा नु निर्वेक्ष्यामि इत्यन्वयः। रूपरसायनस्य रूपम् = सौन्दर्यम् तदेव रसायनम् = रससारः तस्य, बहुधा = बहुकृत्वः, पानात् आस्वादनात्, मनः = अन्तःकरणम्, सन्तर्पयन्ती = नितरां सन्तोषं प्रयच्छन्ती मम = रावणस्य, इयम्, धीरतरा = स्थिरतरा, नेत्रपरम्परा = लोचनसन्तति फलवती = सफला, जाता = अभूत्, बहूनां लोचनानां सकृदेव लाभफलं म प्राप्तमित्यर्थः। अहम् = रावणः, अस्याः = सीतायाः, पल्लवकोमलाम् किसलयवत्सुकुमाराम्, कृत्स्नाम् = सम्पूर्णाम्, तनुम् = देहलताम्, आलिङ्ग्य परिरभ्य, वीरव्रणाङ्कान् = शूरव्रणचिह्नितान्, अमून् = एतान्, विंशतिभुजान् विंशतिसंख्यकबाहून्, कदा नु = कस्मिन् समये, निर्वेक्ष्यामि = सुखयिष्यामि एतादृशः कः शोभनकालो यमवलम्ब्य त्रैलोक्यसुन्दरी इयम् मदालिङ्गनविष भविष्यतीति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। लुप्तोपमाऽलङ्कारः ॥ २१ ॥

अथ रावणो लक्ष्मणं दृष्ट्वा विकल्पयति—कवचिततनुरिति ॥ कवचिततनुः पृ वापी दृढज्यशरासनः सीताम् अभितः निभृतम् तिष्ठन् अयम् कतमः युवा, इह (अस्याग्रजः) रामः शरैः ताटकाम् शमयाञ्चक्रे किल, अयम् त्वाम् प्रति अ फलम् प्राप्तः, अहो, बलिनो नराः इत्यन्वयः। कवचिततनुः = कवचिताः सञ्जातकवचा, अथवा कवचेन आवृता तनुः = देहः यस्य, कवचावृतशरीर पृष्ठावापी = आवपन्ति अस्मिन् शरा इति आवापः = इषुधिः, पृष्ठे आवापः अ

समान कोमल इस रमणी के सम्पूर्ण अङ्ग का आलिङ्गन करके मैं वीरों के घाव से चिह्नि अपनी इन बीस भुजाओं को कब सुख पहुँचाऊँगा ? ॥ २१ ॥

शूर्पणखा—हमारी अभिलाषा सफल हुई !

रावण—(लक्ष्मण को देख कर) यह दूसरा कौन है ?

शरीर में कवच, पीठ पर तरकस और मजबूत प्रत्यञ्चा से युक्त धनुष वाला, एका में सीता के चारों ओर विद्यमान यह युवक कौन है ?

निभृतमभितस्तिष्ठन् सीतामयं कतमो युवा ।

शूर्पणखा—(कर्णे) एव्वं विअ । (एवमिव ।)

रावणः—

हहह ! शमयाञ्चक्रे रामः शरैः किल ताटका-
मसिफलमयं प्राप्तस्त्वां प्रत्यहो ! बलिनो नराः ॥ २२ ॥

(नेपथ्ये मर्मराशब्दः क्रियते)

(नेपथ्ये) अहो ! जवविशेषः ।

अस्य इति पृष्ठावापी = इषुधिसन्नद्धपृष्ठः, दृढज्यशरासनः = दृढा = कठिना ज्या = मौर्वी यस्य तत्तथाभूतम् शरासनम् = धनुः यस्य = सुदृढमौर्वीधनुष्कः, सीताम् = जानकीम् , अभितः = समीपे, निभृतं तिष्ठन् = एकान्तभावेन वर्त्तमानः, अयं कतमः=कः, युवा=तरुणः, अस्तीति शेषः । वीरवेषं परिकल्प्य रामप्रियां रक्षन् कोऽयं युवेति वितर्कः । शूर्पणखामुखाल्लक्ष्मणोऽयमिति ज्ञात्वा सोपहासमाह—हहह इति । हहह इति अपहाससूचकमव्ययम्, तच्चात्राऽसूयाजन्यम्, रामः=अस्याग्रजः, पुरा=अतः पूर्वम् , शरः=बहुभिः वाणैः, ताटकाम्=एतन्नाम्नीमासन्नमरणां वृद्धां राक्षसीम् , शमयाञ्चक्रे किल = हतवान् किल, अयम् = लक्ष्मणः, त्वाम्प्रति = भवतीम्प्रति, असिफलम् = कर्णनासिकच्छेदनरूपं खड्गधारणफलम् , प्राप्तः = लब्धवान् , अहो बलिनो नराः = अहो पराक्रमशालिनो मानुषाः, अत्र काका उभयोः स्त्रीगोचरपराक्रमयोर्दौर्बल्यमेव व्यज्यते । हरिणीवृत्तम् । व्याजस्तुतिरलङ्कारः ॥ २२ ॥

शूर्पणखा—(कान में) यह (लक्ष्मण) है ।

रावण—हहह, राम ने अनेक बाणों के प्रहार से ताटका को मारा । इसने तुम्हारे प्रति अपने तलवार को सफल बनाया । अहो, मनुष्य बलवान् हैं । (अर्थात् रामने वृद्धा राक्षसी का प्राणान्त अनेक बाणों के प्रहार से किया था और इस लक्ष्मण ने अपनी तलवार से तुझ अबला के नाक-कान को काट लिया है अतः मनुष्यों की वीरता उपहास के योग्य है । वे वीर नहीं, कायर हैं जो स्त्रियों पर शस्त्र उठाते हैं) ॥ २२ ॥

(नेपथ्य में मर्मरा शब्द होता है)

(नेपथ्य में) अहो, अत्यन्त वेग है ।

सीता—अज्ज वि दाव अज्जउत्तेण अणुगच्छीअदि सो मिओ।
(अद्यापि तावदार्यपुत्रेण अनुगम्यते स मृगः ।)

रावणः—कस्यायं स्वरः ।

शूर्पणखा—अज्ज ! तस्स रामस्स । (आर्य ! तस्य रामस्य ।)

रावणः—(परावृत्यावलोक्य) अयं तपस्वी रामः । (इति मोहमुपगतः)

सूतः—(आत्मगतम्) सत्यं मारीचवचः । रामो नाम,

न पुमान् पुण्डरीकाक्षो न च मुग्धेन्दुशेखरः ।
आविर्भूतमयोध्यायामेकं रक्षोघ्नमौषधम् ॥ २३ ॥

इति ।

रावणः—(सूतं विलोक्य) सूत ! भीत इव त्वमाकारेण ।

अथ सूतो रामं दृष्ट्वा मारीचवचः सत्यं मन्यमानस्तस्य वचनप्रकारं दर्शयति—न पुमानिति ॥ रामः न पुमान्, न पुण्डरीकाक्षः, न मुग्धेन्दुशेखरः, (अपितु) अयोध्यायाम् एकम् रक्षोघ्नम् औषधम् आविर्भूतम् इत्यन्वयः । रामः = मनुष्यरूपेण वर्त्तमानो दशरथसुतः, न पुमान्=न मनुष्यः, न पुण्डरीकाक्षः=न नारायणः, न मुग्धेन्दुशेखरः = न शङ्करः, (अपितु) अयोध्यायाम् = एतन्नाम्न्यां नगर्याम्, एकम्, रक्षोघ्नम् = राक्षसविनाशकम्, औषधम् = भेषजम्, आविर्भूतम् = समुत्पन्नम् । लोके रामो नाम देवो विष्णुः शङ्करो वाऽवतीर्ण इति प्रसिद्धम् । अहं तु तं राक्षसकुलविनाशहेतुकमौषधविशेषम्मन्ये इति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् । अपह्नुत्यलङ्कारः ॥ २३ ॥

सीता—अभी भी आर्यपुत्र उस मृग का पीछा कर रहे हैं ।

रावण—यह किसकी आवाज है ?

शूर्पणखा—आर्य ! उस राम की ।

रावण—(लौट कर और देखकर) यह तपस्वी राम है ।
(मुग्ध हो जाता है)

सूत—(मन ही मन) मारीच का कहना ठीक है ।

न तो कमलनयन विष्णु भगवान् हैं, और न चन्द्रशेखर शंकर ही । यह तो अयोध्या में राक्षसों का संहारक एक औषध उत्पन्न हुआ है ॥ २३ ॥

रावण—(सारथी को देखकर) सूत ! आकृति से तुम डरे हुये मालूम पड़ते हो ?

सूतः—आयुष्मन् ! सत्यं भीत एवाहम् । सम्प्रति वयं मनुष्याः रामो राक्षस इव ।

शूर्पणखा—अज्ज ! इअं से आइदि आहरणेण जोलदा कहं विअ सोहदि । (आर्य ! इयमस्या आकृतिराभरणेन ज्वलता कथमिव शोभते ।)

रावणः—किमाभरणैरस्याः । पश्य—

यस्य नैसर्गिकी शोभा तन्न संस्कारमर्हति ।
कः कलां शशिनो मार्ष्टि कौस्तुभः केन रज्यते ॥ २४ ॥

सम्प्रति वयमिति ॥ मनुष्याणां कृते राक्षसा भयदाः साम्प्रतं त्वस्माकं कृते मनुष्या एव भयदाः सञ्जाता अतो रामस्य राक्षसत्वम् , अस्माकञ्च मनुष्यत्वमायातमित्यर्थः ।

रावणः सीतायाः सहजसौन्दर्यं प्रतिपादयति—यस्येति ॥ यस्य शोभा नैसर्गिकी तत् संस्कारम् नार्हति, शशिनः कलाम् कः मार्ष्टि, कौस्तुभः केन रज्यते इत्यन्वयः । यस्य = वस्तुनः शोभा = सौन्दर्यम् , नैसर्गिकी=स्वाभाविकी, तत्=वस्तु, संस्कारम्= प्रसाधनम् , नार्हति, प्राकृतिकशोभस्य संस्कारापेक्षा नास्तीत्यर्थः। शशिनः= चन्द्रमसः, कलाम् =ज्योत्स्नाम् , कः मार्ष्टि = कः संशोधयति न कोऽपीत्यर्थः। कौस्तुभः =एतन्नामको मणिः, केन = साधनविशेषेण, रज्यते = रक्तः क्रियते न केनापीत्यर्थः । यथोभयोः स्वाभाविकं वैशिष्ट्यं न किमपि साधनमपेक्षते तथैव सहजसुन्दरी सीताऽपि न अलङ्कारान्तरमपेक्षते इति भावः। अनुष्टुब् वृत्तम्। दृष्टान्ताऽलङ्कारः ॥ २४ ॥

सूत—आयुष्मन् ! मैं सचमुच डरा हुआ ही हूँ ।

इस समय हम लोग मनुष्य और राम राक्षस की तरह हैं ।

शूर्पणखा—आर्य ! सीता का यह रूप चमकीले आभूषण से कितना अच्छा लगता है ?

रावण—इसको आभूषणों से क्या, देखो—

जिसकी सुन्दरता स्वाभाविक है उसे संस्कार की आवश्यकता नहीं है । चन्द्रमा की कला को कौन पोंछता है और कौस्तुभमणि को कौन रंगता है ?

विमर्श—जिस प्रकार सहज शुभ्र चन्द्रकला का मार्जन और कौस्तुभमणि का रञ्जन नहीं किया जाता, क्यों कि ये दोनों स्वभावतः ही शुभ्र और रक्त हैं । उसी प्रकार सहज सौन्दर्य विशिष्ट यह सीता को भी सौन्दर्यवर्धक प्रसाधन की आवश्यकता नहीं है ॥ २४ ॥

सूतः—आयुष्मन्! किञ्चिद् वक्तुकामोऽस्मि।

रावणः—कथय कस्ते परिहारः।

सूतः—

इमां गम्भीरचारित्रां पश्यामि पतिदेवताम्।

रावणः—कथं त्वमवगच्छसि।

सूतः—

यदनेन वने धीरा रमते बन्धुनिःस्पृहा ॥ २५ ॥

रावणः—मन्दात्मन्! ननु स्त्रीणां विशेषानुपलभ्य सन्तोषिणी बुद्धिः। पश्य—

अथ सूतः सीतायाश्चारित्र्यं स्तौति—इमामिति ॥ इमाम् गम्भीरचारित्राम् पतिदेवताम् पश्यामि (अहमिति शेषः) कथमिति जिज्ञासायामाह—यदनेनेति, यत् अनेन बन्धुनिःस्पृहा धीरा (भूत्वा) वने रमते इत्यन्वयः। इमाम् = पुरोदृश्यमानाम्, गम्भीरचारित्राम् = गम्भीरम् = अपरिच्छेद्यम् अनन्यपतिव्रतासाधारणमिति यावत्, चारित्रम् = शीलम् यस्याः ताम्=असाधारणशीलाम्, पतिदेवताम् पतिः एव देवता यस्याः ताम् = सर्वथा स्वामिन्यनुरक्ताम्, पश्यामि = अवलोकयामि पतिव्रतात्वेन तां जानामीत्यर्थः, पतिव्रतात्वेन कथं ज्ञायते इति जिज्ञासायामाह—यदनेनेति, यत् = यस्मात्, अनेन = अनेन प्रकारेण निश्शङ्कतया, बन्धुनिःस्पृहाः = स्वजनसहायमनपेक्षमाणा, धीरा (भूत्वा) = धैर्यमवाप्य, वने = विपिने रमते = एकाकिनी एव इतस्ततो भ्रमति, अत एव अस्याः पतिव्रतात्वे नास्ति सन्देहावसर इति भावः। अनुष्टुब् वृत्तम्। काव्यलिङ्गमलङ्कारः ॥ २५ ॥

रावणः स्त्रीस्वभावं प्रकाशयति—नन्विति ॥ स्त्रीणाम् = नारीणाम्, बुद्धिः=

सूत—आयुष्मन्! कुछ कहना चाहता हूँ।

रावण—कहो, तुम्हारा क्या संशोधन है?

सूत—यह उत्कृष्ट चरित्रवाली पतिव्रता नारी है, मैं ऐसा समझता हूँ।

रावण—तुम कैसे समझते हो।

सूत—क्यों कि यह बिना सहायक की अपेक्षा किए जंगल में अकेली निर्भीक होकर घूमती है।

रावण—बुद्धू, विशिष्ट भाव को प्राप्त कर स्त्रियों की बुद्धि संतोष प्राप्त करती है। देखो—

मरतकतटे मन्दाकिन्या मदङ्कनिषादिनी
कनकनलिनोद्गन्धीन् स्वर्गानिलान् प्रतिगृह्णती ।
भयपरवशे दत्तापाङ्गा महेन्द्रपरिग्रहे
मनुजमवधूयैषा कामं मया सह रंस्यते ॥ २६ ॥

सीता—(निमित्तं सूचयन्ती) कुमार ! आसण्णं विअ असोहणं भावि दक्खिणा दाणिं मे अक्खी सन्तेदि । (कुमार ! आसन्नमिव अशोभनं भावि दक्षिणमिदानीं मे अक्षि सन्त्रयते ।)

मतिः, विशेषान् = पूर्वमनुभूतभावापेक्षयाऽत्यन्तं विशिष्टान् भावान्, उपलभ्य = अनुभूय, सन्तोषिणी ननु = परितोषकारिणी ननु, प्रसिद्धार्थे ननु शब्दः । यतो हि नारीणामेष स्वभावः, अतो रामापेक्षया मम वैशिष्ट्यमनुभूयेयमपि अचिरमेव वशङ्गता भविष्यतीति भावः ।

एतदेव समर्थयते—मरतकतटे इति ॥ मन्दाकिन्याः मरतकतटे मदङ्कनिषादिनी कनकनलिनोद्गन्धीन् स्वर्गानिलान् प्रतिगृह्णती भयपरवशे महेन्द्रपरिग्रहे दत्ताऽपाङ्गा एषा मनुजम् अवधूय मया सह कामम् रंस्यते इत्यन्वयः । मन्दाकिन्याः = स्वर्गङ्गायाः, मरतकतटे = हरिन्मणिमयतीरे, मदङ्कनिषादिनी = मम क्रोडशायिनी, कनकनलिनोद्गन्धीन् = स्वर्णकमलोद्गन्धीन्, स्वर्गानिलान् = दिवो वायून्, प्रतिगृह्णती = सेवमाना, भयपरवशे = भयाऽऽक्रान्ते, महेन्द्रपरिग्रहे = सुरेन्द्रनारीजने, दत्तापाङ्गा = प्रदत्तनेत्रप्रान्ता, एषा = पुरोवर्तमाना सीता, मनुजम् = मानुषं रामम्, अवधूय = अवमत्य, रामगतानुरागं तिरस्कृत्येत्यर्थः, मया सह = रामापेक्षया विशिष्टेन लङ्केश्वरेण सह, कामम् = यथेच्छम्, रंस्यते = रमणं करिष्यते । यदा मया सह सा स्वर्गसुखमनुभविष्यति तदा नूनमेव साधारणं मानुषं रामं विहाय मय्यनुरक्ता भविष्यतीति भावः । हरिणी वृत्तम् ॥ २६ ॥

अथ सीता दक्षिणाक्षिस्फुरणेनानिष्टं सूचयति—कुमार ! इति ॥ कुमार ! इदा-

---

आकाश गंगा के मरकतमणिमय तट पर मेरी गोद में सोने वाली, सोने की कमलिनी के गन्ध को लिये स्वर्ग की हवा को ग्रहण करती हुई, इन्द्र के भययुक्त स्त्री-समूह में अपने नेत्र प्रान्त को लगाने वाली यह रमणी मनुष्य को तिरस्कृत कर स्वेच्छापूर्वक मेरे साथ रमण करेगी ॥ २६ ॥

सीता—(अपशकुन की सूचना देती हुई) कुमार ! इस समय मेरी दाहिनी आँख आसन्न अनिष्ट की सूचना दे रही है ।

लक्ष्मणः—आर्ये !

दायादसाधारणवस्तुवन्ध्यं
वनान्तमस्माकमुपाश्रितानाम् ।
अशोभनं नाम किमव्यवस्था
यत्र श्रियस्तत्र ननु द्विषन्तः ॥ २७ ॥

सीता—कुमार ! इसिपदिणीणं वदणादो सुदं मए अत्थि विस्सु विंसदिभुओ तुम्हेहिं हदाणं खरदूसणाणं बादेत्ति । (कुमार ! ऋषिपत्नी वदनात् श्रुतं मयास्ति विश्रुतो विंशतिभुजो युवाभ्यां हतयोः खरदूषणयोर्भ्रातेति ।)

नीरमे दक्षिणम् = वामेतरम् अक्षि = लोचनम् , स्फुरणद्वारा भावि = आगा अशोभनम् = अनिष्टम् , आसन्नम् इव = समीपवर्त्ति इव, मन्त्रयते=सूचयति।

लक्ष्मणोऽनिष्टं खण्डयन्नाह—आर्ये ! दायादेति ॥ दायादसाधारणवस्तुवन् वनान्तम् उपाश्रितानाम् अस्माकम् किम् अशोभनम् नाम अव्यवस्था, यत्र श्रि तत्र द्विषन्तः ननु, इत्यन्वयः । दायादसाधारणवस्तुवन्ध्यम् = दायादाना बन्धूनाम् "दायादौ सुतबान्धवौ" इत्यमरः, साधारणम् = सामान्यम् , यद्वस् राज्यधनादि तेन वन्ध्यम् = रहितम् = बन्धुजनसामान्यराज्यधनादिशून्य वनान्तम् = वनमध्यम् , उपाश्रितानाम् = समाश्रितानाम् अस्माकम् = वनवा नाम् , किम् अशोभनम् = किम् अशुभम् , अव्यवस्था = उत्पातावस्था, यः यस्मिन् स्थाने, श्रियः = लक्ष्म्यः, तत्र = तस्मिन् स्थाने, द्विषन्तः = शत्रवः, भवन्तीत्यर्थः ।

वयं हि राज्यश्र्यादिकमनपेक्षमाणास्तापसभावेन विपिने निवसामोऽतो स्त्यत्रानिष्टशङ्का । चञ्चला श्रीर्यत्र विद्यते तत्रैव तस्या मर्यादाभावाच्छत्रूणामाश अत्र निर्मर्यादायाः श्रिया अप्राधान्यात् कुतो रिपुसम्भावनेति भावः । उप वृत्तम् । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः ॥ २७ ॥

लक्ष्मण—आर्ये !

बन्धुजन के लिये साधारण धन-धान्य वस्तुओं से रहित इस तपोवन में नि करने वाले हम लोगों को अनिष्ट नामक अव्यवस्था क्या होगी ? जहां पर लक्ष्मी हैं, पर शत्रु हैं ॥ २७ ॥

सीता—कुमार ! मुनिजन की धर्मपत्नियों के मुख से हमने सुना है कि आप लो द्वारा मारे गये खर और दूषण का २० भुजाओं वाला प्रसिद्ध भाई है ।

रावणः—दिष्ट्याहमनया श्रुतपूर्वः ।

लक्ष्मणः—आर्ये ! अलमस्मादुद्वेगेन ।

रावणः—किं नु खलु वक्ष्यति ।

लक्ष्मणः—न बाहवः प्रमाणं पौरुषस्य । पश्य—

येन सोऽयमपि रावणो जितः तं सहस्रभुजमर्जुनं मुनिः ।
होमसाधनविधानकर्मणा व्यच्छिनत् परशुनेव शाखिनम् ॥ २८ ॥

रावणः—स्मर मनुष्य ! तवेदं वचनम् ।

लक्ष्मणो बाहुबाहुल्यस्य पराक्रमप्रमाणत्वं खण्डयति—न बाहव इति ॥ पौरुषस्य= पराक्रम शक्तेः, बाह्वः = भुजाः, न प्रमाणम् = न नियामकम् , भुजानां बहुत्वं न शौर्यनियामकम् मित्यर्थः । एतदेवोदाहरणेन प्रतिपादय—येन सोऽयमिति ॥ येन सः अयमपि रावणः जितः तम् सहस्रभुजम् अर्जुनम् मुनिः होमसाधनविधान-कर्मणा परशुना शाखिनम् इव व्यच्छिनत् इत्यन्वयः । येन रावणेन इन्द्रादयो देवास्तिरस्कृताः, सोऽयम् = विंशतिभुजः, रावणः = दशकन्धरः, येन = सहस्रभुजेन कार्त्तवीर्येण, जितः = पराजितः, तम् = रावणजितम् , सहस्रभुजम् = सहस्रसंख्यक-बाहुम् , अर्जुनम् = कार्तवीर्यम् , मुनिः = परशुरामः, होमसाधनविधानकर्मणा = होमस्यसाधनं समिदादि तस्य विधानम् = मन्त्रपूर्वकं छेदनादिसंस्कारकरणं तदेव कर्म = व्यापारो यस्य तेन परशुना = कुठारेण, शाखिनमिव = वृक्षमिव, व्यच्छिनत्= अखण्डयत् । सहस्रभुजोऽपि ससैन्योऽप्यर्जुनो यतः परशुमात्रेण मुनिना जितोऽतः पराक्रमशक्तेर्नियामकं भुजानां बाहुल्यं नास्त्येवेति भावः । रथोद्धता वृत्तम् । उपमाऽलङ्कारः ॥ २८ ॥

रावण—भाग्य से यह मुझे पहले से ही जानती है ।

लक्ष्मण—आर्ये ! इससे घबड़ाने की जरूरत नहीं है ।

रावण—क्या कहेगा ?

लक्ष्मण—बहुत सी भुजायें वीरता का प्रमाण नहीं है ।

देखो—
जिसके द्वारा यह रावण भी जीता गया, उसी हजारों भुजाओं वाले कार्तवीय को परशुराम ने केवल होम के साधनभूत, लकड़ी को काटने के व्यापार वाले परशु (फरसा) से ही वृक्ष की तरह काट डाला ॥ २८ ॥

रावण—मनुष्य अपने इस वचन को याद रखो ।

(नेपथ्ये) हा ! लक्ष्मण ! !

सीता—हं अज्जउत्तस्स विअ सरो। (हमार्यपुत्रस्येव स्वरः ।)

लक्ष्मणः—आर्ये ! किमार्तस्वरमार्यः करोति ।

सीता—तुवं किं तक्केसि। (त्वं किं तर्कयसि ।)

लक्ष्मणः—मायेति ।

रावणः—अहो ! धृष्टः खल्वेषः ।

सीता—बालिश ! तदो वि रक्खिदव्वो । (बालिश ! ततोऽपि रक्षितव्यः ।

लक्ष्मणः—कथं रक्ष्यो रक्षति ।

(नेपथ्ये) किं विलम्बसे ।

सीता—खला ! भादुणा आपण्णस्स अक्कन्दिदं उवेक्खमाणं तुमं कहं भअवदी पुहुवी सहेदि। (खल ! भ्रातुरापन्नस्याक्रन्दितमुपेक्षमाणं त्वां कथं भगवती पृथ्वी सहते ।)

लक्ष्मणः—आर्ये ! किं त्वया तथैवेति निश्चितम् ।

(नेपथ्ये) किं न शृणोषि लक्ष्मण !

(नेपथ्य में) हा लक्ष्मण !

सीता—हैं, आर्यपुत्र की सी आवाज है ?

लक्ष्मण—आर्ये ! क्या आर्यपुत्र करुण पुकार करते हैं ?

सीता—तुम क्या अनुमान करते हो ?

लक्ष्मण—मैं 'धोखा' समझता हूँ ।

रावण—अरे, यह तो ढीठ है ।

सीता—नासमझ ! फिर भी रक्षा के योग्य हैं ।

लक्ष्मण—स्वयं रक्षा करने योग्य किस प्रकार रक्षा कर सकता है । (नेपथ्य में) क्यों देर करते हो ?

सीता—दुष्ट ! विपत्तिग्रस्त भाई की करुण पुकार की उपेक्षा करने वाले तुमको किस प्रकार पृथिवी सहन करती है ?

लक्ष्मण—आर्ये ! क्या आपने वैसा ही समझ लिया ? (नेपथ्य में) लक्ष्मण ! क्या नहीं सुन रहे हो ?

सीता—सुणाहि लक्खण ! किं ण तुराअसि । हद्धि, अणन्तरगामिणी इत्थिआणं लच्छी । ण हु अहं । एक्कं तं एव्व । (शृणु लक्ष्मण ! किं न त्वरसे । हा ! धिक्, अनन्तरगामिनी स्त्रीणां लक्ष्मीः । न खल्वहम् । एवं तमेव ।

लक्ष्मणः—(कर्णौ पिधाय) शान्तं पापं शान्तं पापम् ।

अपि मां विजल्पसि गभीरधियां
प्रथमा सती यदविचार्य चला ।
तदुपस्थिता तव विपन्नियतं
परिवर्त्तते प्रकृतिरापदि हि ॥ २९ ॥

अनन्तरगामिनीति ॥ स्त्रीणाम् = नारीणाम्मध्ये लक्ष्मीरेव अनन्तरगामिनी = एकं परित्यज्य अपरानुरागिणी अस्तीति भावः । न खलु अहम् = अहं तु तमेव एकं राममनुगच्छामि अतो रामवधानन्तरं मत्प्राप्तिविषयकस्तवाभिलाषो वृथै वेति भावः ।

अथ लक्ष्मणः सीतामनोभावं खण्डयन्नाह—अपि मामिति ॥ गभीरधियाम् प्रथमा सती चला (भूत्वा) अविचार्य माम् अपि (त्वम्) विजल्पसि यत् तत् तव विपत् नियतम् उपस्थिता, हि आपदि प्रकृतिः परिवर्त्तते इत्यन्वयः । गभीरधियाम्—गभीरा = सत्त्वविनयधैर्यादिगुणैरपरिच्छेद्या धीः = बुद्धिवृत्तिः यासाम् तासाम् अरुन्धत्यनुसूयादीनाम्, प्रथमा सती = स्वगुणैस्ताभ्योऽधिका भवन्ती, (साम्प्रतम्) चला = अस्थिरचित्ता (भूत्वा) अविचार्य = आर्यस्य परशुरामादिविजयशालिपराक्रमं स्मृतिपथाद् दूरीकृत्य माम् अपि = निरन्तरगुरुचरणसेवातत्परमपि लक्ष्मणम्, विजल्पसि = अधिक्षिपसि, यत् = यस्मात्, तत् = तस्मात्, तव = भवत्याः, विपत् = विपत्तिः, नियतम् = निश्चितम्, उपस्थिता = आसन्ना जाता, हि = यतः, आपदि = आसन्नायां विपत्तौ, प्रकृतिः =

सीता—सुनो लक्ष्मण ! जल्दी क्यों नहीं करते ? हाय, धिक्कार है । स्त्रियों में लक्ष्मी एक के बाद दूसरे (पुरुष) के पास जाती है, नहीं । केवल एक उन्हीं को ।

लक्ष्मण—(कानों को बन्द कर) अमंगल शान्त हो, अमंगल शान्त हो ।

स्थिरबुद्धि रखने वाली स्त्रियों में प्रथम होती हुई तुम इस समय चंचल होकर बिना विचार किये मुझ पर जो आक्षेप करती हो, इससे निश्चय ही तुम्हारी विपत्ति उपस्थित होने वाली है । क्योंकि विपत्ति आने पर स्वभाव बदल जाता है ॥ २९ ॥

रावणः—मूढ ! त्वं न जानीषे सम्पदुपस्थिता वनवासपरिक्लिष्टाया
(नेपथ्ये) हा ! हतोऽस्मि ।

सीता—मुक्ख ! सुणोहि लक्खण ! अहं तव पुरदो मरिस्सं । पच्छ
णिरासो दाणिं भादुणो सआसं गमिस्ससि । (मूर्ख ! शृणु लक्ष्मण ! अहं त
पुरतो मरिष्ये । पश्चान्निराश इदानीं भ्रातुः सकाशं गमिष्यसि ।)

लक्ष्मणः—

अविवेकमनावेक्ष्यमदाक्षिण्यमनूर्जितम् ।
धिगहं जन्म नारीणां यन्मामेवं प्रभाषसे ॥ ३० ॥

सीता—तुवं दाव साहु होहि । (त्वं तावत् साधुर्भव ।)

स्वभावः, परिवर्त्तते = अन्यथा भवति । अत्र हेतौ 'हि' शब्दप्रयोगः । सतता
चरणसेवापरायणे मय्यपि यदि तव विश्वासो नास्ति तर्हि काचिद् विपत्तिरास
एवेति भावः । प्रमिताक्षरा वृत्तम् । तल्लक्षणं हि—"प्रमिताक्षरा सजस
कथिता" । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः ॥ २९ ॥

अथ लक्ष्मणः सीतायाः परुषवचनमाकर्ण्य सनिर्वेदमाह—अविवेकमिति
अविवेकम् अनावेक्ष्यम् अदाक्षिण्यम् अनूर्जितम् एवम् (वचः) माम् यत् प्रभा
(अतः) नारीणाम् जन्म अहम् धिक् इत्यन्वयः । अविवेकम् = उचिताऽनुचि
विचाररहितम्, अनावेक्ष्यम् = अदूरदर्शित्वम्, अदाक्षिण्यम् = दाक्षिण्यहीन
अनूर्जितम् = सत्त्वबलरहितम्, एवं वचः, माम् = विवेकादिगुणयुतं लक्ष्मण
प्रभाषसे = अत्यर्थम् अपलपसि, (अतः) नारीणाम् = स्त्रीणाम्, जन्म = जाति
अहं धिक् = अहं निन्दामि । अनेन सीताहृदयस्य विवेकादिशून्यत्वं चापलत्व
दर्शितम् । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ३० ॥

रावण—मूर्ख तुम नहीं जानते कि जंगल के कष्ट से पीड़ित इस स्त्री का सौभ
उपस्थित हुआ है । (नेपथ्य में) हा, मैं मारा गया ।

सीता—मूर्ख लक्ष्मण ! मैं तुम्हारे सामने प्राणत्याग दूँगी । बाद में निराश हो
इस समय भाई के पास जाओगे ।

लक्ष्मण—विचारशून्य, भविष्य की चिन्ता न करने वाली, निस्पृह और दु
नारियों की जाति को धिक्कार है, जो मुझे इस प्रकार बदनाम करती हो ॥ ३० ॥

सीता—तो तुम्हीं सज्जन बनो ।

लक्ष्मणः—

मायाविधेयवपुषां नववैरभाजां
विश्रामवेश्मनि वने रजनीचराणाम्।
आज्ञां गुरोरगणयन्नविवेकलोला-
मेकाकिनीं कथमहं भवतीं त्यजेयम्॥ ३१॥

सीता—समाही रक्खदि इत्थिआअणं ण बाणा। (समाधी रक्षति स्त्रीजनं न बाणाः।)

अथ सीता "त्वम् तावत् साधुर्भव" इत्यत्र साधु शब्देन विपरीतलक्षणया लक्ष्मणस्य अविचारित्वं बोधयति।

अथ लक्ष्मणो भ्रातृजायापरुषवचनश्रवणसमुत्पन्ननिर्वेदेन गमनक्रियाम्प्रति दोलायमानहृदय आह—मायाविधेयेति॥ मायाविधेयवपुषाम् नववैरभाजाम् रजनीचराणाम् विश्रामवेश्मनि वने गुरोः आज्ञाम् अगणयन् अविवेकलोलाम् एकाकिनीम् भवतीम् अहम् कथम् त्यजेयम् इत्यन्वयः। मायाविधेयवपुषाम् = मायायाः विधेयम् = अधीनम्, वपुः = शरीरम् येषाम् तेषाम् कपटाधीनदेहानाम्, नववैरभाजाम् = खरदूषणादिवधोत्पन्नशत्रुभावेन छिद्रान्वेषिणाम्, रजनीचराणाम् = निशाचराणाम्, विश्रामवेश्मनि = निवासगृहे, वने = कानने, गुरोः = आर्यरामस्य, आज्ञाम् = आदेशम्, अगणयन् = अविचारयन्, अविवेकलोलाम् = अविवेकेन = विवेकशून्यत्वेन, लोलाम् = अस्थिरचित्ताम्, एकाकिनीम् = सहायान्तररहिताम्, भवतीम् = त्वाम्, अहम् = लक्ष्मणः, कथम् = केन प्रकारेण, त्यजेयम् = जह्याम्, परित्यागं कुर्यामित्यर्थः। राक्षसबहुले कान्तारे आत्ममात्रसहायां त्वां परित्यज्य गुरोर्निदेशमन्तरा इतोऽन्यत्र मम गमनं नोचितमिति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ३१॥

समाधिरिति॥ अत्र समाधिशब्दश्चित्तस्य स्थैर्यं लक्षयति। स्त्रीणां पातिव्रत्यरक्षणं तासां चित्तस्थैर्यमेव करोति नायुधानीत्यर्थः।

लक्ष्मण—कपट शरीर को धारण करने वाले, नवीन शत्रुता के पात्र राक्षसों के निवास करने योग्य जंगल में भाई की आज्ञा की उपेक्षा कर विवेकहीनता के कारण चञ्चल आप को अकेली कैसे छोड़ दूँ॥ ३१॥

सीता—स्त्रियों की रक्षा उसके हृदय की स्थिरता करती है, बाण नहीं।

लक्ष्मणः—देवा ज्ञास्यन्ति देवाः साक्षिणः।

सीता—होदव्वम्। (भवितव्यम्।)

लक्ष्मणः—(प्रणम्य) नमस्तुभ्यम्। (निष्क्रान्तः)

शूर्पणखा—अज्ज ! पेक्ख पेक्ख। (आर्य ! पश्य पश्य।)

सीता—अवि णाम अज्जउत्तेण लक्खणो सङ्गमिस्सदि। (अ
नामार्यपुत्रेण लक्ष्मणः सङ्गंस्यते।)

(नेपथ्ये) सीते ! त्वमपि मामुपेक्षसे।

सीता—हं, अधण्णा खु अहं अज्जउत्तं सरेण अण्णेसामि। (प्रतिष्ठे
(हम्, अधन्या खल्वहं आर्यपुत्रं स्वरेण अन्वेषयामि।)

शूर्पणखा—अज्ज ! पेक्ख पेक्ख अवणीदअंतं रअणं सअं ए
गच्छंतं। (आर्य ! पश्य पश्य अपनीतयन्तृकं रत्नं स्वयमेव गच्छत्।)

रावणः—नायमुपेक्षाकालः। रामरूपेणैनामर्धपथे प्रतिबध्नामि।

शूर्पणखा—सुट्ठु अज्जो भणादि। अहं वि दाव रामं सीदारूवे
णिवुत्तिपहे विलंबइस्सम्। (सुष्ठु आर्यो भणति। अहमपि तावद्रामं सीता
रूपेण निवृत्तिपथे विलम्बयिष्ये।)

अपनीतयन्तृकमिति ॥ अपनीतयन्तृकम् = अपनीतः = दूरीभूतः यन्ता = रक्ष
यस्मात् तत्। इदं हि रत्नस्य विशेषणम्।

लक्ष्मण—देवता जानेंगे। देवता ही साक्षी हैं।

सीता—होना चाहिये।

लक्ष्मण—तुमको नमस्कार है। (प्रणामकर जाते हैं)

शूर्पणखा—आर्य, देखो, देखो ?

सीता—क्या आर्यपुत्र से लक्ष्मण की भेंट होगी ? (नेपथ्य में) सीते ! तुम भ
मेरी उपेक्षा करती हो ?

सीता—अभागिनी मैं आवाज से आर्यपुत्र को खोजती हूँ।

शूर्पणखा—आर्य ! विना रक्षक के जाते हुये रत्न को देखिये।

रावण—यह समय उपेक्षा करने का नहीं है। राम के रूप से मैं इसे बीच मार्ग मे
ही रोकता हूँ।

शूर्पणखा—आर्य ठीक कहते हैं। मैं भी सीता का रूप धर कर लौटने के मार्ग मे
राम को देर लगाऊँगी।

रावणः—बाढम्।

शूर्पणखा—इदो परं किं मए कत्तव्वं। (इतः परं किं मया कर्तव्यम्।) [निष्क्रान्ता]

सूतः—आयुष्मन्! किं मयेदानीं कर्तव्यम्।

रावणः—(कर्णे) एवमिव।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (आत्मगतम्) अहो! बलवान् भर्तृपिण्डः। इदमपि मया कर्तव्यमासीत्।

(रावणो रथादवतीर्य रामरूपेण सीतायाः पुरतस्तिष्ठति)

सीता—हं, अज्जउत्तो। जेदु अज्जउत्तो। (हम्, आर्यपुत्रः। जयत्वार्यपुत्रः।)

रावणः—देवि! इत इतः।

मायाबलेन बलिनां क्षणदाचराणां
जिह्वातले करतलोदरि! वर्तमानाम्।

अथ दशमुखो मायया रामरूपमाश्रित्य सीतां प्रतारयति—मायाबलेनेति॥ करतलोदरि! मायाबलेन बलिनाम् क्षणदाचराणाम् जिह्वातले वर्त्तमानाम् त्वाम् लक्ष्मणः कथम् उपेक्षितवान्, त्वम् कथम् मृदुना चरणद्वयेन इत्थम् गतासि इत्यन्वयः। करतलोदरि!=कृशोदरि!, मायाबलेन=छलनाप्रभावेण, बलिनाम्=

रावण—ठीक है।

शूर्पणखा—अब मुझे क्या करना चाहिये? (चली जाती है)

सूत—आयुष्मन्! अब मुझे क्या करना चाहिये?

रावण—(कान में) इस तरह।

सूत—आपकी जो आज्ञा। (मन ही मन) ओह, मालिक की रोटी बड़ी तगड़ी होती है। यह भी मुझे करना था?

(रथ से उतर कर रावण राम के रूप में सीता के सामने खड़ा होता है।)

सीता—अहा, आर्यपुत्र! आर्यपुत्र की जय हो।

रावण—देवि? इधर आओ इधर।

हे तन्वङ्गि! माया के बल से क्षण क्षण में रूप बदलने वाले सबल राक्षसों की जिह्वा

त्वां लक्ष्मणः कथमुपेक्षितवान् कथं त्व-
मित्थं गतासि मृदुना चरणद्वयेन ॥ ३२ ॥

सीता—हं, अधण्णाए मए उपालद्धो कुमारो किं ति मन्तेदि। (हम्, अधन्यया मयोपालब्धः कुमारः किमिति मन्त्रयते।)

रावणः—नूनं विप्रलब्धासि मायामृगस्वरेण।

सीता—अज्जउत्त ! कहिं सो माआमिओ। (आर्यपुत्र ! कुत्र स मायामृगः।)

रावणः—पथि विप्रतिपन्नः स्वयमेवागमिष्यति।

(नेपथ्ये) अयमयमागच्छामि।

सीता—हं, अज्जउत्तस्स व्विअ सरो। (हम्, आर्यपुत्रस्येव स्वरः।)

रावणः—मन्ये पूर्वमपि स्वरसादृश्येन वञ्चितासि।

सत्ववताम्, क्षणदाचराणाम् = रक्षसाम्, जिह्वातले = रसनातले, वर्त्तमानाम् = विद्यमानाम्, त्वाम् = भवतीम्, लक्ष्मणः = तव रक्षकत्वेन नियुक्तो ममानुजः, कथम् = केन प्रकारेण, उपेक्षितवान् = त्यक्तवान्, त्वम् (अपि) = सीता (अपि), मृदुना = कोमलेन, चरणद्वयेन = पादयुगलेन, कथम् इत्थम् = कथम् अनेन प्रकारेण एकाकिनी एव, गतासि = निर्गतासि, पर्णशालातो बहिर्भूतासीत्यर्थः। लक्ष्मणोपेक्षिताया अपि तव पर्णशालायामेवावस्थानं समुचितमासीदिति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३२ ॥

के बीच में रहती हुई तुम्हारी किस प्रकार लक्ष्मण ने उपेक्षा की ? और तुम भी इन कोमल दोनों चरणों से इस प्रकार क्यों चली आयी हो ? ॥ ३२ ॥

सीता—मुझ अभागिन से भर्त्सना पाकर कुमार अपने मन में क्या सोचेंगे।

रावण—निश्चय ही तुम मायावी हरिण की आवाज से धोखा खायी हो।

सीता—आर्यपुत्र ! वह मायामृग कहाँ है।

रावण—मार्ग में छिपा हुआ स्वयं हो आजायेगा। (नेपथ्य में) यह मैं आता हूँ।

सीता—हैं, आर्यपुत्र जैसी आवाज है।

रावण—मालूम पड़ता है आवाज की समानता से तुम पहले भी ठगी गयी हो।

सीता—णं तेण कुमारो वि मए उपालद्धो। (ननु तेन कुमारोऽपि मयोपालब्धः।)

(रावणः सूतं वीक्षते सूतोऽपि लक्ष्मणरूपेण रथमसन्दिग्धं गृहीत्वा रावणमुपसर्पति)

सूतः—प्रसीदत्वार्यः। रथमारोहत्वार्यः सपत्नीकः।

रावणः—लक्ष्मण ! किमिदम्।

सूतः—आर्य ! समाधिचक्षुषा भरतस्य परचक्रभयमुपनतं दृष्ट्वा तूर्णं युष्माभिरभिगन्तव्यमिति तपसा रथं निर्माय मह्यं दत्त्वा वनान्तरेष्वन्तर्हितस्तपस्विजनः।

सीता—(आत्मगतम्) जुज्जइ। णं पुव्वं वि से हत्थे दिण्णं परं अच्चरिअचूडामणी अब्भुदङ्गुलीअअं अ। (युज्यते। ननु पूर्वमप्यस्य हस्ते दत्ते आश्चर्यचूडामणिः अद्भुताङ्गुलीयकं च।)

अथ सूतो रावणसङ्केतेन लक्ष्मणरूपमासाद्य रथं गृहीत्वा सीताप्रबोधनाय तत्प्राप्तिकारणं छद्मना प्रतिपादयति—समाधिचक्षुषेति ॥ तपस्विजनः = तपःकर्मणि निरतो मुनिवर्गः, समाधिचक्षुषा = दिव्यनेत्रेण, भरतस्य परचक्रभयम् = शत्रुराज्यविपदम्, उपनतम् = समागतम्, दृष्ट्वा तूर्णम् = त्वरिततरम्, युष्माभिः = रामादिभिः, अभिगन्तव्यम् = अभिगमनीयम्, इति तपसा = तपोबलेन, रथम् = स्यन्दनम्, निर्माय = विरचय्य, मह्यम् = लक्ष्मणाय दत्त्वा, वनान्तरेषु = अन्यवनेषु, अन्तर्हितः = तिरोऽभूत्।

सीता—इसी से मैंने कुमार लक्ष्मण को भी उपालम्भ दिया है। (रावण सारथी को इशारा करता है। सारथी भी लक्ष्मण के रूप में निःशंक भाव से रथ को लेकर रावण के समीप आता है।)

सूत—आर्य प्रसन्न हों। पत्नी सहित आर्य रथ पर चढ़ें।

रावण—लक्ष्मण ! यह क्या ?

सूत—आर्य ! योगदृष्टि से भरत के शत्रुभय को उपस्थित जान कर "तुम लोगों को शीघ्र जाना चाहिए।" इसलिए तपोबल से रथ का निर्माण कर तथा हमें देकर तपस्वी लोग दूसरे जंगल को चले गये।

सीता—(मन ही मन) हो सकता है। पहले भी ऋषियों ने इसके हाथ में आश्चर्य चूडामणि और विलक्षण अंगूठी को दिया था।

रावणः—देवि ! कस्तवाभिप्रायः ।

सीता—णं मए वि इच्छिदव्वो भरदस्स वेसणणासो वन्दणं गुरुअणस्स अ । (ननु मयाप्येष्टव्यो भरतस्य व्यसननाशो वन्दनं गुरुजनस्य च ।)

रावणः—लक्ष्मण ! प्रथमं देवीमारोहय रथम् ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (रथमारोहयति)

सीता—दिट्ठिआ रक्खसवंचणादो मोइदा भविअ गच्छामो । (दिष्ट्या राक्षसवञ्चनान्मोचिता भूत्वा गच्छामः ।) [सहर्षमारोहति]

रावणः—प्रसन्ना देवी, लक्ष्मण ! तूर्णं चोदयाश्वान् ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

रावणः—(आत्मगतम्) राम इति ।

मयि बुद्ध्याप्यसन्दिग्धामिमां न स्प्रष्टुमुत्सहे ।

अथ रावणश्छलेन सीतामात्मवशङ्गतामवलोक्य मदनपरवशो भूत्वा सीतालिङ्गनसमुत्सुकोऽपि तस्याः पातिव्रत्यप्रभावेण स्तब्धव्यापारः सन् स्वयमेव विमृशति—मयि बुद्धयेति ॥ अहम् (अधुना) मयि राम इति बुद्ध्या असन्दिग्धाम् अपि इमाम् स्प्रष्टुम् न उत्सहे, अहो, तत्पूर्वदृष्टानाम् स्त्रीणाम् समागमः कष्टः इत्यन्वयः । अहम् = रामरूपेण विद्यमानोऽपि, मयि = रावणे, राम इति बुद्ध्या = 'अयम् रामः' इति मद्गोचरेण ज्ञानेन, असन्दिग्धाम् अपि = सन्देहरहिताम् अपि, इमाम् = पुरोवर्त्तिनीं सीताम्, स्प्रष्टुम् = स्पर्शं कर्तुम्, न उत्सहे=

रावण—देवि ! आपका क्या विचार है ?

सीता—हमें भी तो भरत के दुःख का उपशम और गुरुजनों की वन्दना अभीष्ट है।

रावण—लक्ष्मण ! पहले देवी को रथ पर चढ़ाओ ।

सूत—आर्य की जो आज्ञा । (सीता को रथ पर चढ़ाता है)

सीता—सौभाग्य से राक्षसों की छलना से मुक्त होकर जाती हूँ । (प्रसन्नता से रथ पर चढ़ती है)

रावण—देवी प्रसन्न है । लक्ष्मण ! रथ को शीघ्र बढ़ाओ ।

सूत—आर्य की जो आज्ञा ।

रावण—(मन ही मन) 'राम' इस तरह—मुझ में बुद्धि रखनेवाली शंकारहित

अहो ! तत्पूर्वदृष्टानां कष्टः स्त्रीणां समागमः ॥ ३३ ॥

(ततः प्रविशति रामः सीतारूपधारिण्या शूर्पणखया सह)

रामः—देवि ! स खलु जाल्मो राक्षसो मत्सेषुपतनानन्तरमेव मे रूपं गृहीत्वा पतितः। ततस्तमुपेक्ष्य तव वृत्तान्तपरिज्ञानार्थं तूर्णं निवृत्तोऽस्मि।

शूर्पणखा—(आत्मगतम्) अधं दे देवित्तणम्। (अधं ते देवी त्वम्।)

सीता—(आकाशे रथस्था) चिराअ खु णो पिअसहीं वणत्थलीं विसज्जिअ गन्तव्वं। (चिराय खलु नः प्रियसखीं वनस्थलीं विसृज्य गन्तव्यम्।)

रावणः—देवि ! कृतमनेन। ननु द्रक्ष्यसि नन्दनातिशायिनीं नगरोद्यानश्रियमेव।

सीता—(अधो विलोक्य) तह। हं, अज्जउत्तो। (तथा। हम्, आर्यपुत्रः।)

उत्साहं न करोमि, तत् = तस्मात्, पूर्वदृष्टानाम् = प्रथमसाक्षात्कृतानाम्, स्त्रीणाम् = रमणीनाम्, समागमः = सङ्गमः, कष्टः = दुःखावहः भवतीति शेषः। यद्यपीयं मां रामं जानाति तथापि प्राथम्येन दर्शनादस्याः सङ्गमसुखे नोत्साह इति भावः। अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ३३ ॥

इसको स्पर्श करने का उत्साह नहीं होता है। अहो, पहली वार देखी गयी स्त्रियों का समागम कष्टदायक होता है ॥ ३३ ॥

(उसके बाद राम सीता का रूप धारण किये शूर्पणखा के साथ प्रवेश करते हैं)

राम—देवि ! वह दुष्ट राक्षस मेरे बाण के प्रहार के बाद ही मेरे रूप को धारण कर गिर पड़ा। तब उसको छोड़ कर तुम्हारा समाचार जानने शीघ्र लौट पड़ा हूँ।

शूर्पणखा—(मन ही मन) तुम्हारा देवीभाव दूषित है। अर्थात् कपटवेष में विद्यमान शूर्पणखा अपने प्रति राम के देवि ! इस सम्बोधन को सुनकर प्रसन्नता का अनुभव करती है और राम की बुद्धि पर तरस खाकर उन्हें भ्रान्त समझती है।

सीता—(आकाश में रथ पर बैठी हुई) अपनी प्रिय सखी वनभूमि को बहुत दिनों के लिए छोड़ कर जाना है।

रावण—देवि ! इससे क्या, नन्दन वन को भी तिरस्कृत करने वाली नगरवाटिका की शोभा को देखोगी।

सीता—(नीचे की ओर देखकर) अच्छा हैं, आर्यपुत्र।

रामः—आकाशे सीताया इव स्वरः। (इत्युद्वीक्षते)

शूर्पणखा—अज्जउत्त ! पेक्ख पेक्ख तव पडिकिदिं इत्थिअं अ मम इदिं आदरिसे विअ पेक्खामि। (आर्यपुत्र ! पश्य पश्य तव प्रतिकृतिं स्त्रि च ममाकृतिमादर्श इव पश्यामि।)

रामः—सत्यं सीता परपुरुषगोचरे न तिष्ठति। ध्रुवमियं वञ्चना सीता मायारामपार्श्वे। यथा सोऽहं न भवामि तथा सीतापि न भवति।

सीता—हं, अधण्णा अहं अज्जउत्तं परमत्थं ण जाणामि। (हम् अधन्याहम् आर्यपुत्रं परमार्थं न जानामि।)

रावणः—मुग्धे ! मुनीनामतिसन्धानार्थं मम रूपेण राक्षसा सञ्चरन्ति।

सीता—सच्चं एव्व एदं। कुदो अज्जउत्तस्स इत्थिआसम्बन्धो जह सा अहं ण होमि तह अज्जउत्तो वि सो ण होइ। (सत्यमेवैतत् कुत आर्यपुत्रस्य स्त्रीसम्बन्धः। यथा साहं न भवामि तथार्यपुत्रोऽपि स न भवति

रावणः—प्रसन्ना देवी, लक्ष्मण ! तूर्णं चोदयाश्वान्।

रावणः शङ्काकुलां सीतां दृष्ट्वा एवं प्रबोधयति—मुग्धे ! मुनीनामिति अतिसन्धानार्थम् = वञ्चनार्थम्, मम रूपेण = रामस्य रूपेण, सञ्चरन्ति = यथे विचरन्ति।

राम—आकाश में सीता की सी आवाज है। (ऊपर देखते हैं)

शूर्पणखा—आर्यपुत्र ! देखिए देखिए। दर्पण की भाँति आपकी और मेरे रूप में की आकृति को देखती हूँ।

राम—सममुच सीता दूसरे पुरुष के सामने नहीं रह सकती। जिस प्रकार मैं नहीं हूँ उसी प्रकार सीता भी (वह) नहीं है।

सीता—मेरा दुर्भाग्य है कि मैं आर्यपुत्र को वास्तविक रूप से नहीं पहचानती।

रावण—मुग्धे ! मुनियों को धोखा देने के लिए मेरा रूप धारण कर राक्षस घूमते हैं

सीता—यह सत्य ही हैं। आर्यपुत्र का स्त्री के साथ सम्बन्ध कैसा ? जिस प्रकार वह नहीं हो सकती उसी प्रकार आर्यपुत्र भी वह नहीं हो सकते हैं।

रावण—देवी प्रसन्न हैं। लक्ष्मण ! शीघ्र घोड़ों को बढ़ाओ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यार्यः।

(निष्क्रान्तो रावणः सीतां गृहीत्वा सूतेन च)

शूर्पणखा—(विषादं रूपयति। स्वगतम्) को णु खु मे गमणस्स उपाओ।
(को नु खलु मे गमनस्योपायः।)

रामः—देवि !

किं निःश्वासैर्ग्लपयसि जपापाटलं दन्तवासो
नेत्राभ्यां किं सृजसि कुचयोरस्रबिन्दूनजस्रम्।
विक्षिप्ताङ्गी विलपसि कथं तिष्ठसि ध्यानमूका
धीरे ! धैर्यं तव सह मया निर्गतं निर्गतेन ॥ ३४ ॥

अथ रामः सीतारूपेण विद्यमानायाः शूर्पणखाया विषादनिमित्तं विमृशति—किं निःश्वासैरिति ॥ धीरे ! (त्वम्) जपापाटलम् दन्तवासः निःश्वासैः किं ग्लपयसि, नेत्राभ्याम् कुचयोः अस्रबिन्दून् अजस्रम् किं सृजसि, विक्षिप्ताङ्गी (भूत्वा) किं विलपसि, ध्यानमूका कथं तिष्ठसि, निर्गतेन मया सह तव धैर्यम् निर्गतम् कथमिति शेषः। इत्यन्वयः। धीरे != स्वभावतो धैर्यगुणसम्पन्ने, (त्वम्) जपापाटलम् = जपापुष्पवदतिरक्तम् , दन्तवासः = अधरम् , निःश्वासैः = निःश्वासमारुतैः, किम् = किमर्थम् , ग्लपयसि = मलिनयसि, नेत्राभ्याम् = लोचनाभ्याम्, कुचयोः = स्तनयोः, अस्रबिन्दून् = अश्रुजलकणिकाः, अजस्रम् = निरन्तरम्, किम्, सृजसि = उत्पादयसि, विक्षिप्ताङ्गी = विवशकरचरणाद्यवयवा (भूत्वा) किम् , विलपसि = परिदेवनं करोषि, ध्यानमूका = ध्यानेन = चिन्तया मूका = स्तिमितोर्ध्वनयना, किम् , तिष्ठसि = वर्त्तसे, निर्गतेन = मृगग्रहणार्थं बहिर्गतेन,

---

सूत—आर्य की जो आज्ञा।

(सीता को लेकर सूत के साथ रावण चला जाता है)

शूर्पणखा—(दुःख का अनुभव करती है। मन ही मन)
मेरे निकल भागने का कौन सा उपाय है ?

राम—देवि ! जपाकुसुम के समान अत्यधिक लाल अधर को गरम गरम सांसों से क्यों मलिन बना रही हो ? कुच प्रदेश पर दोनों नेत्रों से निरन्तर अश्रुकणों को क्यों बहा रही हो ? शिथिल शरीर वाली होकर क्यों विलाप कर रही हो, और चुप मार कर क्यों बैठी हो ? धीरे ! (माया मृग को पकड़ने के लिये) निकले हुए मेरे साथ ही तुम्हारा धैर्य भी निकल गया है ॥ ३४ ॥

शूर्पणखा—अज्जउत्त ! तव वेसणस्स अहं बीजं संवुत्तत्ति पेक्खामि
(आर्यपुत्र ! तव व्यसनस्याहं बीजं संवृत्तेति पश्यामि ।)

रामः—मा मैवम्, कं न वशीकरोति स मायामृगः। किं नु खलु
नाद्यापि निवृत्तो लक्ष्मणः।

शूर्पणखा—अहं वि तं एव्व तक्केमि। (अहमपि तदेव तर्कयामि।

रामः—तस्य रूपपरिवर्तनेन कुमारं विप्रलब्धमिव पश्यामि। देवि
किं शक्नोषि मामनुगन्तुं यावदहं लक्ष्मणमन्विच्छामि।

शूर्पणखा—कहं वि अहं अणुगमिस्सं। भीदह्मि रक्खसवंचणादो
(कथमप्यहमनुगमिष्यामि। भीतास्मि राक्षसवञ्चनात्।)

रामः—देवि ! इत इतः। (उभौ परिक्रामतः)

(नेपथ्ये)

सकामा भव कैकेयि ! कौसल्ये ! न गतिस्तव।

मया सह = रामेण सह, तव = सीतायाः, धैर्यम् = धीरता, कथम्, निर्गतम् = बहिर्भूतम्। मम निर्गमनानन्तरं तव धैर्यविनाशे किं कारणमिति भावः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्। तल्लक्षणं हि—मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् सहोक्त्यलङ्कारः ॥ ३४ ॥

अथ लक्ष्मणो राघवं सम्बोध्य विलपति—सकामेति ॥ कैकेयि ! (इदानीं त्वम् सकामा भव, कौशल्ये। तव गतिः न, यत् निशाचरबाणेन ते सुतः मर्मणि हत

शूर्पणखा—मुझे ऐसा लगता है कि आपके दुःख का कारण मैं ही बनी।
राम—ऐसा मत कहो। वह कपटमृग किसे नहीं आकृष्ट करता है ?
लक्ष्मण अभी तक भी क्यों नहीं लौटा ?
शूर्पणखा—मैं भी तो यही सोच रही हूँ।
राम—मालूम पड़ता है उस मृग के रूप-परिवर्तन से लक्ष्मण धोखा खा गया है
देवि ! मैं लक्ष्मण की खोज करता हूँ। क्या तुम मेरा साथ दे सकती हो ?
शूर्पणखा—मैं आपके पीछे कैसे जा सकूगीं ? मैं राक्षसों की माया से डर गई हूँ।
राम—देवि ! इधर से इधर से (दोनों घूम कर चलते हैं) [नेपथ्य में] कैकेयि

यन्निशाचरबाणेन सुतस्ते मर्मणि क्षतः ॥ ३५ ॥

रामः—हन्त ! तदेव संवृत्तम् ।

(पुनर्नेपथ्ये)

सत्यवादिनि ! धर्मिष्ठे ! पुत्रि सागरवाससः ।
अमङ्गलानां नारीणां कथं त्वं देवि ! गण्यसे ॥ ३६ ॥

रामः—यावदयमात्मपरित्यागं न करोति तावदेनमुपसर्पामि । (ततः प्रविशति बाणोद्धरणव्यापृतो लक्ष्मणः रामरूपप्रच्छन्नो मारीचश्च)

इत्यन्वयः । कैकेयि != भरतमातः !, (इदानीं त्वम्) सकामा भव = सफलमनोरथा भव, कौशल्ये != राममातः !, तव = भवत्याः, गतिः = उपायः, न = नास्ति, यत् = यस्मात्, ते = तव, सुतः = पुत्रः, निशाचरबाणेन = रजनीचरशरेण, मर्मणि = मर्मस्थले, क्षतः = पीडितः, कथाशेषताङ्गत इत्यर्थः । अनुष्टुब् वृत्तम् । काव्यलिङ्गमलङ्कारः ॥ ३५ ॥

पुनरपि सीतावैधव्यमनुस्मृत्य शोकाकुलहृदयस्तां सम्बोध्य विलपति—सत्यवादिनीति ॥ सत्यवादिनि ! धर्मिष्ठे !, सागरवाससः पुत्रि ! देवि ! त्वम् अमङ्गलानाम् नारीणाम् (मध्ये) कथम् गण्यसे इत्यन्वयः । सत्यवादिनि != यथार्थवचने !, धर्मिष्ठे = भर्तृशुश्रूषारूपधर्मकर्मनिरते, सागरवाससः = भगवत्या वसुन्धरायाः, पुत्रि = तनये !, (एवम्भूत्वा त्वम्) अमङ्गलानाम् = अशुभसूचकानाम्, विधवानाम्, नारीणाम् = स्त्रीणाम् (मध्ये) कथम् = केन प्रकारेण, गण्यसे = गणिता क्रियसे । वैधव्यकारणाभावेऽपि कथं त्वं विधवात्वं यास्यसीति भावः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ३६ ॥

तुम अपनी अभिलाषा पूरी करो ! कौसल्ये ! तुम्हारा कोई उपाय नहीं क्योंकि राक्षस के बाण से तुम्हारे पुत्र का हृदय विंध गया है ॥ ३५ ॥

राम—हा, वही हुआ ।

(फिर नेपथ्य में) हे सत्यवादिनि ! धर्मशीले ! वसुधापुत्रि ! तुम किसी विधवा नारियों में गिनी जाओगी ? ॥ ३६ ॥

राम—जब तक यह प्राणत्याग नहीं करता तब तक इसके निकट जाता हूँ !

लक्ष्मणः—(सकरुणम्) आर्य ! गुरुविधेय ! त्वदायत्तं मे जीवि[तं]
हरसि ।

रामः—(स्मितं कृत्वा) लक्ष्मण !

मुञ्च मायागतं दुःखं पश्य मां तव पूर्वजम् ।

लक्ष्मणः—(विलोक्य सक्रोधम्) आः राक्षस !

पूर्वजं चापि मे हत्वा मामप्यभिगतोऽसि किम् ॥ ३७ ॥

अथ सौमित्रिर्विपन्नं रामं दृष्ट्वा विलपति—गुरुविधेय इति ॥ गुरुविधेय= गुरुतरं विधेयम् = पुत्रोत्पादनादिकर्त्तव्यं यस्य स गुरुविधेयः तत्सम्बोधने । पित्रा[दि] ऋणत्रयमनपाकृत्य साम्प्रतं तव गमनं नोचितमिति भावः । त्वदायत्तम् = त्वद[धी]धीनम् । यतो मम जीवनं तवाधीनमतस्त्वयि जीवत्येव मया जीवितव्यं, नान्य[]थेत्यभिप्रायः ।

अथ रामो लक्ष्मणस्य भ्रान्तिमपनुदति—मुञ्च मायेति ॥ मायागतम् दुःख[म्] मुञ्च, तव पूर्वजम् माम् पश्य, इति रामवाक्यम्, मध्ये एव लक्ष्मणोऽधि[क्षि]पन्नाह—पूर्वजमिति ॥ मे पूर्वजम् अपि हत्वा माम् अपि च किम् अभिगतोऽ[सि] इत्यन्वयः । लक्ष्मण ! मायागतम् = कपटशरीरहेतुकम्, दुःखम् = खेदम्, मुञ्च= त्यज, तव = भवतः, पूर्वजम् = अग्रजम्, माम् = रामम्, पश्य = अवलोकय, [न] खलु तवाग्रजो रामो विपन्नः, अपितु मायाशरीरो मृग एव विपन्नः, अतो नास्ति शोकस्यावसर इति रामाशयः ।

लक्ष्मणो रामं राक्षसम्मन्यमानः सक्रोधमाह—पूर्वजमिति ॥ मे = मम, पूर्वजम्= अग्रजम् ज्येष्ठभ्रातरमित्यर्थः, हत्वा = निहत्य, माम् अपि = लक्ष्मणमपि, अभि[]गतोऽसि = प्राप्तोऽसि (हन्तुम् इति शेषः) । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ३७ ॥

(उसके बाद बाण को निकालने में व्यस्त लक्ष्मण और राम का रूप धारण कि[ये] मारीच प्रवेश करता है)

लक्ष्मण—(करुणा से) आर्य ! हे प्रशस्तकार्यसंवाहक ! आपके अधीनस्थ मे[रे] जीवन का हरण करते हो । (अर्थात् आपके बिना मेरा जीवित रहना असंभव है)

राम—(मुस्कुराकर) लक्ष्मण ! माया के कारण उत्पन्न दुःख को दूर करो । अप[ने] बड़े भाई मुझको देखो ।

लक्ष्मण—(देखकर क्रोध से) आह, राक्षस ! मेरे बड़े भाई को मार कर क्या मे[रे] नजदीक भी आये हो ॥ ३७ ॥

तिष्ठ तिष्ठ क यास्यसि (खड्गमुत्कोशयति)

रामः—(उपेत्य) लक्ष्मण ! पश्य पश्य । (इत्यङ्गुलीयं दर्शयति)

लक्ष्मणः—(विलोक्य सलज्जमात्मगतम्) नेदं राक्षसा जानन्ति ।

(अधोमुखस्तिष्ठति)

रामः—लक्ष्मण ! पश्य फलमङ्गुलीयकस्य ।

(मारीचं पादेनोद्धृत्य विक्षिपति मारीचः स्वरूपमेव गृह्णाति)

लक्ष्मणः—आर्य ! पश्यामि ।

प्रकृतिं प्रपद्य सहजां तवोद्धृत-
श्चरणेन तामरसपाटलत्विषा ।
नभसो जवेन सह संभृतैर्घनैः
पतति क्षितौ पतनचूर्णिताचलः ॥ ३८ ॥

अथ लक्ष्मणो मारीचस्य वास्तविकं स्वरूपं दृष्ट्वा सविस्मयमाह—प्रकृतिमिति ॥ तामरसपाटलत्विषा तव चरणेन उद्धृतः सहजाम् प्रकृतिम् प्रपद्य सम्भृतः घनैः सह जवेन नभसः पतनचूर्णिताचलः क्षितौ पतति इत्यन्वयः । तामरसपाटल-त्विषा = तामरससमानशोभेन, तव = लोकोत्तरपराक्रमस्य भवतः, चरणेन = पादेन, उद्धृतः = उत्क्षिप्तः (सन्) सहजाम् = स्वाभाविकीम् , प्रकृतिम् = स्व-रूपम् , राक्षसरूपमित्यर्थः, प्रपद्य = आसाद्य, सम्प्राप्येति यावत् , सम्भृतैः =

ठहरो ठहरो, कहां जाओगे ? (म्यान से तलवार खींच लेते हैं)

राम—(समीप आकर) देखो, देखो ।

(अंगूठी दिखलाते हैं) ।

लक्ष्मण—(देखकर लाज से मन ही मन) इसे राक्षस नहीं जानते हैं । (अपना मुँह नीचे कर लेते हैं)

राम—लक्ष्मण ! अंगूठी का फल देखो ।

(मारीच को पैर से उठा कर फेंकते हैं । मारीच अपने वास्तविक रूप को धारण करता हैं) ।

लक्ष्मण—आर्य ! देखता हूँ ।

कमल के समान रक्त तथा कोमल चरणों से फेंका गया यह, अपने वास्तविक रूप को धारण करके वेग से मेघमार्ग से जाकर तत्कालीन मेघों के साथ ही आकाश से गिरने से टुकड़ों में विभक्त पर्वत की भाँति पृथिवी पर गिर रहा है ॥ ३८ ॥

शूर्पणखा—(सशोकमात्मगतम्) हं, मणुस्सा खु बलवन्तो । हा ! ह
गुरु मारीओ (हम्, मनुष्याः खलु बलवन्तः । हा ! हतो गुरुर्मारीचः।
[रोदिति]

लक्ष्मणः—अस्य दर्शनादेव नः प्रत्ययकारणमासीद् अङ्गुलीय
राक्षससंशये रूपव्यक्तिहेतुरिति ।

शूर्पणखा—को णु खु मे गमणस्स उपाओ । (को नु खलु मे गम
स्योपायः ।) (विषादं रूपयति)

रामः—देवि ! किमद्यापि शोकं न मुञ्चसि ।

(इति अश्रुसंमार्जनं करोति । शूर्पणखायाः स्वरूपमेवासीत्)

शूर्पणखा—हं, अवसिदं म्हि । (हम्, अवसितास्मि ।)

रामः—लक्ष्मण ! किमिदम् ।

लक्ष्मणः—आर्य ! इदमिदमस्याः,

तत्कालोत्पन्नैः, घनैः = मेघैः, सह, जवेन = वेगेन, नभसः = आकाशात्, पत
चूर्णिताचलः = पतनेन = स्खलनेन चूर्णितः = शकलीकृतः अचलः = पर्वतः
तथाविधो भूत्वा क्षितौ = पृथिव्याम्, पतति = आगच्छति । भवच्चरणोद्धरण
एव वेगेन मेघमार्गमासाद्य ततो धरण्यां निपततीति भावः । मञ्जुभाषिणीवृत्त
सहोक्तिरलङ्कारः ॥ ३८ ॥

शूर्पणखा—हा, मनुष्य बलवान हैं, पूज्य मारीच मारे गये ।

(रोती है)

लक्ष्मण—इसके देखने से ही हम लोगों के विश्वास का कारण, राक्षस के सन्दे
स्वरूप-परिचय का यह अंगूठी कारण थी ।

शूर्पणखा—(दुःखी होती है) मेरे निकल भागने का क्या उपाय है ?

राम—देवि ! अभी भी दुःख नहीं छोड़ती हो ? (ऐसा कह कर आँसू पोंछते
शूर्पणखा अपने राक्षसी रूप में बदल जाती है ।)

राम—लक्ष्मण ! यह क्या ?

लक्ष्मण—आर्य ! इसका यह—

नीलोत्पलाकृतिमपास्य रथाङ्गरूप-
मापद्यते नयनयुग्ममियं तनुश्च ।
आलूननासिकतया विवृतान्तमूलै-
र्दन्तैः सरिद्विमथितेव सितैर्मृणालैः ॥ २९ ॥

आस्त्वया कृतमिदं व्यसनम् । (खड्गमुत्कोशयति)

शूर्पणखा—(सभयम्) अज्ज ! सरणं सरणं । (आर्य ! शरणं शरणम् ।) (रामस्य पादयोः पतति)

अथ लक्ष्मणो रामाङ्गुलीयकस्पर्शेन राक्षस्याः स्वरूपप्राप्तिप्रकारमवलोक्याह—नीलोत्पलेति ॥ 'अस्याः' इत्युपरिष्टाद्ग्राह्यम् । (अस्याः) नयनयुग्मम् नीलोत्पलाकृतिम् अपास्य रथाङ्गरूपम् आपद्यते, इयम् तनुश्च आलूननासिकतया विवृतान्तमूलैः दन्तैः (उपलक्षिता सती) सितैः मृणालैः विमथिता सरित् इव (दृश्यते इति शेषः) इत्यन्वयः । अस्याः शूर्पणखायाः, नयनयुग्मम् = लोचनयुगलम्, नीलोत्पलाकृतिम् = नीलकमलवन्मनोहराकारम् , अपास्य = दूरीकृत्य, रथाङ्गरूपम् = रथाङ्गस्य = स्यन्दनावयवस्य रूपम् = विपुलाकारम् , आपद्यते = प्राप्नोति, अस्याः, इयम् = पुरोदृश्यमाना, तनुःच = शरीरञ्च, आलूननासिकतया = आमूलम् लूना = उच्छिन्ना नासिका यस्याः सा आलूननासिका तस्याः भावः तया = आमूलोच्छिन्ननासिकतया, विवृतान्तमूलैः = विवृतः = बहिर्भूतः अन्तः = अग्रम् मूलञ्च येषाम् तथाभूतैः, दन्तैः = दशनैः (उपलक्षिता सती) सितैः = शुभ्रैः, मृणालैः = मतङ्गजेनविक्षिप्तैः कमलतन्तुभिः (उपलक्षिता) विमथिता = परिमृदिता, सरित् इव = जलाशय इव, दृश्यते इति शेषः । यथा विमथितो जलाशयो मतङ्गजेनेतस्ततोविक्षिप्तैर्मृणालैरुपलक्षितो भवति तथैवेयमप्युच्छिन्ननासिकतया दंष्ट्राभिरुपलक्षिता दृश्यते इति भावः ।

वसन्ततिलकं वृत्तम् । उपमालङ्कारः ॥ २९ ॥

नेत्र-युगल नीलकमल के समान सुन्दर आकृति को छोड़कर चक्र के आकार को प्राप्त कर रहा है । और इसका शरीर भी नाक के कट जाने के कारण निकले हुए दांतों से, वनगजों से आलोडित होकर इधर उधर व्यस्त स्वच्छ मृणालों से युक्त मथे हुये सरोवर के समान प्रतीत हो रहा है ॥ २९ ॥

अतः तुम्हीं ने यह विपत्ति लायी है ।

(म्यान से तलवार खींच लेते हैं)

शूर्पणखा—आर्य ! शरण दीजिए शरण । (राम के चरणों पर गिरती हैं)

रामः—(लक्ष्मणं वारयित्वा) शूर्पणखे ! कथय परमार्थम् । अभयं ते दत्तम् ।

शूर्पणखा—(आकारसंवरणं कृत्वा कर्णे) अज्ज ! एव्वं विअ । (आर्य एवमिव ।)

रामः—शूर्पणखे ! तव निष्क्रयार्थं भ्रातुरन्तिकं मम सन्देशमुपनय।

शूर्पणखा—आणवेदु दाणिं साणुक्कोसो भट्टा । (आज्ञापयत्विदा सानुक्रोशो भट्टा ।)

रामः—शृणु,

नयनविषये मायासीतां विदर्श्य विलोभनं
मम धृतवता मिथ्या रूपं विधाय च लक्ष्मणम् ।

भट्टेति ॥ 'भट्टा' अयं शब्दो रामस्य कृते 'नाटके नीचजनैरुत्तमो जनो भ इति अभिधातव्यः' इति नियमात् शूर्पणखया प्रयुक्तः ।

अथ रामः शूर्पणखाद्वारा दशमुखम्प्रति सन्दिशति—नयनविषये इति ॥ म नयनविषये विलोभनम् मायासीताम् च विदर्श्य मम रूपम् धृतवता मिथ्यारूप लक्ष्मणम् च विधाय सद्यः त्वरितगतिना त्वया सीता न वञ्चिता (प्रत्युत) त नियतविधवाचाराः दाराः एव वञ्चिताः इत्यन्वयः । मम नयनविषये = मम लोचन गोचरे, विलोभनम् = मायामृगम् , मायासीताञ्च = शूर्पणखामाध्यमेन छद्मसीता विदर्श्य = प्रदर्श्य, ममरूपम् = रामरूपम् , धृतवता = स्वीकृतवता, मिथ्यारूपम्: असत्यस्वरूपम् , लक्ष्मणञ्च = सूतमाध्यमेन ममानुजञ्च, विधाय = कृत्वा, सद्यः

राम—(लक्ष्मण को रोक कर) शूर्पणखे ! सच्ची बात कहो । मैंने तुम्हें अभयदा किया ।

शूर्पणखा—(आकृति को समेट कर कान में) आर्य ! ऐसा है ।

राम—शूर्पणखे ! अपना छुटकारा पाने के लिये भाई के समीप मेरा सन्दे पहूँचाओ ।

शूर्पणखा—इस समय दयालु स्वामी हमें आज्ञा दीजिये ।

राम—सुनो,

मेरे नयनों के लिए मायामृग और माया-सीता को दिखा कर, स्वयं मेरा कपट धारण कर और (तसू को) लक्ष्मण बना कर शीघ्रगामी तुमने अभी सीता को धो

त्वरितगतिना सद्यः सीता त्वया न तु वञ्चिता
नियतविधवाचारा दाराश्चिरं तव वञ्चिताः ॥ ४० ॥

इति ।

लक्ष्मणः—शूर्पणखे ! इदमपि मद्वचो ब्रूहि ।

अपि बन्धुषु नार्थिता वरं किमुतारातिषु तां दधाम्यहम् ।
युधि रावण ! मे सबान्धवो मुनये देहि मुहूर्तदर्शनम् ॥ ४१ ॥

तत्क्षणमेव, त्वरितगतिना = शीघ्रगामिना, त्वया = रावणेन, सीता = मम भार्या जनकतनया, न वञ्चिता = अपहरणद्वारा न प्रतारिता, तु = प्रत्युत, नियतविधवाचाराः = नियतः = अवश्यम्भावी, विधवानाम् = विनष्टपतीताम् आचारः = व्यवहारः येषाम् ते, तव = भवतः, दाराः = भार्याः, चिरम् = चिरकालं यावत् वञ्चिताः = प्रतारिताः । अस्मद्वञ्चनापूर्वकं कृतामिमां सीतावञ्चनामात्मवञ्चनापूर्वकं कृतां स्वभार्यावञ्चनामेव मन्यस्व इत्थं त्वया स्वभार्यापुत्रमित्रादिभिः सह आत्मापि वञ्चित इति ध्वन्यते । हरिणी वृत्तम् ॥ ४० ॥

अथ सौमित्रिरपि रावणम्प्रति सन्दिशन्नाह—अपि बन्धुषु इति । बन्धुषु अपि अर्थिता न वरम्, किमुत अरातिषु, अहम् ताम् दधामि, रावण ! युधि मे मुनये सबान्धवः मुहूर्तम् दर्शनम् देहि इत्यन्वयः । बन्धुषु = दायादेषु, अपि, अर्थिता = याचना, न वरम् = नोत्कृष्टम्, भवति, किमुत अरातिषु = किमुत शत्रुषु, शत्रुषु क्रियमाणा याचना तु अत्यन्तं निकृष्टा एवेति भावः, किन्तु इदानीम्, अहम् = लक्ष्मणः, ताम् = निकृष्टामप्यर्थिताम्, दधामि = सम्पादयामि, रावण ! = दशमुख !, युधि = संग्रामे, युद्धं निमित्तीकृत्येत्यर्थः, सबान्धवः = सपरिजनः, अर्थात् बन्धुजनसहितो भूत्वा, मे मुनये = मुनिवेषमाचरते लक्ष्मणाय, मुहूर्त्तम् = क्षणं यावत्, दर्शनं देहि = नयनगोचरो भव, मत्समक्षमागच्छेत्यर्थः । सुन्दरीवृत्तम् ॥ ४१ ॥

नहीं दिया अपि तु विधवा-जीवन व्यतीत करने वाली अपनी स्त्रियों को ही तुमने धोखा दिया है ॥ ४० ॥

लक्ष्मण—शूर्पणखे ! मेरे इस वचन को भी कहना

हे रावण बन्धुजनों के प्रति भी याचना अच्छी नहीं है, शत्रुओं के प्रति क्या कहा जाय ? फिर भी मैं तुम से यह याचना करता हूँ कि युद्ध भूमि में अपने बन्धुओं के साथ मुझ तपस्वी को एक क्षण के लिये ही दर्शन दो ॥ ४१ ॥

शूर्पणखा—भादुणो मे कलहो उच्छवो। (भ्रातुर्मे कलहः उत्सवः।)

लक्ष्मणः—आः अपेहि।

शूर्पणखा—एसा खं उव्वदिदं ह्मि। (एषा खमुत्पतितास्मि।)

(निष्क्रान्ता)

रामः—लक्ष्मण ! वञ्चिता वयम्।

कनकहरिणः क्वेयं भूमिः क्व चेत्यविचारयन्
अपि निशितधी रामो रामावचः प्रतिपन्नवान्।

अथ रामो मायामृगलोभकृतं सीतापरित्यागमनुस्मृत्य तज्जन्याऽकीर्तेर्दुष्परि-हरत्वं मन्यमानो महान्तं सन्तापमुपगम्य सविषादमाह—कनकहरिण इति। निशितधीः अपि रामः, कनकहरिणः क्व, इयम् भूमिः च क्व, इति अविचारयन् रामावचः प्रतिपन्नवान् इति कृतधियाम्, हास्यः आसम् (अहम्) कृतचिन्तया कृतम्, अनर्थः कुतः प्रभवति, चेत् प्रज्ञा अपथोन्मुखी न (भवेदिति शेषः) इत्यन्वयः। निशितधीः अपि = निशिता = उचिताऽनुचितविचारपटीयसी धीः = बुद्धिः यस्य एतादृशोऽपि रामः, कनकहरिणः = स्वर्णमृगः, क्व = कुत्र, इयम्भूमिश्च = इयं विपिनस्थली च, क्व = कुत्र, इति अविचारयन् = विचारमकुर्वन्, रामावचः = रामायाः = प्रियायाः वचः = मायामृगग्रहणाभ्यर्थनापरं वचनम्, प्रतिपन्नवान् =

विमर्श—इस श्लोक में लक्ष्मण की गर्वोक्ति की व्यञ्जना कवि ने बड़ी ही कुशलता की है। स्वजनों से भी याचना करना सर्वथा उपहास के योग्य है। तुम तो मेरे शत्रु फिर भी शत्रु से कुछ याचना कर रहा हूँ और वह है समर भूमि में तुम्हारे दर्शन आमन्त्रण की याचना। याचना भी यदि उन्नत कोटि की हो और उसमें किसी के व्यक्ति का विकास हो तो श्रेयस्कर ही है।

शूर्पणखा—मेरे भाई के लिये कलह उत्सव ही है।

लक्ष्मण—अरी, दूर हो जा।

शूर्पणखा—यह मैं आकाश में उछल रही हूँ।

(चली जाती है)

राम—लक्ष्मण ! हम लोग धोखा खाए।

कहाँ यह सोने का मृग और कहाँ राक्षसों से आक्रान्त यह बन-प्रदेश, ऐसा नि बुद्धि से युक्त राम ने भी बिना विचार किये सीता की बातों का विश्वास किया, बुद्धिमान् मनुष्यों के उपहास का पात्र बना। अब शङ्का करने से क्या लाभ ?

इति कृतधियामासं हास्यः कृतं कृतचिन्तया
प्रभवति कुतोऽनर्थः प्रज्ञा न चेदपथोन्मुखी ॥ ४२ ॥

लक्ष्मणः—आर्य ! अविलम्बितमिदानीं यत्नः कर्तव्यः ।

रामः—बाढम् । गच्छाग्रतः ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । इत इतः ।

(निष्क्रान्तौ)

इति शक्तिभद्रविरचिते चूडामणिनाटके तृतीयोऽङ्कः ।

अनुरागचपलोभूत्वाऽङ्गीकृतवान्, इति = अस्माद्धेतोः, कृतधियाम् = कृता = शास्त्राभ्यासंस्कृता धीर्येषां तेषाम्, हास्यः = उपहासविषयः, आसम् = अभूवम्, अहमिति शेषः, कृतचिन्तया = कृतं कर्म उद्दिश्य अनुतापेन, कृतम् = अलम्, न खल्वत्र सन्तापो विधेयः । अनर्थः = अनिष्टप्राप्तिः, कुतः = कस्मात्, प्रभवति = सम्भवति, चेत् = यदि, प्रज्ञा = बुद्धिः, अपथोन्मुखी = विपथगामिनी न भवेदिति शेषः । बुद्धेर्वैपरीत्यमेव अनर्थकारणं नान्यदित्यर्थः । कनकमयमृगाणां हेमाद्रिकूटादौ दिव्यप्रदेशे एव सम्भवात् मायाविबहुलेऽस्मिन् प्रदेशे कुतः कनकमृग इति विचारयितव्ये मया अन्यथैव विचारितमित्येव विपरीतबुद्धिरिति रामाशयः । हरिणी वृत्तम् । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः ॥ ४२ ॥

इति आश्चर्यचूडामणे 'रमा' टीकायां तृतीयोऽङ्कः ॥

यदि ज्ञान विरूद्ध-भाव का अनुसरण नहीं करे तो अनर्थ कहाँ से हो। (अर्थात् सभी अनर्थों का मूल कारण बुद्धि-विपर्यय ही है) ॥ ४२ ॥

लक्ष्मण—आर्य ! इस समय शीघ्र ही प्रयास करना चाहिये ।

राम—ठीक हैं । आगे चलो ।

लक्ष्मण—आर्य की जो आज्ञा । इधर आइए ।

(चले जाते हैं)

तृतीय अङ्क समाप्त ।

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति रावणो रथेन सीतया सूतेन च)

रावणः—लक्ष्मण ! तूर्णं चोदयाश्वान् ।

त्यजतु भरतो भारं विश्वम्भराविषयं क्षणा-
न्मुदितमनसः पश्यन्त्यो नो भवन्तु च मातरः ।
इयमपि पुरीमासाद्य स्वां निशाचरगोचरे
चिरमगवने जातं दुःखं जहातु तपस्विनी ॥ १ ॥

विद्या ज्ञानं तपश्चापि यस्मिन् खेलन्ति लीलया ।
मम भक्तिनतञ्चेतस्तस्मिन् रामेश्वरे गुरौ ॥

अथ तृतीयाङ्कादवशिष्टं प्रतिनायकेतिवृत्तमस्मिन्नङ्केऽभिधीयते । अत एव विष्कम्भकादिकमनाहत्य अङ्क एवारभ्यते ।

अथ दशमुखः समुद्भूतमदनचापलः सन् सीतासमागमाऽऽकृष्टहृदयतया लङ्काप्रवेशम्प्रति महतीं त्वरामवलम्ब्य सूतं वेगेन तुरगान् प्रेरयितुं नियुङ्क्ते-लक्ष्मण ! इति । जानकीविश्वासार्थञ्च त्वरितगमने मिथ्याभूतानि कारणान्तराणि कथयति—त्यजतु इति । भरतः क्षणात् विश्वम्भराविषयम् भारम् त्यजतु, (अस्मद्दर्शनात्) नः पश्यन्त्यः मातरः मुदितमनसः भवन्तु, इयम् अपि तपस्विनी स्वाम् पुरीम् आसाद्य निशाचरगोचरे अगवने चिरम् जातम् दुःखम् जहातु इत्यन्वयः। भरतः = मध्यमाम्बासुतः, क्षणात् = क्षणकालसिद्धेन अस्मत्पुरप्रवेशेन, विश्वम्भराविषयम् = विश्वम् = स्थावरजङ्गमात्मकं भाव जातम् बिभर्तीति विश्वम्भरा = दुर्वहा पृथ्वी सा एव विषयः = कर्म यस्य स विश्वम्भराविषयः तम् , भारम् = भरणम्, त्यजतु = त्यागं करोतु, वसुधाभरणक्लेशादुन्मुक्तो भवत्वित्यर्थः, नः = अस्मान्, पश्यन्त्यः = अवलोकयन्त्यः, मातरः = कौशल्याप्रभृतिजनन्यः, मुदितमनसः = प्रसन्नहृदयाः, भवन्तु, इयम् = सीता, तपस्विनी=तपोधना, अपि, निशाचरगोचरे=

(उसके बाद रथ, सारथी और सीता के साथ रावण प्रवेश करता है)।

रावण—लक्ष्मण ! शीघ्र घोड़ों को बढ़ाओ ।

पृथिवी के भरण-पोषण का भार क्षणभर के लिए भरत छोड़ दे । हमलोगों को देखकर माताएँ भी हृदय से प्रसन्न हों। यह तपस्विनी (सीता) भी राक्षसों से आपूर्ण पर्वत-जंगलों में प्राप्त कष्ट को दूर करे ॥ १ ॥

सीता—अज्जउत्त ! मा मा एव्वं । तपोवणे एव्व रमदे मे बुद्धी । (आर्यपुत्र ! मा मैवम् । तपोवन एव रमते मे बुद्धिः ।)

सूतः—(आत्मगतम्) शान्तमुदारं चास्याश्चेतः । न वञ्चनामर्हत्येषा ।

सीता—(आत्मगतम्) किं णु खु एदं पिअं च सुणोमि हिअअं च सन्तप्पदि । (किन्तु खल्विदं प्रियं च शृणोमि हृदयं च सन्तपति ।)

रावणः—(कामावेशं निरूप्य) केन खलु विधिना मनुष्यस्त्रियमन्तरेण मन्मथापूर्विकां त्यजामि ।

राक्षसास्पदे, अगवने=पर्वतसङ्कुले विपिने, अथवा अगाः च वनानि चेति अगवनम् तस्मिन् , चिरम्=चिरकालवासेन, जातम्=समुत्पन्नम् , दुःखम्=क्लेशम्, जहातु=परित्यजतु । स्वर्णपुर्य्याम्मया सह रममाणाया अस्यास्त्रैलोक्यसुन्दर्य्याश्चिरकालनिवासजन्यं काननक्लेशं दूरं यास्यतीति भावः । हरिणी वृत्तम् ॥ १ ॥

शान्तमुदारमिति ॥ अस्याः=सीतायाः, चेतः=अन्तःकरणम् , शान्तम्=सत्त्वगुणोपेतम् , उदारम्=निरुपाधिकसन्तोषयुतम् , वञ्चनाम्=छलनाम् , इमाम्प्रति मत्स्वामिकृता वञ्चना न परिणामरमणीया इति सूतस्याशयः ।

अथ दशग्रीवापहृता रामवियुक्ता सीता आसन्नाम्विपदं सूचयता विधिना समुत्पादितं हृदयसन्तापमालक्ष्य विचिन्तयति—किन्विति ॥ प्रियवचनश्रवणहृदयसन्तापयोः परस्परं विरुद्धत्वात् शङ्कालेशप्रसङ्गो जातः ।

कामावेशमिति ॥ कामावेशम्=मदनावेगम् , निरूप्य=अभिनीय, मनुष्यस्त्रियमन्तरेण=मानुषभार्यां विषयीकृत्य, मन्मथापूर्विकाम्=मदनस्य अपूर्वां वृत्तिम् , उत्कण्ठामिति यावत् , त्यजामि=उपशमयामि । मानवभार्यामुद्दिश्य समुत्पन्नाम्मदनोत्कण्ठां कथमुपशमयामीति भावः । अत्र चापलसंज्ञको धीरोद्धतगुण उपन्यस्तः ।

सीता—आर्यपुत्र ! ऐसा न कहें । मेरा मन तपोवन में ही लगता है ।

सूत—(मन ही मन) इसका हृदय शान्त और उदार है । यह धोखा देने योग्य नहीं है ।

सीता—(मन ही मन) प्रियवचन तो सुनती हूँ किन्तु हृदय में सन्ताप क्यों होता है ?

रावण—(काम के आवेग को समझ कर) मनुष्य की स्त्री को लक्ष्यकर उत्पन्न कामदेव की उत्कण्ठा को किस उपाय से दूर करूँ ।

सूतः—(रावणं निरीक्ष्य आत्मगतम्) अहो नु खलु कामो निर्मर्यादः। ततः खलु,

अपि नियमिनो दारान् साधूनधीरमवेक्षते
पुलकसुहृदा भूयो बाहुद्वयेन विजृम्भते ।
श्वसिति मुहुरत्युष्णं दन्तच्छदेन हतत्विषा
किमपि किमपि व्याजेनायं ब्रवीति करोति च ॥ २ ॥

सीता—(आत्मगतम्) किं णु खु अवरो विअ दीसइ आआरेण अज्जउत्तो। (किन्नु खल्वपर इव दृश्यते आकारेण आर्यपुत्रः।)

अथ सूतो रावणगतस्य कामस्य मर्यादाराहित्यमुपपादयति—अपीति ॥

अयम् नियमिनः साधून् दारान् अधीरम् अवेक्षते, पुलकसुहृदा भूयः बाहुद्वयेन विजृम्भते, हतत्विषा दन्तच्छदेन (सहितः) मुहुर्मुहुः अत्युष्णम् श्वसिति, व्याजेन किमपि किमपि ब्रवीति (यत्किञ्चित्) करोति च इत्यन्वयः॥ अयम्=मदनविह्वलो दशमुखः, नियमिनः=व्रतिनो रामस्य, साधून् दारान् = प्रतिव्रतां स्त्रियम्। अधीरम्=धैर्यरहितम्, यथास्यात्तथा अवेक्षते=निरीक्षते, अवेक्षणकाले पुलकसुहृदा=पुलकश्चासौ सुहृच्चेति पुलकसुहृत्तेन पुलको रोमाञ्चः सीतादर्शनानन्दजनित-रोमाञ्चेनोपलक्षित इत्यर्थः, भूयः बाहुद्वयेन = प्रसारितभुजद्वयेन, विजृम्भते = वर्धते, हतत्विषा = हता = नष्टा त्विट् = कान्तिः यस्य तेन, दन्तच्छदेन = अधरेण सहितः, मुहुः = वारम्बारम् , अत्युष्णम् = अत्युष्णं यथास्यात्तथा, श्वसिति=श्वासं गृह्णाति, व्याजेन = छलेन, किमपि किमपि ब्रवीति = अस्पष्टाक्षरं वक्ति, (यत्किञ्चित्) करोति, अस्य वचने कर्मणि च स्पष्टता नास्तीत्यर्थः। चपलानां कामिजनानामेव एव व्यवहारः परिलक्ष्यते। हरिणी वृत्तम् ॥ २ ॥

सूत—(रावण को देखकर मन ही मन) अरे, कामदेव सीमा पार कर रहा है। उसीसे तो—

तपस्वी राम की स्त्री को आतुरता से देखता है। रोमाञ्चित दोनों भुजाओं को फैलाता है। कान्ति हीन अधरों से गरम-गरम साँस लेता है। छलपूर्वक अस्पष्ट रूप से कुछ-कुछ बोलता और करता है ॥ २ ॥

सीता—(मन ही मन) आर्यपुत्र आकृति से कुछ दूसरा ही सा दीख पड़ते हैं ?

रावणः—(आत्मगतम्) भवत्वनया तावत् स्पर्शसुखमनुभवामि। अहो नु खलु बलवानसंस्तवः। तथा हि,

अपि वासववारणस्य वक्त्रे
मदकल्माषितकर्णचामराग्रे।
अनिवारितविक्रमः करो मे
दयितां स्प्रष्टुमलं न तापसस्य ॥ ३ ॥

सीता—(आत्मगतम्) किं णु खु रक्खसदंसणादो सहस्सगुणो विअ मे संदावो। (किं नु खलु राक्षसदर्शनात् सहस्रगुण इव मे सन्तापः।)

अथ रावणः सीतास्पर्शनव्यग्रोऽपि तस्याः पातिव्रत्यप्रभावसञ्जातेन भयेन स्तब्धव्यापारो भूत्वा सनिर्वेदमाह—अहो नु इति ॥ असंस्तवः = अपरिचयः। अन्यत्र प्रकटितपराक्रमस्यापि करस्य सीतास्पर्शनेऽसामर्थ्यं दर्शयति—अपि वासवेति ॥ वासववारणस्य मदकल्माषितकर्णचामराग्रे वक्त्रे अपि अनिवारितविक्रमः मे करः तापसस्य दयिताम् स्प्रष्टुम् न अलम् इत्यन्वयः। वासववारणस्य = देवराजगजस्य ऐरावतस्य, मदकल्माषितकर्णचामराग्रे = मदजलेन कल्माषितम् = शबलीकृतम् कलुषितमित्यर्थः कर्णाग्रम् = श्रवणाग्रम् चामराग्रम् = शुण्डाग्रञ्च यस्मिन् तत् तथोक्ते वक्त्रे = मुखे, अपि, अनिवारितविक्रमः = अप्रतिहतपराक्रमः, मे करः = मम हस्तः, तापसस्य = तापसवेषधारिणो रामस्य, दयिताम् = भार्याम् , स्प्रष्टुम् = स्पर्शं कर्तुम् , न अलम् = न शक्तो भवति। यतोहि सुरेन्द्रगजमुखे प्रदर्शितशक्तिर्मे-हस्तः साधारणमुनिभार्यायाः स्पर्शकर्मणि न समर्थोऽतोऽपरिचयो बलीयानिति भावः। कालभारिणी वृत्तम् ॥ ३ ॥

रावण—(मन ही मन) अच्छा, तबतक इसके स्पर्श-सुख का अनुभव करता हूँ। अहो, अपरिचय बड़ा बलवान है। क्योंकि—

मदजल से ओतप्रोत कान और चामर के अग्रभाग वाले इन्द्र के गज के मुख पर अपना पराक्रम दिखाने वाला मेरा हाथ तपस्वी की स्त्री का स्पर्श करने में असमर्थ है॥ ३ ॥

सीता—(मन ही मन) राक्षस के दर्शन से उत्पन्न हजारों गुणा अधिक दुःख जैसा मुझे क्यों लग रहा है ?

रावणः—(आत्मगतम्) भवत्वेवं तावत् करिष्ये । (प्रकाशम्) देवि

नियमाभिषेकजटिलं तपोवने
वनवल्लरीकुसुममात्रमण्डनम् ।
रचयामि देवि ! रथयानवेगतः
श्लथितं शिरोरुहनिबन्धनं तव ॥ ४ ॥

सीता—(सलज्जम्) णं कुमारो आसण्णो । (ननु कुमार आसन्नः । (इति स्वहस्तेन रावणहस्तं निवारयति)

रावणः—(स्वरूपमेव गृह्णाति)

सीता—(विलोक्य) हं, ण खु अज्जउत्तो । (हम्, न खल्वार्यपुत्रः । (भयं नाटयति)

अथ दशग्रीवः सीतायाः स्पर्शनप्रत्यानुकूल्यं सम्पादयितुमाह—नियमाभिषेकेति ॥ देवि! तपोवने नियमाभिषेकजटिलम्, वनवल्लरीकुसुममात्रमण्डनम् रथयानवेगतः श्लथितम् तव शिरोरुहनिबन्धनम् रचयामि इत्यन्वयः । देवि!= भगवति!, तपोवने = तपःकानने, नियमाभिषेकजटिलम् = नियमः = श्रुतिस्मृतिविहितं कर्म तदर्थेन अभिषेकेन = स्नानेन, जटिलम् = जटीभूतम्, वनवल्लरीकुसुममात्रमण्डनम् = वनवल्लरी = काननलता तस्याः कुसुमानि=पुष्पाणि एव मण्डनम्= आभूषणं यस्य तत्, काननलतापुष्पमात्राभूषणमित्यर्थः, रथयानवेगतः = स्यन्दनगमनवेगात्, श्लथितम् = शिथिलीकृतम् व्यस्तमित्यर्थः, तव = भवत्याः, शिरोरुहनिबन्धनम् = केशकलापम्, रचयामि = अङ्गुलिभिः प्रसार्य संयमयामि । मञ्जुभाषिणी वृत्तम् ॥ ४ ॥

रावण—(मन ही मन) अच्छा, ऐसा करता हूँ । (प्रकट) देवि ! तपोवन में नियमपूर्वक स्नान करने से जटिल, केवल जंगल के लताकुसुमों के आभूषण से युक्त और रथ के वेग से इधर उधर बिखरे हुए तुम्हारे केशकलाप को मैं अपने हाथों से संभालता हूँ ॥ ४ ॥

सीता—(लज्जा से) हैं, कुमार समीप में हैं (ऐसा कह कर अपने हाथ से रावण के हाथ को रोकती है)

रावण—अपने राक्षसरूप को ग्रहण करता है ।

सीता—(देखकर) हैं, आर्यपुत्र तो नहीं है ?

(भय का अभिनय करती है)

रावणः—देवि ! न भेतव्यं न भेतव्यम् । नन्वहं रामः ।

सीता—संतोसि । (शान्तोऽसि ।)

रावणः—लक्ष्मण ! किमिदम् ।

सूतः—आयुष्मन् ! किं वाङ्मात्रेण ।

तरुणहरिणलक्ष्मह्रेपिदंष्ट्राकरालं
हिमगिरितटवर्ष्म स्निग्धजीमूतनीलम् ।
प्रतिदिशमुपलक्ष्यैराननैर्भीमकान्तं
वपुरिह सहसा ते जायते जातिबन्धम् ॥ ५ ॥

अथ सूतो रावणस्य राक्षसाऽऽकारत्वं सूचयति—तरुणहरिणेति ।। तरुणहरिणलक्ष्मह्रेपिदंष्ट्राकरालम् हिमगिरितटवर्ष्म स्निग्धजीमूतनीलम् प्रतिदिशम् उपलक्ष्यैः आननैः भीमकान्तम् ते वपुः इह सहसा जातिबन्धम् जायते इत्यन्वयः । तरुणहरिणलक्ष्मह्रेपिदंष्ट्राकरालम् = तरुणहरिणः = बालमृगः लक्ष्म = चिह्नम् यस्य तं ह्रेपयन्तीभिः = लज्जाम् आवहन्तीभिः दंष्ट्राभिः = दशनैः करालम् = क्रूरदर्शनम् , हिमगिरितटवर्ष्म = हिमगिरितटवत् = हिमालयपर्वतभागवत् वर्ष्म = स्थूलता यस्य तत् स्निग्धजीमूतनीलम् = स्निग्धः = सगुणः जीमूतः = मेघः तद्वत् नीलम् = कृष्णवर्णम् , प्रतिदिशम् = दिशं दिशं प्रति प्रतिदिशम् , सर्वासु दिक्षु, उपलक्ष्यैः = प्रतीयमानैः, आननैः = मुखैः (सहितम्) भीमकान्तम् = भीमा = भयदा कान्तिः = आकृतिः यस्य तत्, अथवा भीमञ्च एतत् कान्तञ्च मनोज्ञञ्च इति भीमकान्तम् , ते = भवतः, वपुः = शरीरम् , इह = अत्र, सहसा = हठात् कारणं विनैवेति यावत् , जातिबन्धम् = राक्षसत्वजातिसम्बद्धम् प्रकटितराक्षसाकारं जायते । कपटरामरूपं

रावण—देवि ! घबड़ाओ नहीं । मैं राम ही हूँ ।

सीता—शान्त हो ।

रावण—लक्ष्मण ! यह क्या हुआ !

सूत—आयुष्मन् ! कथन मात्र से क्या—

बाल-चन्द्र को भी लज्जित करने वाले दाँतों से विकट, हिमालय पर्वत के तट की स्थूलता से युक्त, घने मेघ के समान नील, सभी ओर प्रतीत होने वाले मुखों से भयंकर कान्ति वाला तुम्हारा यह शरीर सहसा अपने जातीय स्वरूप (राक्षसत्व) को प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

रावणः—(आत्मानं विलोक्य) कथमहमित्थं भूतोऽस्मि । देवि न भेतव्यं न भेतव्यम् ।

नाहं बन्धुरगात्रि ! भीतिविषयस्ते किं मुधा खिद्यसे
त्रातुं त्वां ससुरासुरे त्रिभुवने के वा मनः कुर्वते ।
मय्यस्मिन् परिपन्थिनि प्रकटितक्रोधान्धदिग्वारण-
स्थूलव्यायतदन्तकोटिकुलिशव्यालीढवक्षस्थले ॥ ६ ॥

विहाय तव स्वाभाविकं निशाचररूपं प्रकटीभवतीति भावः। अत्र वपुषो भीम कान्तविशेषणगतः कान्त शब्दो भूतपूर्वरामरूपेण रावणस्य सौम्यदर्शनत्वम्, भीम शब्दश्च रावणरूपेण तस्य क्रूरदर्शनत्वं प्रतिपादयति । मालिनी वृत्तम् ॥ ५ ॥

इत्थम्भूतोऽस्मि—राक्षसरूपेण परिणतोऽस्मि ।

अथ दशग्रीवः सीताम्प्रति स्वभयकारणत्वमपहरति—नाहमिति ॥ बन्धुरगात्रि अहम् ते भीतिविषयः न, मुधा किं खिद्यसे, अथवा किं खिद्यसे, यदि खिद्यसे तर्हि मुधा खिद्यसे इति वाक्यद्वयम् योजनीयम्, प्रकटितक्रोधान्धदिग्वारणस्थूलव्याय-तदन्तकोटिकुलिशव्यालीढवक्षःस्थले मयि परिपन्थिनि (वर्तमाने सति) ससुरासुरे अस्मिन् त्रिभुवने त्वाम् त्रातुम् के वा मनः कुर्वते इत्यन्वयः। बन्धुरगात्रि!= बन्धुरम् = सुन्दरम् गात्रम् = शरीरम् यस्याः तत्सम्बोधने, शोभनशरीरे इत्यर्थं अहम् = रावणः, ते = तव, भीतिविषयः न = भयदो न, किम् = केन हेतुना खिद्यसे = दुःखमनुभवसि, यदि खिद्यसे तर्हि मुधा = व्यर्थमेव खिद्यसे नास्ति किमपि तव खेदकारणमित्यर्थः, प्रकटितक्रोधान्धदिग्वारणस्थूलव्यायतदन्तकोटि कुलिशव्यालीढवक्षःस्थले = प्रकटितेन = प्रकाशितेन क्रोधेन = रोषेण, अन्धानाम् = दिग्वारणानाम् = दिग्गजानाम् स्थूलैः = पृथुलैः, व्यायतैः=विस्तृतैश्च दन्तकोटिभिः

रावण—(अपने को देखकर) मैं ऐसा क्यों हो गया ? देवि ! डरने की कोई बात नहीं ।

हे सुन्दर शरीर वाली सीते ! मैं तुम्हारे भय का विषय नहीं हूँ । तुम मुझसे व्यर्थ ही भय खाती हो । व्यक्त क्रोध से अन्धे दिग्गजों के मोटे और विस्तृत दांतों के अग्रभागरूपी वज्र से प्रतारित वक्षस्थल वाले मेरे विपरीत होने पर देवताओं और दैत्यों से परिपूर्ण इस संसार में तुम्हारी रक्षा करने की इच्छा कौन कर सकते हैं ॥ ६ ॥

(अर्थात् मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे चंगुल से तुम्हें बचाने का दुस्साहस कोई नहीं कर सकता)

सीता—अज्जउत्त ! परित्ताअहि परित्ताअहि, सोमित्ति ! परित्ताअहि परित्ताअहि मं। (आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व, सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व माम्।)

सूतः—किमनेन। स्वरूपमेव गृह्णामि। (तथा करोति)

सीता—हं, अअं वि ण कुमारो। (मुक्तकण्ठं रोदिति) हा ! अज्जउत्त ! हा ! कुमार ! हा ! मं रक्ख रक्खसहत्थादो। (हम्, अयमपि न कुमारः। हा ! आर्यपुत्र ! हा ! कुमार ! हा ! मां रक्ष राक्षसहस्तात्।)

(नेपथ्ये) अयमयमागच्छामि।

सूतः—आयुष्मन् ! पश्य पश्य—

तुण्डेनाङ्कुशसन्निभेन कनकस्तम्भश्रिया ग्रीवया

दशनाग्रैः कुलिशैः इव = वज्रैः इव व्यालीढम् = लक्षीकृतम् वक्षःस्थलम् = उरो यस्य तस्मिन्, मयि = रावणे, परिपन्थिनि = विरोधिनि वर्त्तमाने सति, ससुरासुरे = देवदैत्यसहिते, त्रिभुवने = त्रैलोक्ये, वा, के, त्वाम् = मद्वशमुपगतां भवतीम्, त्रातुम् = रक्षितुम्, मनः = चेतः, कुर्वते = कुर्वन्ति। पराक्रमशालिनि मयि वर्त्तमाने मदङ्कान्न कोऽपि त्वां रक्षितुं समर्थ इति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। लुप्तोपमा-काव्यलिङ्गाऽलङ्कारयोः संसृष्टिः॥ ६॥

अथ सूतो लक्ष्मणरूपमपास्य आयान्तं गृध्रराजं दृष्ट्वा रावणाय तदाक्रमणप्रकारं निवेदयति—तुण्डेनेति॥ अयम् गृध्रः अङ्कुशसन्निभेन तुण्डेन (सहितः)

सीता—आर्यपुत्र ! मेरी रक्षा करें, रक्षा करें। कुमार लक्ष्मण ! मुझे बचाओ मुझे बचाओ।

सूत—इससे क्या (अर्थात् लक्ष्मणवेष में रहने से क्या) अपने रूप को ही धारण करता हूँ।

(वैसा करता है)

सीता—अरे, यह भी लक्ष्मण नहीं है।
हा ! आर्यपुत्र ! हा लक्ष्मण ! राक्षस के हाथ से मेरी रक्षा करें।
(नेपथ्य में) यह यह मैं आता हूँ।
सूत—आयुष्मन् ! देखिये, देखिये—
अंकुश के समान चोंच से, सोने के स्तम्भ की शोभा वाली गर्दन से, मूंगे के टुकड़ों

दृष्ट्या विद्रुमभङ्गपाटलरुचा गृध्रोऽयमाक्रामति ।
संसर्गं सहसा व्रजन्ति विटपैरुद्भ्रान्तपुष्पाङ्कुरै-
राधूताः पथि यस्य पक्षपवनैरायामिनः पादपाः ॥ ७ ॥

सीता—हा ! का मे गई । किं मे सरणं । (हा ! का मे गतिः । किं मे शरणम् ।)

(नेपथ्ये)

शरणमस्मि जटायुरहं सखा
दशरथस्य रथस्तव तिष्ठतु ।

कनकस्तम्भश्रिया ग्रीवया (सहितः) विद्रुमभङ्गपाटलरुचा दृष्ट्या (सहितः) आक्रामति । पथि यस्य पक्षपवनैः आधूताः (अत एव) उद्भ्रान्तपुष्पाङ्कुरैः विटपैः (सहिताः) आयामिनः पादपाः सहसा संसर्गं व्रजन्ति इत्यन्वयः । अयं गृध्रः= अस्मदभिमुखमागच्छन् जटायुः, अङ्कुशसन्निभेन=सृणितुल्येन, तुण्डेन=मुखेन चञ्च्वेत्यर्थः (सहितः) कनकस्तम्भश्रिया=कनकस्य=हेम्नः यः स्तम्भः= खम्भः तस्य श्रीरिव श्रीः=शोभा यस्याः तया, ग्रीवया=कन्धरया, (सहितः) विद्रुमभङ्गपाटलरुचा=प्रवालखण्डरक्तशोभया, दृष्ट्या = नेत्रेण रोषारुणलोचनेनेत्यर्थः (सहितः) आक्रामति=आक्रमणं करोति, पथि=मार्गे, यस्य=गृध्रस्य, पक्षपवनैः=पतत्रवातैः, आधूताः=आकम्पिताः (अत एव) उद्भ्रान्तपुष्पाङ्कुरैः= उद्गतकुसुमाङ्कुरैः, विटपैः=शाखाभिः (सहिताः) आयामिनः=लम्बमानाः, पादपाः=वृक्षाः, सहसा=अकस्मात् , संसर्गम्=सम्बन्धम् सान्निध्यमिति यावत्, व्रजन्ति=गच्छन्ति, पादपाः परस्परमेकी भवन्तीत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । उपमाऽलङ्कारः ॥ ७ ॥

अथ जटायुः "किम्मेशरण" मिति सीताविलापं श्रुत्वा तां समाश्वासयति—शरणमिति ॥ दशरथस्य सखा अहम् जटायुः तव शरणम् अस्मि, रावण ! तव रथः तिष्ठतु, अहम् अविदुषाम् अपराधम् , सहे, वीरम् अनुव्रताम् विसृज इत्यन्वयः । दशरथस्य=अयोध्यानाथस्य, सखा=मित्रम् , अहं जटायुः=जटायुनामा गृध्रः,

---

के समान लाल कान्तिवाले नेत्र से युक्त यह गृध्र आक्रमण करता है । जिसके पंखों की हवाओं से हिलते हुए, अतएव गिरती हुई फूलों की कलियों वाली डालियों से युक्त वृक्ष सहसा आपस में मिल रहे हैं ॥ ७ ॥

सीता—हाय ! मेरी क्या दशा है ? मेरा कौन शरण है ? (नेपथ्य में) मैं दशरथ का मित्र जटायु शरण हूँ ।

अविदुषामपराधमहं सहे
विसृज रावण ! वीरमनुव्रताम् ॥ ८ ॥

रावणः—(प्रहस्य) सहते किलायं ममापराधं पक्षी । सूत ! प्रतोदप्रहारेण रथमार्गादेनमुत्सारय । न जानात्येष परमार्थतो मां गृध्रः ।

(नेपथ्ये) जानामि जानामि ।

कैलाससानुमति खण्डितमानशृङ्गं

रक्षितास्मि, इत्थं जनकतनयां समाश्वास्य दशमुखं निवारयति–रथ इत्यादिना । रावण !, तव = भवतः, रथः = स्यन्दनः, तिष्ठतु = अग्रे मा गच्छतु, तस्करवृत्तिमाश्रित्य रामस्य धर्मपत्नीमानैषीरित्यर्थः, अहम् = जटायुः, अविदुषाम् = त्वादृशानाम् अज्ञानाम् , अपराधम् = दोषम् , सहे = मर्षयामि, (किन्तु) वीरम् = जगदेकपराक्रमिणं पुरुषोत्तमं रामम् , अनुव्रताम् = सर्वात्मनाऽनुगताम् , सीताम् , विसृज = परित्यज । यतः स्वभावसिद्धा अज्ञानास्त्वादृशा अतोऽहं युष्माकमेकमपराधं क्षन्तुं शक्तः त्रिभुवनैकवीरो रामस्तु तवाऽपराधसहने सर्वथाऽसमर्थोऽतस्तदागमनात्प्रागेव जनकसुतां विसृज्य अपयाहीति भावः । द्रुतविलम्बितवृत्तम् ॥८॥

प्रतोदप्रहारेण ॥ प्रतोदः = कशा, तेन कृतः प्रहारः इति प्रतोदप्रहारः तेन कशाभिघातेनेत्यर्थः ।

अथ जटायू रावणविषयज्ञानप्रकारान् तदसामर्थ्यप्रदर्शनद्वारेण दर्शयति—कैलासेति ॥ राक्षस ! कैलाससानुमति खण्डितमानशृङ्गम्, कारागृहे अर्जुनेन चिरम् नियमितम्, वालिवालवलयाङ्कितबद्धबाहुम् जगत्त्रयधूमकेतुम् त्वाम्

हे रावण ! तुम्हारा रथ ठहरे । मैं मूर्खों के अपराध को सहन कर सकता हूँ । संसार के एकमात्र वीर राम में अनुरक्त (सीता) को छोड़ दो ॥ ८ ॥

रावण—(हँसकर) यह पक्षी मेरे अपराध को सहन करता है । सारथि ! चाबुक की मार से इसे रथ के मार्ग से नीचे हटा दो । यह गृध्र मुझे यथार्थ रूप में नहीं जानता है ।

(नेपथ्य में)

जानता हूँ । जानता हूँ ।

कैलास-पर्वत पर अपने सम्मान और प्रभुता को खोने वाले, अर्जुन के द्वारा

कारागृहे नियमितं चिरमर्जुनेन ।
त्वां वालिवालवलयाङ्कितबद्धबाहुं
जानामि राक्षस ! जगत्त्रयधूमकेतुम् ॥ ९ ॥

रावणः—हहह ! आः अतिवाचालोऽयं विहङ्गः ।

तिष्ठ त्वमत्र मम पश्यतु कर्म सीता
शस्त्रेण मे समरमूर्धनि दर्पणेन ।

जानामि अहमिति शेषः इत्यन्वयः। राक्षस != निशाचर !, कैलाससानुमति= एतन्नामके पर्वते, खण्डितमानशृङ्गम् = मानं च शृङ्गम् च इति मानशृङ्गे खण्डिते मानशृङ्गे यस्य तम् = तिरस्कृतसम्मानप्रभुत्वम्, अत्र शृङ्गशब्दः प्रभुत्व वाचकः, "क्रीडाम्बुयन्त्रे शृङ्गोऽस्त्री पर्वताग्रप्रभुत्वयोः" इति वैजयन्ती। तथाविध त्वां जानामीति सर्वत्र योज्यम्। कारागृहे = वन्धनालये, अर्जुनेन = कार्त्तवीर्येण चिरम्=चिरकालं यावत्, नियमितम् = संयमितम्, निवद्धमित्यर्थः, वालिवाल वलयाङ्कितबद्धबाहुम् = वालिनः = सुग्रीवाग्रजस्य कपिराजस्य वलयाकार वालः = केशः तेन कृतम् अङ्कितम् = वलयाकारम् किणरूपं चिह्नम् इति वालि वालवलयाङ्कितम् तेन बद्धाः = युक्ताः वाहवः = भुजाः यस्य तथाभूतम्, जगत्त्रय धूमकेतुम् = जगत्त्रयस्य = त्रिभुवनस्य धूमकेतुः = नाशसूचको दुष्टग्रहः तथा भूतम् त्रिभुवनविनाशसूचकग्रहविशेषमित्यर्थः, त्वाम् = रावणम्, जानामि= विशेषतोऽवगच्छामि। पूर्वोक्तोदाहरणेन तव पराक्रमो मया सम्यग्विदित इति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम्। रूपकालङ्कारः ॥ ९ ॥

अथ रावणः पक्षिराजोपालम्भवचनमाकर्ण्य पूर्वमाज्ञापितात् कशाभिघातात् सूतं निवारयन्नाह—तिष्ठ त्वमिति। (सूत) त्वम् अत्र तिष्ठ, सीता मे कर्म पश्यतु अहम् समरमूर्धनि दर्पणेन शस्त्रेण अद्रिम् महेन्द्र इव अम्बरस्थम् पक्षिणम् पक्षौ विलूय सहसा भुवि पातयामि इत्यन्वयः। (सूत !) त्वम्, अत्र = कशाघातकर्मणि तिष्ठ = विरम, अस्योपरि कशाघातम्मा कुरु इत्यर्थः, सीता=जानकी, मे = रावणस्य कर्म = पराक्रमम्, पश्यतु = साक्षादवलोकयतु, अहम्, समरमूर्धनि = संग्रामे

कारागृह में बन्दी वनाये जानेवाले, वलयाकार वालि के वालों से अंकित भुजावाले त्रिभुवन के विनाश के सूचक धूमकेतु, तुमको जानता हूँ ॥ ९ ॥

रावण—हहा, यह पक्षी तो बड़ा ही वाचाल है। ठहरो, सीता यहाँ पर मेरे पराक्रम को देखे। जिस प्रकार इन्द्र अपने वज्र से पर्वतों के पक्ष को काट कर गिराता है उसी प्रकार

अद्रिं महेन्द्र इव पक्षिणमम्बरस्थं
पक्षौ विलूय सहसा भुवि पातयामि ॥ १० ॥

(प्रविश्य)

जटायुः—भवतु, पश्यामस्तावत् ।

वक्त्राण्येतानि तेऽद्य प्रलयघनरुचः पिङ्गकेशानि रोषात्
शृङ्गाणीवाञ्जनाद्रेः दवदहनशिखादीपितानीव रात्रौ ।
उत्कृत्योत्कृत्य चञ्च्वा झटझटिति गलत्सान्द्ररक्तारुणानि
प्रत्यक्षं क्षत्रियाया दश दशसु दशग्रीव ! दिक्षु क्षिपामि ॥११॥

दर्पणेन—गर्वितेन, शस्त्रेण = आयुधेन, अद्रिम् = पर्वतम् महेन्द्र इव = इन्द्र इव, अम्बरस्थम् = आकाशवर्त्तिनम्, पक्षिणम् = जटायुम्, पक्षौ = पतत्रे, विलूय = छित्वा, सहसा = अकस्मात्, भुवि=पृथिव्याम्, पातयामि = अधःकरोमि। यथा देवराजः पक्षवन्तम् आकाशवर्त्तिनम् गिरिम् स्ववज्रेण पक्षौ छित्वा पृथिव्यामपातयत् तथाऽहमपि नभसि विद्यमानमेनं पक्षिणं समराङ्गणे शस्त्रेण पक्षौ विलूय धरायां पातयामीति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम्। पूर्णोपमाऽलङ्कारः ॥१०॥

अथ जटायुरपि वीरधर्ममाश्रित्य स्वपराक्रमं प्रकटयति = वक्त्राणीति ॥ दशग्रीव ! (अहम्) क्षत्रियायाः प्रत्यक्षम् ते पिङ्गकेशानि एतानि प्रलयघनरुचः अञ्जनाद्रेः रात्रौ दवदहनशिखादीपितानि शृङ्गाणि इव गलत्सान्द्ररक्तारुणानि दशवक्त्राणि रोषात् चञ्च्वा झटझटिति उत्कृत्योत्कृत्य दशसु दिक्षु क्षिपामि इत्यन्वयः। दशग्रीव ! = दशकन्धर, (अहम्) अद्य = साम्प्रतम्, क्षत्रियायाः = क्षत्रियकुलोत्पन्नायाः सीतायाः, प्रत्यक्षम् = समक्षम्, ते=तव, पिङ्गकेशानि = पिङ्गलवर्णकचानि, एतानि, प्रलयघनरुचः = प्रलयकालिकमेघकान्तेः, अञ्जनाद्रेः = नीलपर्वतस्य,

---

मैं भी अपने प्रचण्ड-शस्त्र से युद्ध में आकाश में विद्यमान इस पक्षी के पंखों को काटकर सहसा उसे पृथिवी पर गिराता हूँ ! ॥ १० ॥

जटायु—(प्रवेश कर के) अच्छा, तो मैं तुम्हें देखता हूँ। प्रलयकालीन मेघ की शोभा धारण किये तुम्हारे इन पीले केशोंवाले मुखों को क्रोध से, रात्रि में दावाग्नि की शिखा से जलते हुये नील-पर्वत के शिखरों की भाँति अपने चोंच से जल्दी नोंच-नोंच कर बहते हुए रुधिर की धारा से लिप्त करके क्षत्रिया अर्थात सीता के सामने ही दशों दिशाओं में फेंकता हूँ ॥ ११ ॥

सूतः—अयमयमाधावति ।

रावणः—आः तिष्ठेदानीम् ।

(उभौ युद्धं कुरुतः)

रावणः—एष प्रहरामि । (प्रहरति)

सीता—हद्धि, हद्धि । (हा ! धिक् , हा ! धिक् !) (नेत्रे निमीलयति)

सूतः—हन्त ! प्रहतोऽयं गृध्रः । अयमयम् ,

क्षतजजन्मकणोक्षितविग्रहः
श्रमनिरुद्धविभुग्नशिरोधरः ।

रात्रौ = निशायाम् , दवदहनशिखादीपितानि = दवदहनस्य=दावाग्नेः शिखाभिः= ज्वालाभिः, दीपितानि = प्रज्वलितानि प्रकाशितानीति यावत् , शृङ्गाणि=शिखराणि इव, गलत्सान्द्ररक्तारुणानि = गलत् = क्षरत् सान्द्रम्=घनीभूतम् रक्तम्=शोणितम् तेन अरुणानि = रक्तवर्णानि दशवक्त्राणि = दशसंख्यकमुखानि, चञ्च्वा = मुखाग्रेण, झटझटिति = यथाशीघ्रम् , उत्कृत्योत्कृत्य = मुहुर्मुहुः कर्तयित्वा लोके (नोंच-नोंच कर) दशसु = दशसंख्यकासु, दिक्षु = दिशासु, क्षिपामि = इतस्ततः विकीर्य प्रसारयामि । स्रग्धरावृत्तम् । उपमालङ्कारः ॥ ११ ॥

अथ सूतो रावणचन्द्रहासप्रहतस्याकाशात् पतनप्रकारं वर्णयति—क्षतजजन्मेति ॥ क्षतजजन्मकणोक्षितविग्रहः श्रमनिरुद्धविभुग्नशिरोधरः दिनविरामपयोधरपाटलः (अयम्) पत्ररथः मरुताम् पथः पतति इत्यन्वयः । क्षतजजन्मकणोक्षितविग्रहः = क्षतजात् = रुधिरात् जन्म = उत्पत्तिः येषाम् तथाभूतैः कणैः उक्षितः व्याप्तः लिप्तो वा विग्रहः = शरीरं यस्य एतादृशः, श्रमनिरुद्धविभुग्नशिरोधरः=

सूत—यह यह इधर ही झपटता है ।

रावण—अरे, अभी ठहरो । (दोनों युद्ध करते हैं)

रावण—यह प्रहार करता हूँ । (प्रहार करता है)

सीता—हाय, हाय, (दोनों आँखों को बन्द कर लेती है)

सूत—ओह, यह गृध्र मारा गया । यह यह रुधिर-कणों से व्याप्त शरीर वाला, अधिक प्रयास करने पर भी झुकी हुई गर्दन वाला, सायंकालिक मेघ के समान रक्तवर्ण वाला यह पक्षी वायुमार्ग से गिरता है ॥ १२ ॥

दिनविरामपयोधरपाटलः
पतति पत्ररथो मरुतां पथः ॥ १२ ॥

सीता—अहो ! अकरुणा खु इस्सरा। अधण्णाए मम किदे अअं वि विहंगो सोअणीओ संवुत्तो। (अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वराः। अधन्याया मम कृते अयमपि विहङ्गः शोचनीयः संवृत्तः।) (रोदिति)

रावणः—सूत ! तूर्णं चोदयाश्वान् !

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (विचिन्त्यात्मगतम्) एष खलु,

अनुकूलमर्थ्यमविरोधि हितं
श्रवणीयमागमरहस्ययुतम् !

श्रमेण = अतिप्रयासेन, निरुद्धा विभुग्ना = विनम्रा शिरोधरा = ग्रीवा यस्य तथोक्तः, शोणितलिप्तत्वात् दिनविरामपयोधरपाटलः = सायन्तनघनवद्रक्तः' एवम्भूतोऽयम् पत्ररथः = पक्षी, मरुताम् पथः = नभोमार्गात् आकाशादिति यावत्, पतति = अध आगच्छति। द्रुतविलम्बित वृत्तम्। लुप्तोपमालङ्कारः ॥ १२ ॥

अथ सूतो विहगराजवधसञ्जातानन्दस्यापि स्वामिनः सीताहरणवैफल्यं मन्यमानो राक्षसकुलोच्छेदहेतुत्वं निश्चित्य आत्मन्याह—अनुकूलमिति ॥ (एष रावणः) अनुकूलम्, अर्थ्यम्, अविरोधि, हितम्, श्रवणीयम्, आगमरहस्ययुतम्, मदीयम्, वचनम्, अपकर्णयति, मनोभवः क्व, गुणसंग्रहणम् क्व, इत्यन्वयः। एष रावणः, अनुकूलम् = ऐहिकफलानुगुणम्, अर्थ्यम् = अर्थात् अनपेतम् सार्थमिति यावत्. अविरोधि = धर्मार्थकामानाम् अनुपघातकम्, हितम् = परलोकाविरुद्धम् (अतएव) श्रवणीयम् = श्रोतुं योग्यम्, आगमरहस्ययुतम् = आगमः = अर्थशास्त्रम् तद्रहस्यम् = तत्प्रतिपाद्योऽर्थः तेन युतम्=सहितम्, मदीयम् मत्सम्बन्धि, वचनम् = वचः, अपकर्णयति = अश्रुतं करोति। नाद्रियते

सीता—हाय। भगवान् बड़े ही निर्दय हैं। मुझ अभागिनी के लिये इस पक्षी ने भी चिन्तनीय दशा को प्राप्त किया। (रोती हैं)।

रावण—सारथि ! शीघ्र घोड़ों को बढ़ाओ।

सूत—आयुष्मान् की जो आज्ञा। (सोचकर मन ही मन) यह तो—अर्थ से युक्त,

वचनं मदीयमपकर्णयति
क्व मनोभवः क्व गुणसंग्रहणम् ॥ १३ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति शक्तिभद्रविरचिते चूडामणिनाटके
चतुर्थोऽङ्कः ।

इत्यर्थः, एवम्भूतलाभप्रदवचनस्यानादरे कारणमाह—क्व मनोभव इति । मनोभवः= कामदेवः, क्व=कुत्र, गुणसंग्रहणम्=गुणानाम्=दयादाक्षिण्यादीनाम् संग्रहणम्= सम्यग्ग्रहणम् , क्व=कुत्र, उभयोः सामानाधिकरण्याभावोऽत्र दर्शितः । यतो ह्यय मदनपरवशो भूत्वा गुणदोषौ न विचारयत्यतोऽत्र किमप्युपदेशवचो व्यर्थमेवेति भावः। प्रमिताक्षरावृत्तम् । विषमालङ्कारः ॥ १३ ॥

अस्मिन्नङ्के कविना शृङ्गाररसाभासः रौद्ररसश्च रावणगतः, रौद्ररसकार्यो भयानकः सीतागतः दर्शितः । अत्र प्रकरीसंज्ञकमितिवृत्तमुपन्यस्तम् ।

इति आश्चर्यचूडामणे 'रमा' टीकायां चतुर्थोऽङ्कः ।

अविरुद्ध, हितप्रद, अनुकूल और वेद के रहस्य से युक्त सुनने योग्य मेरे वचन की उपेक्षा करता है । कहाँ कामदेव और कहाँ गुणों का संग्रह ! ॥ १३ ॥

विमर्श—रावण का सारथी सद्बुद्धि से प्रेरित होकर अपने स्वामी के पापाचरण से दुःखी होता है और यह महसूस करता है कि सम्प्रति कामविह्वल रावण उसके हितप्रद वचन को नहीं मान कर अपना अनिष्ट-मार्ग प्रशस्त कर रहा है । (सभी जाते हैं)

चतुर्थ अङ्क समाप्त ।

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति मण्डोदरी चेटी च)

मण्डोदरी—किं णु खु एदं वि भविस्सदि। (किं नु खल्वेतदपि भविष्यति।)

चेटी—अणुदावोग्गारं विअ भट्टिणीए वअणं। (अनुतापोद्‌गार इव भट्टिन्या वदनम्।)

मण्डोदरी—हञ्जे ! णं तुए असोअवणिआ पविट्ठपुव्वा। (हञ्जे ! ननु त्वया अशोकवनिका प्रविष्टपूर्वा।)

चेटी—णं तहिं भट्टिणो वन्दी तापसपदिणी। किं तिस्से। (ननु तत्र भर्तुर्बन्दी तापसपत्नी। किं तस्याः।)

मण्डोदरी—तंणिमित्तं णो विणासं पेक्खामि। (तन्निमित्तं नो विनाशं प्रेक्षे।)

यत्कृपा·कौमुदी नित्यं प्रकाशयति मे मनः।
नौमि तं परमानन्दं 'रामदेव-' गुरोः पदम्॥

अथ कविर्वृत्तवर्त्तिष्यमाणेतिवृत्तसूचनाय अर्थोपक्षेपकान्तर्गतप्रवेशकमारभते। अथ दशकन्धरेण अशोकवाटिकामानीतायां जानक्याम्मण्डोदरी नाम बहुमता लङ्केश्वर·कान्ता दुःस्वप्नदर्शनेन दुर्मनायमाना चिन्तयति–किन्तु खल्विति॥ एतत्= बुद्धिस्थं स्वप्नदर्शनं ध्वन्यते। किन्तु खलु भविष्यति=किमनिष्टफलं परिणंस्यते। अनुतापोद्‌गार इव=उद्‌गीर्यते अनेन इति उद्‌गारः, अनुतापस्य=सन्तापस्य उद्‌गारः=निःसारणम्, तवाननम् महान्तं परितापं सूचयतीत्यर्थः।

(उसके बाद मन्दोदरी और दासी प्रवेश करती है)

मन्दोदरी—क्या यह भी होगा ?

दासी—स्वामिनी के मुख से दुःख का आभास मिलता है।

मन्दोदरी—अरी, क्या तुम पहले अशोक वाटिका गयी है ?

दासी—हाँ; वहाँ पर स्वामी द्वारा बन्दी बनायी गयी तपस्वी की स्त्री है। उससे क्या ?

मन्दोदरी—हम लोगों के विनाश का कारण वही है, ऐसा मुझे लगता है।

चेटी—भट्टिणि ! ण कदाइ सद्दूलं मिईणं विस्संभो आसी। जह आअदा तह गमिस्सदि। णं भट्टिणी एव्व लङ्केसरी। (भट्टिनि ! न कदापि शार्दूले मृगीणां विस्रम्भ आसीत् ! यथागता तथा गमिष्यति। ननु भट्टिन्येव लङ्केश्वरी।)

मण्डोदरी—उम्मत्तिएव्व तुमं परिइदा वि भावं मे णाववुज्झसि। मए असोहणं दाणिं सिविणओ दिट्ठो। (उन्मत्तेव त्वं परिचितापि मे भावं नाववुध्यसे। मयाशोभनमिदानीं स्वप्नो दृष्टः।)

चेटी—संति होदु, संति होदु। भणादु भट्टिणी। (शान्तिर्भवतु शान्तिर्भवतु। भणतु भट्टिनी।)

मण्डोदरी—हञ्जे ! सुणाहि दाव। (हञ्जे ! शृणु तावत्।)

चेटी—अवहिदम्हि। (अवहितास्मि।)

मण्डोदरी—आसामुहविअअविप्फुरिअवीईसहस्सो मरअदगिरिणिअरणीलो उब्भंदतिमितिमिङ्गलमाअङ्गमअराअरो इदो तदो आपदिदेहिं तिणजादीहिं णिवीदसारो मुहुत्तएण रित्तओ संवुत्तो। (आशामुखवि-

---

भट्टिनीति ॥ नाट्ये चेट्या स्वामिनी भट्टिनी शब्देन सम्बोध्यते, चेटी च हञ्जे हण्डे इत्यादिना। न कदापीति ॥ शार्दूले=सिंहे, मृगीणाम्=मृगवधूनाम्, विश्रम्भः= विश्वासः, न कदाचिदपि=न कथमपि आसीत्। एवमेव मानुषीणां राक्षसेषु विश्वासो न भवत्यतो भवत्या राजमहिषीपदमक्षुण्णमेवेति भावः।

अथ मण्डोदरी दुःस्वप्नं वर्णयति—आशामुखेति ॥ आशामुखेषु=समुद्रगतेषु

दासी—स्वामिनि ! सिंह में हरिणी का विश्वास नहीं हो सकता। जैसे आयी है वैसे ही चली जायेगी। आप ही लंका की महारानी हैं।

मन्दोदरी—परिचित होकर भी मेरे भावों को पागल की भाँति तुम नहीं समझती हो। मैंने इस समय अशोभन स्वप्न देखा है।

दासी—शान्ति हो शान्ति हो। स्वामिनि। कहिये !

मन्दोदरी—अरी, तो सुनो।

दासी—सावधान हूँ (अर्थात् सुन रही हूँ)

मन्दोदरी—समुद्रगत दिशाओं में व्याप्त, उठते हुए हजारों तरंगों से युक्त, मरकतमणि के पर्वत समूह के समान नीला, तिमिङ्गिल, मातङ्ग और मकरादि जलजन्तुओं

ततविस्फुरितवीचीसहस्रो मरकतगिरिनिकरनीलः उद्भ्रान्ततिमितिमिङ्गिलमातङ्गमकरो मकराकर इतस्तत आपतितैः तृणजातिभिः निपीतसारो मुहूर्तेन रिक्तः संवृत्तः ।)

चेटी—हद्धि, तदो तदो । (हा ! धिक्, ततस्ततः ।)

मण्डोदरी—अहं वि दाव पंसुपरुसकेसकलापाए विरलदसणविकिदवदणाए विप्फुलिङ्गणअणाए सुण्णकण्णाए कपालवण्णाए असंगलाए कआ वि इत्थिआए गाढं परिस्सत्तम्हि । (अहमपि तावत् पांसुपरुषकेशकलापया विरलदशनविकृतवदनया विस्फुलिङ्गनयनया शून्यकर्णया कपालवर्णया अमङ्ग-

---

दिङ्मुखेषु (सर्वत्र) विततम् = व्याप्तम् , विस्फुरितम् = प्रकाशितञ्च, वीचीसहस्रम् = ऊर्मिसहस्रम् , यस्य एतादृशः (मकराकरः रिक्तः सम्वृत्तः इति अग्रिमग्रन्थेनान्वयः) मरकतगिरिनिकरनीलः = मरकतमणिमयपर्वतसमूहवत्कृष्णवर्णः, उद्भ्रान्ततिमितिमिङ्गिलमातङ्गमकरः=उत्=साहङ्कारम् भ्रमन्तः=इतस्ततो गच्छन्तः, तिमयः = योजनमायाताः मत्स्यविशेषाः, तिमिङ्गिलाः = तिमिभक्षकमत्स्यविशेषाः, मातङ्गाः = तिमिङ्गिलभक्षकाः मत्स्यविशेषाः, मकराश्च = मातङ्गभक्षकाः जलगजाश्च यस्मिन् स मकराकरः = समुद्रः, इतस्ततः आपतितैः = निपतितैः = तृणजातिभिः= कृमिजातिभिः, निपीतसारः = आपीतसलिलः सन् , मुहूर्तेन = क्षणेन, रिक्तः = शून्यः, सम्वृत्तः = सञ्जातः । अत्र मकराकरशब्दः यातुधानसैन्यमभिव्यनक्ति । अथ च तिमिङ्गिलादिशब्दैः कुम्भकर्णमेघनादादयो रक्षोनायकादयः प्रतीयन्ते । तथा च सञ्जातसलिलशून्यजलधिवर्णनेन लङ्कायां लङ्केश्वरसैन्यविनाशः सूच्यते ।

अहमपीति ॥ अहमपि = मण्डोदरी अपि, तावत्—तस्मिन्काले, पांसुपरुषकेशकलापया = पांसुभिः = रजोभिः, परुषः = रूक्षः, केशकलापः = कचभारः यस्याः तया, विरलदशनविकृतवदनया = विरलदशनैः = अनिविडदन्तैः, विकृतम् = विरूपीकृतम्, वदनम् = मुखं यस्याः तया, त्रिचतुरदन्तविकृताननया इत्यर्थः, विस्फुलिङ्गनयनया = निःसरदग्निकणलोचनया, शून्यकर्णया = श्रवणरहितया, कपालवर्णया = कपालवत् कृष्णवर्णया, असङ्गलया = अशुभया, कयापि

से युक्त समुद्र, इधर उधर भटकने वाले क्षुद्र जन्तुओं से जल के पी लेने पर कुछ देर के लिये शून्य हो गया। (जल के अभाव में सागर खाली पड़ गया।)

दासी—हाय, तब क्या हुआ ?

मन्दोदरी—मैं भी धूलि से धूसरित अतएव रूखे केश-समूह वाली कुछ ही दाँतों के कारण कुरूप मुखवाली, चिनगारी उगलती आँख वाली बिना कान वाली तथा कपाल

लया कयापि स्त्रिया गाढं परिष्वक्तास्मि ।)

चेटी—हद्धि, तदो तदो । (हा ! धिक्, ततस्ततः ।)

मण्डोदरी—सा वि सीदा पण्डुरदुऊलपरिधाणा मलअजरसपरिसोहिअपओहरा मल्लिआकुसुमवड्ढिअधम्मिल्ला पदिणा दिण्णहत्था पुप्फअं आलुहंती अ मए दिट्ठा । तदो अपरिइदवेलाएमम णिद्दा वि संवुत्ता। (सापि सीता पाण्डुरदुकूलपरिधाना मलयजरसपरिशोभितपयोधरा मल्लिकाकुसुमवर्धितधम्मिल्ला पत्या दत्तहस्ता पुष्पकमारोहन्ती च मया दृष्टा ! ततः अपरिचितवेलायां मम निद्रापि संवृत्ता ।)

स्त्रिया = कयापि नार्या, गाढम् = दृढम् , परिष्वक्तास्मि = आलिङ्गितास्मि, केनापि अशुभरूपेण नारीजनेन दृढमालिङ्गिताऽहमिति भावः। अनेन राजमहिष्याः वैधव्यसूचिका दुर्दैवताऽभिव्यज्यते ।

अथ मण्डोदरी स्वपक्षाऽमङ्गलं सूचयित्वा परपक्षमाङ्गल्यं सूचयति—सापि सीतेति ।। पाण्डुरदुकूलपरिधाना = पाण्डुरञ्च तद्दुकूलम् इति पाण्डुरदुकूलम् श्वेताम्बरमित्यर्थः, तदेव परिधानम् = अधोंऽशुकम् यस्याः सा श्वेताम्बरवसना, मलयजरसपरिशोभितपयोधरा = मलयजरसैः = चन्दनरसैः परिशोभितौ = अतिशोभितौ पयोधरौ=कुचप्रदेशौ यस्याः सा चन्दनरसातिशोभितस्तना, मल्लिकाकुसुमवर्धितधम्मिल्ला = मल्लिकाकुसुमैः = बेलाख्यपुष्पविशेषैः वर्धितः = सम्वर्धितः धम्मिल्लः = संयतकचाः, "धम्मिल्लः संयताः कचाः" इत्यमरः, यस्याः सा मल्लिकाख्यपुष्पसम्वधितसंयतकचा, पत्या = स्वस्वामिना, दत्तहस्ता = दत्तकरा, पुष्पकम् = पुष्पकविमानम् , आरोहन्ती = आरोहणं कुर्वती पुष्पकमारुह्य गच्छन्तीत्यर्थः, मया= मण्डोदर्या, दृष्टा = अवलोकिता । सीतायाः पाण्डुरदुकूलादिविशेषणत्रय उपात्तं धावल्यं तन्माङ्गल्यसूचकम् ।

अर्थात् काले रंग की किसी अशुभ स्त्री से कस कर आलिङ्गत हुई हूँ ।

दासी—हाय, तब क्या हुआ ?

मन्दोदरी—स्वच्छ-वस्त्र धारण की हुई चन्दन-रस से सुशोमित स्तनप्रदेश वाली, मल्लिका के फूलों से बढ़े हुये रोमों वाली, पति के हाथों का सहारा लिए पुष्पक-विमान पर चढ़ती हुई उस सीता को भी मैंने देखा ।

उसके बाद असमय में मेरी नींद भी खुल गयी ।

चेटी—भट्टिणि ! मा मा अणुसएण । सिविणाणं बहूणि कारणाणि बज्जा उपदिसंति । अहवा कुदो दाणिं भअं भअमूलाणं तेलोक्कस्स अम्हाणम् । (भट्टिनि ! मा मानुशयेन । स्वप्नानां बहूनि कारणानि वैद्या उपदिशन्ति । अथवा कुत इदानीं भयं भयमूलानां त्रैलोक्यस्य अस्माकम् ।)

(नेपथ्ये)

गन्धापार्द्रदलां सृजन्तु परितो वृष्टिं घनाः कौसुमी-
माधूतामरसिन्धुवीचिवलयः स्वर्गानिलो जृम्भताम् ।

अथ चेटी राजमहिषीमाश्वासयति—मा मा इति ॥ अनुशयेन = सन्तापेन, त्वया सन्तापो न कर्त्तव्य इत्यर्थः । त्रैलोक्यस्य = त्रिभुवनस्य, भयमूलानाम् = भीतिकारणानाम् , अस्माकम् = राक्षसकुलानाम् , कुतः = कस्मात् , इदानीम् = साम्प्रतम् , भयम् = भीतिः, अस्तीति शेषः । वयमेव त्रिभुवनवासिनां कृते भयदा अतो नास्ति तेभ्योऽस्माकं भीतिशङ्का ।

अथाग्रे कविर्वृत्तकथांशं संसूच्य प्रवेशकमध्ये चूलिकया वर्त्तिष्यमाणं कथांशं संसूचयति । कश्चिद्राक्षसो घनादीन् प्रति दशकन्धरस्य आज्ञां विज्ञापयति—गन्धापार्द्रेति ॥ घनाः परितः गन्धापार्द्रदलाम् कौसुमीम् वृष्टिम् सृजन्तु । आधूताऽमरसिन्धुवीचिवलयः स्वर्गानिलः जृम्भताम् , सर्वे वसन्तादयः समयाः उद्यानश्रियम् उद्वहन्तु, शशी ककुभाम् चक्रम् स्वान् पादान् सुखम् आनमय्य पर्येतु इत्यन्वयः । घनाः = मेघाः, परितः = समन्तात् , गन्धापार्द्रदलाम् = परिमलबहलमकरन्दसिक्तपत्राम् , कौसुमीम् = पुष्पसम्बन्धिनीम् , वृष्टिम् = वर्षणम् , सृजन्तु = उत्पादयन्तु । आधूतामरसिन्धुवीचिवलयः = आधूताः = आलोडिताः अमरसिन्धोः = स्वर्गङ्गायाः, वीचयः = ऊर्मयः, ताः एव वलयः = कटकः यस्य एवम्भूतः, स्वर्गानिलः = सुरलोकपवनः, जृम्भताम् = वर्धताम् । सर्वे वसन्तादयः = वसन्तप्रमुखाः,

---

दासी—स्वामिनि ! शोक न करें । वैद्य लोग स्वप्न के बहुत से कारण बताते हैं । अथवा सम्पूर्ण संसार के भय के प्रधान कारण हम लोगों को किससे डर ?

(नेपथ्य में)

मेघ परागमिश्रित मरकरन्द-रस से गीले पत्तों से युक्त फूलों की वर्षा करें । स्वर्ग के पवन स्वच्छ आकाश-गंगा के तरङ्ग समूह को बढ़ावें । वसन्त प्रभृति सभी ऋतुयें एक

उद्यानश्रियमुद्वहन्तु समयाः सर्वे वसन्तादयः
स्वान् पादान् सुखमानमय्य ककुभां पर्यैतु चक्रं शशी ॥१॥

मण्डोदरी—हं, घोसणा विअ। (हम्, घोषणेव।)

चेटी—भट्टिणि ! आम्। (भट्टिनि ! आम्।)

मण्डोदरी—हञ्जे ! इमस्स मूलं दाव जाणीहि। (हञ्जे ! अस्य मूलं तावत् जानीहि।)

चेटी—भट्टिणि ! तह। (निष्क्रान्ता) (भट्टिनि ! तथा।)

मण्डोदरी—किं एत्थ विआरिदव्वं तिस्से भूमिगोअरीए चित्तविलोहणणिमित्तो खु महाराअस्स अअं आरंभो। (किमत्र विचारयितव्यं तस्याः भूमिगोचरायाः चित्तविलोभननिमित्तः खलु महाराजस्यायमारम्भः।)

समयाः=ऋतवः, उद्यानश्रियम्=आक्रीडशोभाम्, उपवनकान्तिमिति यावत्, उद्वहन्तु=धारयन्तु। शशी=चन्द्रः, स्वान्=आत्मीयान्, पादान्=किरणान्, सुखम् आनमय्य=सुखपूर्वकं विस्तार्य, ककुभाम्=दिशाम्, चक्रम्=मण्डलम् पर्यैतु—प्राप्नोतु। यथा बन्धनादुन्मुक्तः कश्चिज्जनः सुखसञ्चाराय पादव्यायाम करोति तथा चन्द्रोऽपि लङ्केश्वरबन्धनमोचितः सन् स्वकिरणान् सर्वत्र स्वेच्छया प्रसारयतु इति भावः। अनेन सीताविलोभनसामग्रीसम्भारसंग्रहार्थं रक्षोनाथस्य महानुद्योगः सूचितः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। श्लेषालङ्कारः॥ १॥

भूमिगोचरेति॥ भूमिः=पृथ्वी गोचरः=आश्रयः यस्याः तथाभूतायाः। अनेन विद्यमानास्वपि सुराङ्गनासु साधारणमनुष्यस्त्रीविषयानुरागः कष्टप्रदः।

ही समय पुष्पवाटिका की शोभा को धारण करें। चन्द्रमा भी अपनी किरणों को फैलाकर दिशाओं को आनन्दित करे॥ १॥

मन्दोदरी—हैं, यह तो घोषणा मालूम पड़ती है।

दासी—हाँ महारानी।

मन्दोदरी—इसके कारण का पता लगाओ।

दासी—अच्छा महारानी। (जाती है)

मन्दोदरी—इस विषय में क्या विचारणीय है ? उसी मनुष्यपत्नी सीता को लुभाने के लिये महाराज का यह आरंभ है।

(प्रविश्य)

चेटी—जेदु भट्टिणी । (जयतु भट्टिनी ।) [कर्णे] एव्वं विअ । (एवमिव ।)

मण्डोदरी—तव आआसमेत्तं किदं । दाणिं किं करोदि महाराओ । (तव आयासमात्रं कृतम् । इदानीं किं करोति महाराजः ।)

चेटी—तिरुसे दंसणणिमित्तं पादोसिअं दाणिं वेसं अणुचिट्ठदि भट्टा । (सीतायाः दर्शननिमित्तं प्रादोषिकमिदानीं वेषं अनुतिष्ठति भर्ता ।)

मण्डोदरी—तेण हि हला ! एहि दाव महाराएण अविण्णादाओ असोअवणिआं पविसिअ, लदावलअन्तरिदाओ भविअ, तस्सिं अकामअमाणाअं सीदाअं महाराअस्स कामुअवत्तिणं पेक्खिअ ओहसिस्सामो । (तेन हि हला ! एहि तावत् महाराजेनाविज्ञाते अशोकवनिकां प्रविश्य, लतावल-

---

तव आयासमात्रमिति ॥ मया ज्ञातमेव वृत्तं त्वया निवेदितं न किञ्चिन्नूतनमतस्तव गमनमायासमात्रमिति बोध्यम् ।

प्रादोषिकम् वेषम् ॥ प्रदोषः = रजनीमुखम् , तत्कालिकम् = सायन्तनम् वेषम् = नेपथ्यम् , अनुतिष्ठति = आचरति । सायङ्कालोचितवेषावृतो भूत्वा सीतादर्शनसमुत्सुक इव राजा लक्ष्यते इति भावः ।

तेन हि हलेति ॥ आवां राज्ञा अविज्ञाते सत्यौ अशोकवाटिकायां प्रविश्य तत्र च लतासु प्रच्छन्ने भूत्वा महाराजं पतित्वेन स्वीकर्त्तुं कामनारहितायां जानक्यां भर्त्तुः कामव्यापारं प्रेक्ष्योपहासं करिष्याव इति मण्डोदर्य्याः स्फुटोऽर्थः ।

इति आश्चर्यचूडामणे रमाटीकायां प्रवेशकः ॥

दासी—(प्रवेश करके) महारानी की जय हो । (कान में) ऐसा है ।

मन्दोदरी—तुमने केवल परिश्रम ही किया । (इसे तो मैं भी जान गयी) इस समय महाराज क्या करते हैं ?

दासी—सीता को देखने के लिये इस समय सायंकालिक वेष (वस्त्राभूषण) धारण करते हैं ।

मन्दोदरी—अच्छा तो चलो, हम दोनों महाराज को विना सूचित किए अशोकवाटिका में जाकर लतासमूह में छिप कर महाराज में अभिलाषा नहीं रखने वाली सीता

यान्तरिते भूत्वा, तस्मिन्नकामयमानायां सीतायां महाराजस्य कामुकवृत्तिं दृष्ट्वा अपहसिष्यावः ।

चेटी—जं भट्टिणी आणवेदि । (यद्भट्टिन्याज्ञापयति ।)

(निष्क्रान्ते)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति कामयमानावस्थः सपरिवारो रावणः)

रावणः—(स्पर्शं निरूप्य) वर्षवर ! मया चिरान्निर्वासितस्य दिवाकरस्य लङ्कायां कः प्रसङ्गः । तूर्णमाहूयताममात्यश्चित्रयोधी ।

वर्षवरः—(आत्मगतम्) अहो नु खलु स्वामिनो महान् मदनोन्मादः

यदेष दोषातनमीक्षणाना-
मानन्दमान्दोलितसागरोर्मिम् ।

अथ रावणः सीताचित्तविलोभनाय उज्ज्वलवेषाभरणादिभिश्शोभनतमो भूत्वा अशोकवाटिकां गच्छति । तत्र च मदनाकुलः सन् शशिनं भास्करम्मन्यमानो वर्षवरमभिमुखीकृत्य कथयति—वर्षवरेति ॥ अन्तःपुरसहायकनपुंसकपुरुषो वर्षवरः निर्वासितस्य = बलाद्दूरीकृतस्य, प्रसङ्गः = प्रस्तावः । मया निर्वासितोऽपि सूर्यः कथमागत इति भावः ।

अथ वर्षवरः स्वामिनो मन्मथोन्मादकृतां चन्द्रमसि सूर्यभ्रान्तिं निश्चित्य सविषादमाह—अहो इति ॥

उन्मादस्यातिकष्टत्वमुपपादयति—यदेषेति ॥ यत् एषः दोषातनम् ईक्षणानाम् आनन्दम् आन्दोलितसागरोर्मिम् तुषारनिस्यन्दसुखैः मयूखैः स्पृशन्त

के प्रति उनकी वासना-वृत्ति को देख कर उन पर हँसेंगी ।

दासी—स्वामिनी की जो आज्ञा । (दोनों जाती हैं)

प्रवेशक समाप्त ।

(उसके बाद परिवार के साथ कामदेव के वशीभूत रावण प्रवेश करता है)

रावण—(स्पर्श का अनुभव करके) वर्षवर ! बहुत दिनों से मेरे द्वारा भगाए सूर्य की लंका में क्या आवश्यकता है ? शीघ्र ही अमात्य चित्रयोधी को बुला लाओ ।

वर्षवर—(मन ही मन) अहो, स्वामी को काम का विकार तो बहुत है ।

जो यह, रात्रि में उदीयमान, देखने वालों को आनन्दित करने वाले समुद्र की लह

न वेद शीतांशुमपि स्पृशन्तं
तुषारनिष्यन्दसुखैर्मयूखैः ॥ २ ॥

रावणः—किं विलम्बसे ।

वर्षवरः—यदाज्ञापयति स्वामी । (आत्मगतम्) न खलु व्याधेरीदृशस्य भिषजो मन्त्रिणः । (निष्क्रान्तः)

रावणः—(विचारयन् निरीक्ष्य) न भानुरेषः । मया दत्ताभयश्चन्द्रमाः । कुतः,

आतपत्यविदुषाममृतांशु-
मंशुमन्तमपि रश्मिसहस्रे ।

शीतांशुम् अपि न वेद (अतस्तस्य महान् मदनोन्मादः, इति उपर्युक्तगद्यग्रन्थेनान्वयः) इत्यन्वयः । यत् = यस्मात्, एषः = अस्मत्स्वामी लङ्केश्वरः, दोषातनम् = दोषा = रात्रिः तत्र भवतीति दोषातनः तम्, निशायामुदयमानम् इति यावत्, ईक्षणानाम् = लोचनानाम्, आनन्दम् = सुखकारणम्, नयनसुखकरमित्यर्थः, आन्दोलितसागरोर्मिम् = आन्दोलिताः = उद्वेलिताः सागरस्य = समुद्रस्य, ऊर्मयः = वीचयः येन तम्, विलोडिताम्बुधितरङ्गम्, तुषारनिष्यन्दसुखैः = हिमनिष्यन्दसुखकरैः, मयूखैः = रश्मिभिः, स्पृशन्तम् = स्पर्शं कुर्वन्तम्, शीतांशुम् अपि = चन्द्रमपि, न वेद = न जानाति, सूर्यत्वेन अभिमन्यते इति भावः । यतो ह्ययं रात्रौ उदयमानं निशाकरमपि विवृद्धविरहसन्तापः सन् भास्करं मन्यते अतोऽस्य मदनोन्मादः कष्टतम एवेति भावः । उपजाति वृत्तम् ॥२॥

अथ दशग्रीवश्चन्द्रमण्डलान्तर्गतं कलङ्कमवलोक्य चन्द्रोऽयमिति निश्चित्याह—न भानुरिति ॥ सूर्याच्चन्द्रस्य पार्थक्यसूचकत्वमुपपादयति—आतपेति ॥ रश्मिसहस्रे

को चंचल करने वाले सुखप्रद शीतल-किरणों का स्पर्श करते हुए चन्द्रमा को भी नहीं जानते हैं । (अर्थात् मदनावेग के कारण चन्द्रमा को ही सूर्य समझ बैठे हैं) ॥ २ ॥

रावण—देर क्यों कर रहे हो ?

वर्षवर—स्वामी की जो आज्ञा । (मन ही मन) इस प्रकार के रोग की दवा मंत्री नहीं हो सकते ।

रावण—(देखकर विचार करता हुआ) यह सूर्य नहीं है । मुझ से अभयदान पाने वाला चन्द्रमा है । क्योंकि—हजारों किरणें यदि सन्ताप देने लगें तब चन्द्रमा और

रागिणां भवति लक्षणमिन्दो-
रिन्द्रनीलशकलच्छविलक्ष्म ॥ ३ ॥

[विचिन्त्य] स्वयं कृतमिदं व्यसनम् ।

न रश्मिभिर्ग्लपयति यो दिगन्तरे
सरोरुहाण्यपि मम शासनादृते ।

आतपति (सति) अमृतांशुम् अंशुमन्तम् अपि अविदुषाम् रागिणाम् इन्द्रनील-शकलच्छवि लक्ष्म इन्दोः लक्षणम् भवति इत्यन्वयः। रश्मिसहस्रे = (अमृतांशोः अंशुमतश्च) किरणसहस्रे, आतपति = विरहिजनान् सन्तापयति (सति) अमृतांशुम् = सुधांशुम्, इन्दुमित्यर्थः। अंशुमन्तम् = रश्मियुतम्, सूर्यमित्यर्थः। अपि = च। अविदुषाम् = तत्त्वतः पार्थक्येन अजानताम्, रागिणाम् = विरहिणाम्, प्रियावियुक्तानामिति यावत् (कृते) इन्द्रनीलशकलच्छविलक्ष्म = इन्द्रनीलमणेः शकलम् = खण्डम् तस्य छविरिव छविः = शोभा यस्य तथाभूतं यत् लक्ष्म = चिह्नम् तदेव इन्दोः = चन्द्रस्य, लक्षणम् = विविच्य अवधारणे प्रमाणं भवति। कामिनीविरहजनितसन्तापाऽऽकुलीकृतचेतसां जनानाम् सूर्यचन्द्रयोः सन्देहा-वसरे चन्द्रमण्डलान्तर्गतः कलङ्क एव भास्कराच्चन्द्रं पृथक्करोतीति भावः। स्वागता वृत्तम् ॥ ३ ॥

कामसन्तापमसहमानो दशग्रीवः स्ववशंवदस्यापि चन्द्रस्य आत्मनः अपेक्षया बलवत्त्वं प्रतिपादयति—न रश्मिभिरिति ॥ यः मम शासनात् ऋते दिगन्तरे सरोरुहाणि अपि रश्मिभिः न ग्लपयति स चन्द्रमाः सम्मुखेन माम् वितपति,

---

सूर्य को न समझने वाले विरही के लिए चन्द्रमा का परिचायक, काले इन्द्रनीलमणि के टुकड़ों की शोभा वाला उसका कलंक ही है ॥ ३ ॥

विमर्श—जब कोई व्यक्ति कामदशा से विक्षिप्त रहता है और उस समय सहस्रों किरणें उसे सन्तापित करती हैं तो वह सूर्य और चन्द्रमा के भेद को भूल जाता है। उस अवस्था में सूर्य से चन्द्रमा को पृथक करने वाला उसका कलंक ही होता है। चन्द्रमागत कलंक को देख कर विरही को सूर्य और चन्द्रमा के भेद का ज्ञान हो जाता है। रावण की भी सम्प्रति यही दशा है। उसे भी चन्द्रमा में सूर्य का भ्रम हो गया है किन्तु उसके कलंक को देखकर उसका भ्रम मिट जाता है। प्रस्तुत श्लोक में कामियों की विक्षिप्तावस्था का सुन्दर चित्रण किया गया है।

(सोचकर) इस दुःख को तो मैंने स्वयं लाया है। मेरी आज्ञा के विना जो चन्द्रमा किसी दिशा-विशेष में अपनी किरणों में कमलिनियों को भी संकुचित नहीं

स चन्द्रमा वितपति सम्मुखेन मा-

मवस्थया बलमबलोऽपि नीयते ॥ ४ ॥

(ततः प्रविशत्यमात्यः)

अमात्यः—(सर्वतो विलोक्य) अहो ! चन्द्रपादरसज्ञतां चिरादाप्नोति राक्षसलोकः । कुतः,

आविर्भवत्यमृतभाजनमङ्गजन्म-

सेनापतिः शिशिरदीधितिरेष देवः ।

क्षीरार्णवप्रलयवारिणि जीवलोकं

पश्यामि मग्नमिव यस्य मयूखजालैः ॥ ५ ॥

अवस्थया अबलोऽपि बलम् नीयते इत्यन्वयः । यः = चन्द्रः, मम = लङ्काधिपतेः रावणस्य, शासनात् = आज्ञायाः, ऋते = ममाज्ञां विना, दिगन्तरे = दिग्विशेषे, रश्मिभिः = किरणजालैः, सरोरुहाणि अपि = अम्बुजानि, अपि, न ग्लपयति = न मलिनयति, सः = मम वशंगतः, चन्द्रमाः = सुधाकरः, (साम्प्रतम्) सम्मुखेन = अभिमुखो भूत्वा, माम् = रावणम्, वितपति = सन्तपति, अवस्थया = निमित्तान्तरकृतवैवश्येन, अबलोऽपि = निर्बलोऽपि, बलम् = सत्त्वम्, नीयते = प्राप्यते । अत्र प्रधानकर्मणि प्रत्ययः । बलरहितोऽपि जनः स्थितिविशेषमवाप्य सबलो जायते इति भावः । रुचिरा वृत्तम् । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः ॥ ४ ॥

अथ दशग्रीवेणाहूतोऽमात्यश्चित्रयोधी चन्द्रोदयमभिनन्दन्नाह—आविर्भवतीति ॥ अमृतभाजनम् अङ्गजन्मसेनापतिः शिशिरदीधितिः एष देवः आविर्भवति, यस्य मयूखजालैः क्षीरार्णवप्रलयवारिणि जीवलोकम् मग्नम् इव पश्यामि इत्यन्वयः । अमृतभाजनम् = सुधापात्रम्, अङ्गजन्मसेनापतिः = मनोभवसेनानायकः, शिशिरदीधितिः = शीतरश्मिः, एष देवः = उदयमानश्चन्द्रः, आविर्भवति = उदेति, यस्य =

करता है, वहीं चन्द्रमा मेरे सम्मुख होकर मुझे सन्ताप देता है । विवशता निर्बल को भी बलवान् बना देती है ॥ ४ ॥

(उसके बाद अमात्य प्रवेश करता है)

अमात्य—(चारों तरफ देखकर) अहो, चन्द्रमा की किरणों के रस का अनुभव बहुत देर से राक्षस-लोक प्राप्त कर रहा है । क्योंकि—अमृत के पात्र, कामदेव के सेनापति शीतल किरणों वाले ये चन्द्रदेव प्रकट हो रहे हैं, जिनके किरण-समूह से क्षीर-सागर के प्रलय-कालिक जल में सम्पूर्ण जीव-जगत् को डूबा हुआ सा देख रहा हूँ ॥ ५ ॥

रावणः—

हिमकर ! हिमगर्भा रश्मयस्तावकीनाः
मयि मदनविधेये येन वह्निं वमन्ति ।
न तव बलमनङ्गस्यापि वा दुःखभाजो
जनकदुहितुरेषा शर्वरीनाथ ! शक्तिः ॥ ६ ॥

चन्द्रदेवस्य, मयूखजालैः = रश्मिसमूहैः, क्षीरार्णवप्रलयवारिणि = क्षीरसागरप्रलय-जले, जीवलोकम् = स्थावरजङ्गमात्मकम् प्राणिजातम्, मग्नम् इव = लीनम् इव, पश्यामि = अवलोकयामि । समस्तमपि त्रिभुवनं सुधाकररश्मिभिः स्नातमिव प्रतिभातीति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् । उत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ ५ ॥

रावणः स्वमदनावेगस्य सीतामेव कारणं मन्यमान आह—हिमकरेति ॥ हिम कर ! तावकीनाः हिमगर्भाः रश्मयः मदनविधेये मयि येन वह्निम् वमन्ति (तत्) तव अनङ्गस्य अपि न बलम्, शर्वरीनाथ ! एषा दुःखभाजः जनक दुहितुः शक्तिः (अस्ति) इत्यन्वयः । हिमकर = शीतरश्मे !, तावकीनाः = त्वदीयाः, हिमगर्भाः = शीतोदराः, रश्मयः = किरणाः, मदनविधेये = मन्मथ सन्तापविवशीकृतमानसे, मयि = रावणे, येन = करणभूतेन, वह्निम् = अग्निम् वमन्ति = उद्गिरन्ति (तत्) तव = चन्द्रस्य, अनङ्गस्यापि = मदनस्यापि, वा = अथवा, न बलम = न शक्तिः, शर्वरीनाथ ! = निशापते !, एषा = परिलक्ष्यमा 'एषा' शब्दः शक्तेर्विशेषणम् । दुःखभाजः = सशोकायाः, जनकदुहितुः = विदे सुतायाः, शक्तिः = बलम्, अस्तीति शेषः । वैदेही एव मम मदनसन्तापहेतुरि भावः । मालिनी वृत्तम् ॥ ६ ॥

रावण—हे हिमकर ! तुम्हारी शीतल किरणें कामदेव के सन्ताप से विवश मुझ जो आग उगल रही हैं, वह न तो तुम्हारी और न कामदेव की ही शक्ति है । हे निशाप वह तो केवल शोकमग्न जानकी की ही शक्ति है ॥ ६ ॥

विमर्श—रावण चन्द्रकिरणों से संतप्त होने का कारण सीता को ही समझता है क्य कि सीता को लक्ष्य कर ही वह मदन विह्वल है अतः सीता को समझता है । चन्द्रमा कामदेव तो उसके वशवर्ती देवता हैं । उनमें इतनी हिम्मत कहाँ कि रावण को चं कर सकें । सीता के सौन्दर्य में आकृष्ट अत एव मदनाकुल रावण चन्द्रकिरण में भी उष्ण का अनुभव करता है ।

अमात्यः—

उन्मर्यादमुपेक्ष्य रावणमहं रामाद् विनश्यामि नु
व्याहृत्याप्रियमाप्नुयान्नु विपदं चण्डादुत स्वामिनः।
पक्षौ द्वावपि मे न पथ्यमनयोः श्रेयानयं रावणात्
नाशो मे पतनावसानमचिरान्नेक्षे यतः स्वामिनः॥ ७॥

अथामात्यः स्वामिदर्शनानन्तरमात्मना कर्त्तव्यं कर्म विचार्य अध्यवस्यति—उन्मर्यादमिति॥ अहम् उन्मर्यादम् रावणम् उपेक्ष्य रामाद् विनश्यामि नु, उत अप्रियम् व्याहृत्य चण्डात् स्वामिनः विपदम् आप्नुयाम् नु, मे द्वौ अपि पक्षौ न पथ्यम्, अनयोः मे रावणात् अयम् नाशः श्रेयान्, यतः अचिरात् स्वामिनः पतनावसानम् न ईक्षे इत्यन्वयः। अहम् = चित्रयोधी, उन्मर्यादम् = कामपरवशतया लङ्घितसीमानम्, रावणम् = लङ्केश्वरम्, उपेक्ष्य = उपेक्षां कृत्वा, (लङ्घितसीमः स्वामी अमात्येन हितोपदेशद्वारा मर्यादायाम् स्थापनीयः, इति कर्त्तव्ये उपेक्षां विधायेति भावः) रामात् = जगन्नाथात् नारायणात्, विनश्यामि नु = युद्धे मरणात्मकविनाशं प्राप्नोमि किम्, उत = अथवा, अप्रियम् = तन्मनोविपरीतं किन्तु अहितम्, (रघुवीराय सीतां दत्वा तच्चरणौ एव शरणमुपगच्छतु इत्याकारकं हितप्रदं वचनम्) व्याहृत्य = स्पष्टतः कथयित्वा, चण्डात् = उग्रात्, स्वामिनः = लङ्केश्वरात्, विपदम् = विपत्तिम्, आप्नुयाम् नु = प्राप्नुयाम् किम्, उभयथापि मे विनाश इति वितर्काशयः। तत्र कतमः श्रेयान् इति निश्चिनोति—पक्षौ द्वाविति। मे = मम, द्वौ अपि = उभौ अपि, पक्षौ = प्रसङ्गौ, न पथ्यम् = न श्रेयस्करम्, अनयोः = एतयोः (मध्ये) रावणात् = लङ्केश्वरात्, अयम् मे नाशः, श्रेयान् = गरीयान्, रावणाय हितमुक्त्वा क्रुद्धेन तेन विनाशे एव मम हितोपदेशात्मकः कुलधर्मो रक्षितो भविष्यति, यतः = यस्मात्, रावणहेतुकात् विनाशात्, अचिरात् = भावि, स्वामिनः = राज्ञः, पतनावसानम् = पुत्रमित्रादिविनाशात्मकान्त्यावस्थाम्, न ईक्षे = न प्रेक्षे। यदि लङ्घितमर्यादं स्वामिनमुपेक्ष्य संग्रामे विनष्टः स्याम् तदा स्वामिनोऽपि विनाशदर्शनमवश्यम्भावि। यदि स्वामिने स्वकुलधर्म-

---

अमात्य—मर्यादारहित रावण की उपेक्षा करके क्या हम राम से विनाश को प्राप्त करें, अथवा अप्रिय किन्तु हितप्रद-वचन कह कर उग्र स्वामी से विपत्ति को प्राप्त करें? (यद्यपि) मेरे लिये दोनों पक्ष प्रतिकूल ही हैं (तथापि) रावण से ही विनाश प्राप्त करना श्रेष्ठ है क्योंकि मैं स्वामी के शीघ्र विनाश को नहीं देख सकता॥ ७॥

कष्टः स्वामिनो वृत्तान्तः। यदेष बालेन बद्धो मुसलेन हन्यते।
यावत् स्वामिनं पश्यामि। (परिक्रम्यावलोक्य) एष स्वामी,

ध्यानैकाग्रमना विजृम्भणपरो निःश्वासतप्ताधरः
स्वामुज्झन्निव कान्तिमुत्पलनिभां वर्षावसाने घनः।

मनुसृत्य हितोपदेशं विधाय क्षुब्धेन तेन विनाशं गच्छामि तदा स्वामिनो विपन्ना-वस्थादर्शनप्रसङ्गो नास्तीति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ७ ॥

स्वहितोपदेशस्य निष्फलत्वमुपपादयति—कष्ट इति ॥ यदेष = यतः एषः = मत्स्वामी। बालेन = अत्र बालशब्देन दुर्बलं बन्धनकारणं विवक्षितम्, तच्च प्रसङ्गात् मनुष्याङ्गनानुरागरूपं गृह्यते। मनुष्याङ्गनाविषयकानुरागरूपदुर्बलबन्धनकारणेनेत्यर्थः। मुसलेन = अत्र मुसलशब्देन प्रबलं हननकारणं विवक्षितम्, तदपि प्रसङ्गात् रामरूपमभिप्रेतम्, रामरूप प्रबलहननकारणेनेत्यर्थः। हन्यते = विनाशपथमानीयते। मनुष्याङ्गनानुरागो निस्सारः, रामश्च प्रबल इति सुज्ञेयम् प्यजानानं स्वामिनम्प्रति हितं वचो व्यर्थमेवेति भावः।

अथामात्यः स्वामिनो मदनव्यथाजन्यावस्थां वर्णयति—ध्यानैकाग्रमना इति। (एष स्वामी) ध्यानैकाग्रमना, विजृम्भणपरः, निःश्वासतप्ताधरः सन्, वर्षावसा

विमर्श—राम और रावण दोनों ओर से अमात्य को विपत्ति की आशंका है किन्तु स्वामिभक्त होने के कारण उसे अपने स्वामी का विनाश देखना इष्ट नहीं है। रावण की उपेक्षाकर राम से विपत्ति आने पर स्वामी सहित उसका विनाश संभव है अतः अपने स्वामी को सही मार्ग का निर्देश कर क्रुद्ध स्वामी के ही हाथों उसके विनाश से पूर्व ही अपना विनाश चाहता है। प्रस्तुत श्लोक में अमात्य की स्वामिभक्ति सराहनीय है। वह स्वयं विनष्ट होकर भी स्वामी को विनाश के गर्त से बचाना चाहता है।

स्वामी का समाचार दुःखदायी है। जो यह बालक के द्वारा बाँधा जाकर मुसल से मारा जाता है। अर्थात् (मनुष्य भार्या के अनुराग रूप दुर्बल बन्धन से बँध कर राम के प्रबल मुसल से मारा जाता है।

जब तक स्वामी को देखता हूँ। (घूमकर और देखकर)

यह स्वामी—

ध्यान में एकाग्रचित्त, जम्हाई लेते हुए गरम श्वास से मुरझाए अधर वाले, वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर कमल के सदृश अपनी शोभा को छोड़ते हुए मेघ के समान

औवेंणेव कृशानुना पतिरपामापीयमानः परैः
दुर्बोधापचयं दधाति दहता कामेन गूढं वपुः ॥ ८ ॥

(उपेत्य) जयतु स्वामी ।

रावणः—किमस्त्यपूर्वो वृत्तान्तः ।

अमात्यः—(आत्मगतम्) प्रसन्नमाचष्टे देवः । (प्रकाशम्) अस्ति कौलीनम् ।

घन इव उत्पलनिभाम् स्वाम् कान्तिम् उज्झन् औवेंण कृशानुना आपीयमानः अपाम् पतिः इव गूढम् दहता कामेन परैः दुर्बोधापचयम् वपुः दधाति इत्यन्वयः । एष स्वामी, ध्यानैकाग्रमना = ध्याने = चिन्तने एकाग्रम् = सन्निहितम् मनः = अन्तःकरणं यस्य सः चिन्तनतत्परमानसः, विजृम्भणपरः = जृम्भातत्परः = (लोके जृम्भणशब्दस्य "जम्हाई" इत्यर्थः) निःश्वासतप्ताधरः = निःश्वासेन = सन्तापजनिताननपवनेन तप्तः = सन्तप्तः अधरः = ओष्ठः यस्य सः परितापजनितोच्छ्वाससन्तप्तोष्ठः, वर्षावसाने = समाप्तिं गतायाम् वर्षर्तौ, घन इव = मेघ इव, स्वाम् = निजाम् , उत्पलनिभाम् = सरोजसदृशाम् , कान्तिम् = रुचिम् , उज्झन् = त्यजन् (सन्) औवेंण = वाडवेन, कृशानुना = अग्निना, आपीयमानः = निपीयमानः, अपाम् पतिः इव = सरिताम् वल्लभ इव समुद्र इवेति यावत् , गूढम् = प्रच्छन्नम् , दहता = प्रज्वलता, कामेन = मदनेन, परैः = अन्यैः, दुर्बोधापचयम् वपुः = दुःखेन = महता प्रयासेन बोद्धुम् शक्यः अपचयः = अपक्षयः यस्य वपुषः तथाभूतम् वपुः = शरीरम् , दधाति = धारयति । मन्मथव्यथाव्यथितः स्वामी परिक्षीण इव लक्ष्यते इति भावः । शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् । उपमालङ्कारः ॥ ८ ॥

कौलीनमिति ॥ कौलीनम् = जनप्रवादः ।

वडवाग्नि के द्वारा पी लिये गये समुद्र के समान, दुसरों के द्वारा नहीं जानने वाली क्षीणता से युक्त, कामदेव के द्वारा जलते हुए शरीर को धारण करता है ॥ ८ ॥

(समीप जाकर) स्वामी की जय हो ।

रावण—क्या नया समाचार है ?

अमात्य—(मन ही मन) स्वामी तो प्रसन्न नजर आते हैं ।

(प्रकट) अफवाह है ।

रावणः—तिष्ठ। वालिनं हत्वा सुग्रीवमुपास्ते राम इति।

अमात्यः—तदेव। विशेषोऽप्यस्ति।

रावणः—तत् कथय।

अमात्यः—सर्वा दिशः सीतान्वेषणार्थं तदाज्ञया वानरसैन्यं सञ्चरतीति।

रावणः—किं किम्। सर्वा दिशः सीतान्वेषणार्थं तदाज्ञया वानरसैन्यं सञ्चरतीति। पश्य—

अहिभवनविधानान्यायुधीकृत्य शैला-
नमरजयिनि सैन्ये रक्षसामात्तकक्ष्ये।
कथमिव रणभूमौ वर्तते वानराणा-
मुपवनतरुवल्लीपल्लवोन्माथि यूथम् ॥ ९ ॥

अथ दशग्रीवोऽमात्यमुखात् सीतान्वेषणपरं वानरसैन्यं सर्वासु दिक्षु सञ्चरतीति समाचारविशेषं श्रुत्वा अपहसन्नधिक्षिपति—अहिभवनेति॥ अहिभवनविधानानि शैलान् आयुधीकृत्य रक्षसाम् अमरजयिनि सैन्ये आत्तकक्ष्ये (सति) रणभूमौ वानराणाम् उपवनतरुवल्लीपल्लवोन्माथि यूथम् कथम् इव वर्त्तते इत्यन्वयः। अहिभवनविधानानि=सर्पगृहमयान्, अस्य शब्दस्य पुल्लिङ्गशैलशब्दविशेषणत्वे नियतलिङ्गमेव बीजम्। शैलान्=पर्वतान्, आयुधीकृत्य=शस्त्रास्त्रत्वेन स्वीकृत्य, रक्षसाम्=निशाचराणाम्, अमरजयिनि=देवविजयिनि, सैन्ये=सैनिके, आत्तकक्ष्ये (सति)=युद्धसन्नद्धे सति, समरसन्नाहमवलम्ब्य स्थिते सति इत्यर्थः, रणभूमौ=

रावण—ठहरो, वाली को मार कर राम सुग्रीव की उपासना करता है, यही न?

अमात्य—हां वही। विशेष भी है।

रावण—वह कहो।

अमात्य—उसकी आज्ञा से सभी दिशाओं में सीता को खोजने के लिये वानरों की सेना घूमती है।

रावण—क्या, क्या? सीता को ढूंढने के लिये सभी दिशाओं में वानरों की सेना घूमती है? देखो—

सर्पों के निवास योग्य पर्वतों को शस्त्र बनाकर देवताओं को भी जीतने वाली युद्ध की सज्जा से सज्जित राक्षसों की सेना के आगे युद्ध भूमि में उद्यान के वृक्षों की लता तथा किसलयों को तोड़ने वाले वानरों का झुण्ड क्या कर सकता है?॥ ९॥

अमात्यः—कामं भवन्तु वानराः परिहास्याः । किन्तु,

रावणः—कथय किं तत् ।

अमात्यः—अजय्यं धनुर्धराणामाहुर्दाशरथिम् ।

रावणः—किं किम् । अजय्यं धनुर्धराणामाहुर्दाशरथिमिति । पश्य—

स्थातुं यस्य पुरन्दरो न पुरतः शक्नोति संरम्भिणो
यस्य स्थाणुनिवासशालिनि गिरौ व्यापारिता बाहवः ।

समराङ्गणे, वानराणाम्=कपीनाम्, उपवनतरुवल्लीपल्लवोन्माथि=उपवनतरूणाम्=उद्यानमहीरुहाणाम् वल्लयः=लताः तासाम् यानि पल्लवानि=किसलयानि तानि उन्मथितुम्=मर्दितुम् शीलम् यस्य तथाविधम्, यूथम्=समूहः, उद्यानविटपलता किसलयमर्दनसमर्थः कपिसमूह इत्यर्थः, कथमिव=केनप्रकारेण (अभिमुखी भूय) वर्त्तते=स्थातुं शक्नोति । सबलायुधसज्जयातुधानसैन्यसमक्षं तरुलताकिसलयमात्रोच्छेदनसमर्थं निःशङ्कं वानरयूथं समरभूमौ स्थातुमपि न शक्नोति किमुत युद्ध प्रसङ्ग इति भावः । सालिनी वृत्तम् । विषमालङ्कारः ॥ ९ ॥

अथामात्यो वानरसैन्ये स्वामिन उपेक्षां संलक्ष्य रामपराक्रमं स्मारयति—अजय्यमिति ॥ दाशरथिम् धनुर्धराणाम् अजय्यम् आहुः (लोका इति शेषः) अजय्यम्=जेतुम् अशक्यम्, अद्य ये धनुर्धराः जगति वर्त्तन्ते तेषाम् मध्ये रामो जेतुमशक्य इति लोका ऊचुः ।

अथ रावणः रामस्य स्वशत्रुत्वमधिक्षिपति—स्थातुमिति ॥ यस्य संरम्भिणः पुरतः पुरन्दरः अपि स्थातुम् न शक्नोति, यस्य बाहवः स्थाणुनिवासशालिनि

अमात्य—वानर भले ही हंसी के योग्य हों, किन्तु—

रावण—कहो, वह क्या ?

अमात्य—धनुर्धारियों में राम अजेय हैं ।

रावण—क्या, क्या ? राम धनुर्धारियों में अजेय है ?
देखो—

हुङ्कार भरने वाले जिसके सम्मुख इन्द्र भी नहीं ठहर सकता । जिसकी भुजाओं ने शङ्कर के निवासस्थान कैलास-पर्वत पर व्यापार किया । (अर्थात् कैलास को उठाकर अपना पराक्रम दिखाया) जिससे पराजय को प्राप्त कर नक्षत्र भी अपने स्थान को छोड़

यस्मात् प्राप्य पराभवं परिभवक्षेत्रीभवन्ति ग्रहाः
शत्रुं तस्य ममाह मानुषमहो ! हास्यस्तपस्वी भवान् ॥१०॥

अमात्यः—किं किं रामो मानुष इति । पश्य—

अधिवसन् गुरुशासनतो वनं
रघुपतिर्न च केवलमानुषः ।
भुवनसंहरणोदयकारणं
हरिरयं हरिदश्वकुलोद्भवः ॥ ११ ॥

गिरौ व्यापारिताः, यस्मात् पराभवं प्राप्य ग्रहाः परिभवक्षेत्रीभवन्ति, तस्य मम मानुषम् शत्रुम् आह, अहो तपस्वी भवान् हास्यः (अस्तीति शेषः) इत्यन्वयः । यस्य संरम्भिणः=क्रोधिनः, पुरतः=अग्रे, पुरन्दरः=देवराजः, स्थातुम् अवस्थातुम्, न शक्नोति न समर्थो भवति, यस्य बाहवः=भुजाः, स्थाणुनिवासशालिनि=शंकरनिवासशीले, गिरौ=कैलाशाख्ये पर्वते, व्यापारिताः=उत्थापना संलग्नाः, व्यापारविषयीकृता इत्यर्थः । यस्मात्=मत्तः रावणात्, पराभवम्=पराजयम्, प्राप्य=अवाप्य, ग्रहाः=नक्षत्राणि परिभवक्षेत्रीभवन्ति=परिभ्यक्त जन्मस्पृहाः भवन्ति, तस्य=तादृशपराक्रमयुतस्य, मम रावणस्य, शत्रुम्=अरिम्, मानुषम्=मनुष्यम्, आह=कथयति अहो, तपस्वी=तपस्विजनवद् भीरुः भवान्=चित्रयोधी हास्यः=उपहासयोग्यः । (वर्तते) प्रसिद्धविक्रमस्य मम मानुषः शत्रुरिति यदाह अत उपहासवियतां गच्छतीति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १० ॥

अमात्यो रामस्य मानुषत्वमधिक्षिपन्नाह—किमिति ॥ रामस्य विष्णुत्वं प्रतिपादयति—अधिवसन्निति ॥ गुरुशासनतः वनम् अधिवसन् रघुपतिः न केवलमानुषः, हरिदश्वकुलोद्भवः अयम् भुवनसंहरणोदयकारणम् हरिः (अस्तीति शेषः) इत्यन्वयः । गुरुशासनतः=पितुरादेशात्, वनम्=विपिनम् अधिवसन्=निवसन्, रघुपतिः=रामः, न केवलमानुषः=न मनुष्यमात्रम्, हरिदश्वकुलोद्भवः=हरिदश्वस्य=आदित्यस्य, कुले=वंशे, उद्भवः=उत्पत्तिः यस्य तथोक्तः अयम्=

देते हैं। (अर्थात् निरन्तर नभोमण्डल में चलते रहते हैं) ऐसे मुझ, पराक्रमी का शत्रु मनुष्य है ऐसा तुम कहते हो अहो। डरपोक तुम हंसी के पात्र हो ॥ १० ॥

अमात्य—क्या क्या राम मनुष्य हैं ? देखो—

पिता की आज्ञा से वन में निवास करते हुए राम केवल मनुष्य नहीं है। सूर्यवंश में उत्पन्न यह राम संसार के विनाश और उत्पत्ति के कारण विष्णु हैं ॥ ११ ॥

रावणः—किं किं केशव इति। अहो! भयस्थानमेषः।

जित्वा ज्यायांसं स्वात्मनो देवराजं
स्वर्गे रक्षोभिर्दूषिते मामकीनैः।
शच्यां त्रस्तायामप्सरोभिश्च सार्धं
विष्णोरेतावान् विक्रमः क्व प्रलीनः॥ १२॥

रामरूपेण विद्यमानः पुरुषविशेषः, भुवनसंहरणोदयकारणम् = संसारविनाशोत्पत्त्य-भ्युदयहेतुः हरिः = विष्णुः (एवास्ति)। रामस्य वनाधिवासे तद्गुरुशासनमेव निमित्तम् नत्वशक्तिरतस्तं केवलं मानुषं मन्यमानो भवान् तत्स्वरूपानभिज्ञ इति भावः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम् अपह्नुत्यलङ्कारः॥ ११॥

अथ रावणः केशवमप्युपहसन्नाह—जित्वेति॥

स्वात्मनः ज्यायांसम् देवराजम् जित्वा मामकीनैः रक्षोभिः स्वर्गे दूषिते (सति) अप्सरोभिः सार्द्धम् शच्याम् त्रस्तायाम् च (सत्याम्) विष्णोः एतावान् विक्रमः क्व प्रलीनः (आसीत्) इत्यन्वयः। स्वात्मनः = निजात्मनः, ज्यायांसम् = ज्येष्ठ-भ्रातरम्, देवराजम् = इन्द्रम्, जित्वा = विजित्य, मामकीनैः = अस्मदीयैः, रक्षोभिः = सैन्यभूतैः निशाचरैः, स्वर्गे = अमरावत्याम्, दूषिते = कलुषिते (सति) अप्सरोभिः = उर्वशीप्रभृतिस्ववेश्याभिः सार्धम् = सह शच्याम् = इन्द्राण्याम्, त्रस्तायाम् = भीतायाम् (सत्याम्) च विष्णोः = केशवस्य, उपेन्द्रस्येति यावत्, एतावान् = त्रिभुवनसंहारादिहेतुभूतः, विक्रमः = पराक्रमः, क्व = कुत्र प्रलीनः = तिरोभूतः, प्रच्छन्न इति यावत् आसीदिति शेषः।

देवराजं विजित्य ममसैन्यकृतस्वर्गविध्वंसादिकार्यप्रसंगेऽवश्यमेव विष्णुना स्वविक्रमः प्रकटनीय आसीत्, न च तेन तथा कृतमतो नास्ति तस्मात् किमपि भयमस्माकमिति भावः। वैश्वदेवी वृत्तम्। तल्लक्षणं हि—बाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ॥ १२॥

रावण—क्या क्या केशव! ऐसा। अहो यह भय का स्थान है। अपने बड़े भाई इन्द्र को राक्षसों द्वारा जीत कर स्वर्ग को दूषित कर देने पर और अप्सराओं सहित शची को डराए जाने पर विष्णु का वह पराक्रम कहाँ छिपा था?॥ १२॥

(अर्थात् जब मैंने राक्षसी सेना से विष्णु के बड़े भाई इन्द्र को जीत कर इन्द्राणी को त्रस्त किया था उस समय विष्णु कहाँ था?)

अमात्यः—किं किं केन जिता देवाः।

रावणः—किं न जानासि जेतारं देवानाम्।

अमात्यः—न जाने।

रावणः—ननु मया।

अमात्यः—मिथ्यैतत्।

यमवरुणकुबेरवासवादी-
नमृतभुजो जितवान् भवानयत्नः।
कथमिव शिथिलीकृतः समाधिः
कुसुममयैः कुसुमायुधस्य बाणैः॥ १३॥

अथामात्यो रावणकृतदेवजयस्य वैयर्थ्यमुपपादयति—यमवरुणेति॥ पूर्वम् यः भवान् यमवरुणकुबेरवासवादीन् अमृतभुजः अयत्नः (सन्) जितवान्, तस्य एव भवतः समाधिः कुसुमायुधस्य कुसुममयैः बाणैः कथम् इव शिथिलीकृतः? इत्यन्वयः। पूर्वम्=प्रथमम्, यः भवान्=रावणः, यमवरुणकुबेरवासवादीन्=धर्मराजवरुणधनपतिदेवराजप्रभृतीन्, अमृतभुजः=सुधाभोजिनो देवान् अयत्नः=प्रयासरहितः, (सन्) अनायासेनैवेत्यर्थः। जितवान्=स्वाधीनान् कृतवान्, तस्य एव भवतः=रावणस्य, समाधिः=धैर्यम्, कुसुमायुधस्य पुष्पबाणस्य, कामदेवस्येति यावत्। कुसुमयैः=पुष्पनिर्मितैः, बाणैः=शरैः कथमिव=केन प्रकारेण, शिथिलीकृतः=मन्दीकृतः। प्रबलहेतुभिरपि अशिथिलधैर्यस्य भवतः कुसुमबाणसदृशदुर्बलेन हेतुना धैर्यच्युतिरिति परस्परं विरुद्धम्। जितेन्द्रोऽपि भवान् मदनशरव्यत्वमवाप्यात्मनैव स्वदेवजयित्वं व्यर्थीकरोति इति भावः।

अमात्य—क्या क्या! देवता किसके द्वारा जीते गये हैं?

रावण—क्या देवताओं के जीतने वाले को नहीं जानते हो?

अमात्य—नहीं जानता हूँ।

रावण—मैंने ही जीता है।

अमात्य—यह तो बिल्कुल झूठ है।

अमृत पीने वाले यम, वरुण, कुबेर इन्द्रप्रभृति देवताओं को तो आपने आसानी से जीत लिया किन्तु कामदेव के फूलों के बाणों से आपका धैर्य किस प्रकार शिथिल पड़ गया? (अर्थात् इन्द्रादि देवताओं को जीत कर भी कामदेव को नहीं जीतने के कारण आप देवजयी नहीं हैं)॥ १३॥

रावणः—किं किं कुसुमायुधो मां प्रहरतीति प्रतर्कः ।

अमात्यः—ननु प्रत्यक्षम् ।

रावणः—सत्यमिदं प्रत्यक्षविषयः । पश्य—

पुरां जेतुः कोपाद् वमति नयने वह्निकणिकाः
कथीभूतः कामः कथय कथमद्य प्रहरति ।
शरन्नीहारांशुच्छवि चतुरताम्रभ्रु वदनं
मनोज्ञं जानक्या जनयति विहस्तं जनमिमम् ॥ १४ ॥

पुष्पिताग्रावृत्तम् । तल्लक्षणं हि—अयुजिनयुगरेफतोयकारो युजि च न जौजरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥ १३ ॥

रावणो मदनप्रहारं सत्यं मन्यमान आह—पुरामिति ॥ पुराम् जेतुः नयने कोपात् वह्निकणिकाः वमति (सति) कथीभूतः कामः अद्य कथं प्रहरति इति कथय, जानक्याः शरन्नीहारांशुच्छवि चतुरताम्रभ्रु मनोज्ञम् वदनम् इमम् जनम् विहस्तम् जनयतीत्यन्वयः, पुराम् जेतुः=त्रिपुरजितः शंकरस्य, नयने=लोचने, कोपात्=रोषात्, वह्निकणिकाः=अग्निस्फुलिंगाः वमति=उद्गिरति (सति) कथीभूतः=वार्ताविषयीभूतः, (शङ्करक्रोधाग्निदग्धः, इत्यर्थः । कामः=मदनः, अद्य=इदानीम्, कथम्=केन प्रकारेण, किमर्थं वा, प्रहरति=प्रहारं करोति इति कथय=वद ।

भस्मीभूतो मदनो मां प्रहर्तुं न समर्थ इति भावः । तर्हि केन सम्पादितोऽयं परिताप इति जिज्ञासायां स्वयमाह—शरदिति ॥ जानक्याः=जनकदुहितुः, शरन्नीहारांशुच्छवि=शरदि=शरत्कालसंसर्गात् धवलतरो यो नीहारांशुः=हिमांशुः तस्य छविरिव छविः=शोभा यस्य तत्तथोक्तम्, (वदनम्) चतुरताम्रभ्रु=चतुरे=

रावण—क्या, क्या, कामदेव हम पर प्रहार करता है ऐसा तर्क है ?

अमात्य—यह तो प्रत्यक्ष है ।

रावण—हाँ, यह सचमुच प्रत्यक्ष विषय है । देखो—त्रिपुर को जीतने वाले शंकर की आंख से क्रोध से आग की चिनगारियों के उगलने पर कथा-रूप से बचा हुआ कामदेव आज कहो किस प्रकार प्रहार करता है ? शरद ऋतु के धवल चन्द्र की शोभा धारण करने वाला चंचल भृकुटि से युक्त अत एव मनमोहक जानकी का यह मुख ही इस व्यक्ति को विवश बना रहा है ॥ (काम विषयक मेरी विवशता का कारण शंकर के क्रोधाग्नि से भस्मीभूत कामदेव नहीं, अपि तु सीता का चन्द्रवदन ही है) ॥ १४ ॥

अमात्यः—

अधीतवेदविद्योऽसि दायादश्च स्वयंभुवः ।
परदारास्थया किं त्वं परिवादाय कल्पसे ॥ १५ ॥

रावणः—किमयमपि परिवादः ।

अमात्यः—नातः परः परीवादः ।

रावणः—यद्येवम् ,

कृतवान् विधिना शतं क्रतूना-

चञ्चले तारे च भ्रुवौ च यस्मिन् तत्, मनोज्ञम्=मनोहारि, वदनम्=मुखम् इमम्=सीतानुरक्तमानसम्, जनम्=रावणम्, विहस्तम्=विवशम्, जनयति=करोति। मम मदनावेगजनितविवशतायां सीतायाः शरदिन्दुवदनमेव कारणं न तु कामदेवबाणप्रहार इति भावः। शिखरिणी वृत्तम्। उपमाऽलङ्कारः ॥ १४ ॥

अथामात्यो जानकीपरिग्रहनिश्चयाद् दशकन्धरं निवर्तयितुं तस्य लोकापवाद हेतुत्वं प्रतिपादयति—अधीतेति ॥ त्वम् अधीतवेदविद्यः असि, स्वयम्भुवः दायाद (असि) परदारास्थतया किम् परिवादाय कल्पसे? इत्यन्वयः। त्वम्=रावणः अधीतवेदविद्यः=अधीताः=गृहीतार्थाः, वेदाः=श्रुतयः, विद्याः=चतुर्दशविद्यास्थानानि येन, तथाभूतः असि=वर्तसे। गृहीतार्थसर्वशास्त्रोऽसि इत्यर्थः स्वयम्भुवः=स्वयं भवतीति स्वयम्भूः ब्रह्मा तस्य, दायादः=सम्बन्धी, च वंशज इत्यर्थः, चासि इति योज्यम्। एतादृशोच्चकुलोत्पन्नो विद्वानपि त्वम् परदारास्थया=परदारेषु=अन्यस्त्रीजने आस्थया=आसक्त्या, परीवादाय=लोकापवादाय, कल्पसे=भवसि। अनधीतशास्त्रोऽकुलीनश्च जनोऽन्यदारासक्तो भवति न त्वद्विध इति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १५ ॥

परदारगमनस्य शिष्टाचारत्वेन लोकापवादहेतुत्वं खण्डयति—कृतवानिति ॥

अमात्य—आपने चारों वेदों और चौदहों विद्याओं का अध्ययन किया है। आपके बान्धव भी दिव्य हैं। (फिर) दूसरे की स्त्री में दत्तचित्त होकर आप क्यों कलंकित हो रहे हैं ॥ १५ ॥

रावण—क्या यह भी निन्दा है।

अमात्य—इससे बढ़ कर दूसरी निन्दा नहीं है।

रावण—यदि ऐसा है तो—

विधिपूर्वक सैंकड़ों यज्ञों को करने वाला, वैदिक वचनों का वाच्यार्थ, देवताओं का

मभिधेयो वचसामकर्तृकाणाम् ।
मरुतां पतिरग्रजस्त्रिधाम्नो
हरिराह्वानमहल्यया किमेति ॥ १६ ॥

अमात्यः—परिवादस्तिष्ठतु । किमस्माभिर्निर्वासित एव सर्वार्थ-साधनो धर्मः ।

विधिना क्रतूनाम् शतम् कृतवान्, अकर्तृकाणाम् वचसाम् अभिधेयः त्रिधाम्नः अग्रजः मरुताम् पतिः हरिः अहल्यया आह्वानम् किमेति इत्यन्वयः। विधिना= शास्त्रविहितकर्मणा, क्रतूनाम्=यज्ञानाम्, शतम्=एतत्संख्यकम्, कृतवान्= कर्त्ता, सम्पादितवानित्यर्थः, अकर्तृकाणाम् = अपौरुषेयाणाम् = वचसाम् = वचनानाम्, वेदानामित्यर्थः, अभिधेयः=अभिधाविषयीभूतः, वाच्य इत्यर्थः, वेदे कर्माङ्गतया इन्द्रस्य बहुधा प्रशंसाद्वाराऽभिधानं भवतीति बोध्यम्। त्रिधा-म्नः=विष्णोः, अग्रजः=ज्येष्ठभ्राता, मरुताम्=देवानाम्, पतिः=स्वामी, देव-राज इत्यर्थः, हरिः = इन्द्रः, यज्ञे याज्ञिकैः अहल्यया=गौतमपत्न्या, आह्वा-नम्=हुतिम्, (अहल्याजाररूपेण क्रियमाणम् आह्वानमिति बोध्यम्) किमेति= किमभ्युपैति, श्लाघ्यत्वेनाङ्गीकरोतीत्यर्थः। यदि परदारगमनस्य परीवादः फल-मिति त्वदुक्तिस्तदा गौतमदारासक्तो वासवोऽपि परीवादविषयो जायताम्, स च अद्यापि यज्ञे याज्ञिकैरहल्याजारत्वेनोह्यमानोऽपि श्लाघ्य एवेति भावः। काल-भारिणी वृत्तम् ॥ १६ ॥

सर्वार्थसाधनः— सर्वेषाम् अर्थकामादीनाम् साधनभूतः धर्मः। अथवा सर्वं अर्थ-

---

स्वामी, विष्णु का बड़ा भाई इन्द्र यज्ञ में अहल्या इस शब्द से अर्थात् अहल्या के उपपति के रूप में किस प्रकार बुलाया जाता है ॥ १६ ॥

विमर्श—इन्द्र ने गौतम पत्नी अहल्या के साथ छल से सम्भोग किया था। अतः परदारागामी होने के कारण उसका चरित्र निन्दनीय होना चाहिये किन्तु विद्वान् पूज्य और यहां के स्वामी इन्द्र को याज्ञिक लोग अहल्या के जार के रूप मे संबोधन कर यज्ञ में आदर के साथ अब भी बुलाते हैं। अतः परस्त्रीगमन निन्दित नहीं है। रावण का यही तर्क है।

अमात्य—निन्दा की बात छोड़ दीजिए। क्या हम लोगों ने सभी अर्थों के साधन-भूत धर्म का परित्याग कर दिया है ?

रावणः—नयज्ञ ! ननु साध्यापेक्षः साधनपरिग्रहः । पश्य—

यदि सुरपदकाङ्क्षा वज्रिणो वज्रपाता-
दविकृतधारश्चन्द्रहासः सखा मे ।
तव विरमतु धर्मः साधनं दुर्बलानां
बलवत इव पथ्यं सर्वमस्मद्विधस्य ॥ १७ ॥

कामादयः अर्थाः साधनं यस्य तथाभूतो धर्मः । निर्वासितः = बहिष्कृतः, परित्यक्त इत्यर्थः, सर्वसुखप्राप्तिहेतुर्धर्मः, सचास्माभिर्नैव कथमपि त्याज्य इति भावः ।

रावणः धर्मस्य अर्थसाधनत्वमधिक्षिपति—नयज्ञेति ॥ साध्यापेक्षः = साध्यम् = लक्ष्यमपेक्ष्योपायसंग्रहो भवति, यदि कमप्युपायमाश्रित्योद्देश्यसिद्धिर्भवति तत्रैवाग्रहो विधेयः, लक्ष्यमेव मुख्यम्, साधनं तु गौणम्, सीतासम्भोगरूपलक्ष्यसिद्धौ धर्मो बाधकोऽतो न स उपायत्वेनाङ्गीकार्य इति भावः। एतदेव समर्थयते—यदीति। यदि सुरपदकांक्षा (तर्हि) वज्रिणः वज्रपातात् अविकृतधारः चन्द्रहासः असिः मे सखा, दुर्बलनाम् साधनम् तव धर्मः विरमतु, अस्मद्विधस्य बलवतः सर्वम् पथ्यम् इव (भवति) इत्यन्वयः । यदि सुरपदकांक्षा = देवपदप्राप्त्यभिलाषः भवेत् (तर्हि) वज्रिणः = इन्द्रस्य, वज्रपातात् = कुलिशप्रहारात्, अविकृतधारः = अकलुषितधारः, चन्द्रहासः = एतन्नामकः, असिः = खड्गः, मे = मम, सखा = सहायः, चन्द्रहासबलेन देवपदमचिरं प्राप्स्याम इति भावः, दुर्बलानाम्, निःसत्वानम् साधनम्=उपायभूतम्, तव = भवतः, धर्मः, विरमतु = तिष्ठतु, पराक्रमवतां नास्ति धर्मेण प्रयोजनम्, अस्मद्विधस्य = मादृशस्य, बलवतः=पराक्रमशालिनः, सर्वम् = अखिलम्, पथ्यम्=सुखकरम् इव (भवति) अत्र पथ्यशब्दः अनुकूलार्थवाचकः । नास्ति बलवतां कुत्रापि प्रत्यवायशङ्केति भावः । कालभारिणी वृत्तम् ॥ १७ ॥

रावण—नीतिज्ञ ! साधन का ग्रहण तो साध्य की अपेक्षा करके किया जाता है देखो—इन्द्र के वज्रप्रहार से भी जिसकी धारा मूर्च्छित नहीं होती, ऐसा इन्द्रपदप्राप्ति के अभिलापरूप चन्द्रहास यदि मेरा मित्र (सहायक) है तो दुर्बल लोगों के साधन रूप तुम्हारा धर्म दूर रहे । हमारे जैसे बलवान लोगों के लिए सभी कुछ अनुकूल ही होता है ॥ १७ ॥

विमर्श = रावण अपने चन्द्रहास को ही अभिलषित फल की प्राप्ति का साधन मानता है । धर्म को नहीं । उसके विचार से धर्म दुर्बल लोगों की अभिलाषा पूर्ति का साधन है । समर्थ व्यक्ति पौरुष कोही सफलता का प्रथम सोपान मानता है ।

अमात्यः—तथाविधैव स्वामिनः शक्तिः। शक्तिमतां भवद्विधानां साध्वाचारः परित्यक्तः। ननु राजर्षिवृत्तपरायणे रामे साधुत्वमुपेक्षणीयम्।

रावणः—किं किं रामः साधुरिति। पश्य—

येनानीयत ताटका यमपदं भित्त्वा स्थितिं धन्विनां
छन्नं यः समधत्त वालिनि शरं दत्तेक्षणे भ्रातरि।
स क्षात्रं च धनुर्जटाश्च यमिनां वोढा विरुद्धं मिथो
रामः साधुरसाधवो वयमहो! बालाः परप्रत्ययाः॥ १८॥

अथ दशग्रीवः रामस्य साधुत्वं निराकरोति—येनानीयतेति॥ धन्विनाम् स्थितिं भित्त्वा येन ताटका यमपदम् अनीयत, यः भ्रातरि दत्तेक्षणे वालिनि छन्नम् शरम् समधत्त, मिथो विरुद्धम् क्षात्रम् धनुः यमिनाम् जटाश्च वोढा स रामः साधुः, वयम् असाधवः, अहो परप्रत्ययाः बालाः इत्यन्वयः। धन्विनाम् = धनुर्धारिणाम्, स्थितिम् = मर्यादाम्, भित्त्वा = उल्लङ्घ्य, बालस्त्रीवृद्धादीनाम् हननम् मर्यादाविरुद्धम्, तदुपेक्ष्येति भावः। येन = रामेण, ताटका = एतन्नाम्नी राक्षसी, यमपदम् = मृत्युलोकम्, अनीयत = प्रापिता, (तथा) यः = रामः, भ्रातरि = सुग्रीवे, दत्तेक्षणे = दत्तम् = निहितम् ईक्षणम् = दृष्टिः येन तथाभूते वालिनि = सुग्रीवाग्रजे, छन्नम् = भयात् प्रच्छन्नः सन्, शरम् = बाणम्, समधत्त = शरसन्धानं कृतवान्, मिथोविरुद्धम् = परस्परं विपरीतम्, क्षात्रम् = धनुः = क्षत्रियवर्णोचितं शरासनम्, यमिनाम् = तपोधनानाम्, जटाश्च = सटाश्च, वोढा =

अमात्य—स्वामी का वैसा ही प्रभाव है। आप जैसे पराक्रमशालियों ने उचित व्यवहार का परित्याग कर दिया है। क्या राजर्षि के व्यवहार को निभाने वाले राम में सज्जनता की उपेक्षा होनी चाहिये?

रावण—क्या क्या राम सज्जन हैं? देखो—जिसने धनुधारियों की मर्यादा को तोड़ कर ताटका का वध किया। (स्त्री पर हाथ उठाना वीरता के लिए कलंक है) जिसने भाई सुग्रीव के इशारे से वालिपर छिपकर बाण छोड़ा। वह क्षत्रियजाति के योग्य धनुष तथा ऋषियों के उपयुक्त जटा को धारण करने वाला है, यह परस्पर विरूद्ध बाते हैं। वह राम सज्जन है और हम लोग असज्जन, अहो, दूसरे का वचन कितना ज्ञानशून्य है। अथवा दूसरों के साधुत्व असाधुत्व, विषयक ज्ञान पर विना विचार किये विश्वास करने वाले व्यक्ति अल्पज्ञ होते हैं॥ १८॥

अमात्यः—देव ! ममैतावानधिकारः ।

रावणः—कथय कस्तवाधिकारः ।

अमात्यः—त्रिवर्गप्रापणम् ।

रावणः—कस्त्रिवर्गः ।

अमात्यः—धर्मार्थकामाः ।

रावणः—विभज्य कथय ।

अमात्यः—धर्मः ।

रावणः—

दण्ड्यानां दण्डनोन्निद्रो दण्डैर्मे दण्ड्यते यमः ।
स्वर्गैश्वर्यं मदायत्तं धर्मं किं सञ्चिनोम्यहम् ॥ १९ ॥

धर्त्ता, स रामः = दशरथसुतः, साधुः = सज्जनः, वयम् = वीरकर्मनिरताः रावणा दयः, असाधवः = असज्जनाः, अहो ! परप्रत्ययाः परवचनम् प्रत्ययः = प्रमाणम् येषाम् तथोक्ताः, साधुत्वादिज्ञाने परवचनं प्रमाणीकृत्य तथा मन्यमाना इति भावः बालाः = अल्पज्ञाः (सन्ति)। उल्लंघितमर्यादमपि रामं साधुम्मन्यमानस्त्वम् साधुत्वासाधुत्वज्ञानमन्थरः प्रतिभासीति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥१८॥

अथ रावणः स्वपक्षे धर्मवैयर्थ्यं प्रतिपादयति—दण्ड्यानामिति ॥ दण्ड्याना दण्डनोन्निद्रः यमः मे दण्डैः दण्ड्यते, स्वर्गैश्वर्यम् मदायत्तम् (अस्ति), अहम् किम् धर्मम् सञ्चिनोमि इत्यन्वयः । दण्ड्यानाम् = दण्डार्हाणाम्, दण्डनोन्निद्रः = दण्डयितुमुद्यतः, यमः = धर्मराजः, मे = मम, दण्डैः = ममकृतदण्डनैः, सैन्यैर्वा

अमात्य—देव ! हमारा इतना अधिकार है ।

रावण—कहो, तुम्हारा कौन अधिकार है ?

अमात्य—त्रिवर्ग की प्राप्ति ।

रावण—वह त्रिवर्ग कौन है ?

अमात्य—धर्म अर्थ और काम ।

रावण—अलग अलग कहो ।

अमात्य—धर्म ।

रावण—अपराधियों को दण्ड देने में सतत जागरूक यमराज भी हमारे दण्डों से दण्डित होता है । स्वर्ग के सभी वैभव हमारे अधीन हैं । फिर मैं धर्म का सा... क्या करूँ ॥ १९ ॥

कस्ततोऽन्यः।

अमात्यः—अर्थः।

रावणः—किमर्थेन साध्यम्।

अमात्यः—कोशदण्डयोरभ्युच्छ्रयः।

रावणः—

दण्डो मे रजनिचरा नभश्चरन्तः
कोशो मे भवति गुरुः कुबेर एव।
आयत्तं मयि जगतां त्रयं समग्रं
भूतार्थं कथय करोति किं ममार्थः॥ २०॥

दण्ड्यते = अनुशास्यते, स्वर्गैश्वर्यम् = द्युलोकविभूतिः, मदायत्तम् = मदधीनम्, (अस्ति) अतः, अहम् = यमस्यापि शासकः, लब्धस्वर्गवैभवः, धर्मम्, किम् = किमर्थम्, सञ्चिनोमि = सञ्चयं करोमि। प्राप्तस्वर्गवैभवस्य मम धर्मसञ्चयेन प्रयोजनं नास्तीति भावः॥ अनुष्टुब् वृत्तम्॥ १९॥

अथ रावणः कोशदण्डयोरभ्युच्छ्रयस्य सिद्धत्वं दर्शयति—दण्डो मे इति॥ नभश्चरन्तः रजनिचराः मे दण्डः, कुबेर एव मे गुरुः कोशः भवति, समग्रम् भूतार्थम्, जगताम् त्रयम्, मयि आयत्तम्, अर्थः मम किम् करोति इति कथय इत्यन्वयः। नभश्चरन्तः = गगनसञ्चारिणः, रजनिचराः = राक्षसाः, मे = मम, दण्डः = सैन्यम्, मे गुरुः कोशः = महान् निधिः, कुबेर एव = धनाधिप एव, भवति = वर्त्तते, समग्रम् = सकलम्, भूतार्थम् = सिद्धप्रयोजनम्, जगताम् त्रयम् = त्रिभुवनम्, मयि = रावणे, आयत्तम् = अधीनीकृतम्, (अस्ति) (इतः परम्) अर्थः = धनम्, मम = सिद्धकोशदण्डसमुच्छ्रयस्य रावणस्य, किं करोति = किं साधयति, अर्थेन यत् साध्यं तन्मम प्रागेव सिद्धमतो नास्ति प्रयोजनमर्थेनेति भावः। प्रहर्षिणी वृत्तम्॥ २०॥

उसके बाद दूसरा कौन है?

अमात्य—अर्थ।

रावण—अर्थ से किसकी सिद्धि होती है?

अमात्य—कोष और सेना।

रावण—आकाश में विचरने वाले राक्षस ही हमारी सेना हैं। श्रेष्ठ कुबेर ही हमारे कोष हैं। त्रिभुवन की सभी चीजें हमारे अधीन है। तब बताओ अर्थ हमारा क्या करता है॥ २०॥

कः पश्चिमः।

अमात्यः—कामः।

रावणः—तदर्थिनो वयम्। तेन ममाभिलाषः पूरणीयः।

अमात्यः—तत्राप्यतिशये मनः कर्तव्यम्।

रावणः—तथैव क्रियते।

अमात्यः—यद्येवम्,

अनया कृतमन्यभुक्तया वसुधागोचरया विरक्तया।
अतिशायि महेन्द्रयोषितां वपुषा किं न तवावरोधनम्॥ २१॥

पश्चिमः = अन्तिमः।

तदर्थिनो वयम्—कामाभिलाषिणो वयम्।

अतिशये इति॥ सौन्दर्यादिगुणैरन्यरमणीभ्योऽतिशायिनि स्त्रीरत्नेऽभिलाषो विधेय इत्यर्थः।

अमात्यः सीतायामतिशायित्वं खण्डयति—यद्येवमिति॥ यद्येवम् = यदि अतिशायिनि स्त्रीरत्ने भवतोऽभिलाषस्तर्हि—अनयेति॥ वसुधागोचरया अन्यभुक्तया विरक्तया अनया कृतम्, तवावरोधनम् वपुषा महेन्द्रयोषिताम् अतिशायि किम् न?, इत्यन्वयः। वसुधागोचरया = वसुधा = पृथिवी गोचरः = आश्रयो यस्या तया वसुधामात्राश्रययेत्यर्थः, मृत्युलोकनिवासिन्याः स्वद्वशङ्गनाभ्यः सुराङ्गनाभ्ये मनुष्यजातित्वेन अस्या निकृष्टत्वं स्फुटमेवेति भावः। अन्यभुक्तया = अन्येन = अपरेण भुक्ता = उपभोगविषयताङ्गता तया अन्योपभोगविषयया, अनेन सीताया कन्यकात्वं निराक्रियते। विरक्तया = अनुरागरहितया, अन्योपभुक्तापि यद्यनुरक्त

अन्तिम कौन है?

अमात्य—काम।

रावण—हम उसी को चाहते हैं। इसलिए हमारी इच्छा पूरी होनी चाहिए।

अमात्य—उसमें भी अतिशय अर्थात् किसी विशिष्ट स्त्रीरत्न में मन लगाना चाहिये।

रावण—वैसी ही किया जाता है।

अमात्य—यदि ऐसा है—तो

पृथिवी पर रहने वाली दूसरों से उपभुक्त, आप में विरागवती इस सीता से क्या? मण्डोदरी प्रभृति महारानियाँ क्या अपने शारिरिक सौन्दर्य से महेन्द्र की स्त्रियों का अतिक्रमण नहीं करती हैं॥ २१॥

रावणः—मूढ ! नात्र परः प्रमाणम् ।

परभुक्तरसा पद्मा परं रत्नं धराकरम् ।

भवेत् तर्हि यत्नो विधेयः, न च सा त्वय्यासक्ता, अतः सर्वथा परित्याज्यैव सेति बोध्यम् । अनया = त्वयि अनुरागरहितया सीतया, कृतम् = अलम् , नास्ति प्रयोजनमित्यर्थः, अनुचितविषयप्रवृत्ताभिलाषो न कर्त्तव्य इति भावः । तव = भवतः, अवरोधनम् = मन्दोदर्य्याद्याः भार्याः, अत्र अवरोधशब्दः अन्तःपुरवाचकः, तेन च तत्रस्था राजमहिष्यः लक्ष्यन्ते । वपुषा = शरीरेण, देहसौभाग्येनेतियावत् , महेन्द्रयोषिताम् = देवराजभार्याणाम् , अतिशायि = अतिक्रामि, न किम् ? = किं न वर्त्तते ? तवान्तः पुरवर्त्तिनो रमणीजनस्य स्पर्धां कर्तुम् सुराङ्गणा एव समर्था न मनुष्याङ्गणा अतः परिपूर्णकामेन भवता सीताभिलाषो न विधेयः। सुन्दरीवृत्तम् ॥ २१ ॥

अथ स्वानभिमतं वचः श्रुत्वा दशकन्धरः क्रुद्धो भूत्वा प्रत्याचष्टे—मूढ इति ॥ मूढ ! = मूर्ख, अत्र = कामविषये, परः = परोपदेशः, न प्रमाणम् = न मानम् , कामः स्वतां पश्यतीति वचनात्। परिभुक्ताया अपि सीतायाः स्त्रीरत्नत्वं समर्थयते—परभुक्तेति ॥ परभुक्तरसा पद्मा, धराकरम् परमरत्नम् , विरक्ता च भारती किं त्यज्यते ?, (यतो न त्यज्यतेऽतः) अयम् नयः (अस्ति) इत्यन्वयः। परभुक्तरसा = परैः = अन्यैः भुक्तः, रसः = सारः यस्याः सा अन्योपभुक्तसारा, पद्मा = धनधान्यादिसम्पदधिष्ठात्री देवता, लक्ष्मीरिति यावत् । पित्रा भुक्ता पुत्रेणापि भुज्यते इति स्पष्टमेव तस्याः परभोग्यत्वम् । धराकरम् = धरा = वसुधा, आकरः = खनिः यस्य तत्, परमरत्नम् = उत्कृष्टं पद्मरागादिकम् , विरक्ता = बहुभिः जन्मभिः

विमर्श—अमात्य रावण को यह समझाने का प्रयास करता है कि सीता में कोई भी असाधारण वैशिष्ट्य नहीं है क्योंकि प्रथम तो वह वसुधा पर रहने वाली साधारण स्त्री है। राम के उपभोग का विषय बन जाने के कारण अक्षत यौवना भी नहीं है। इसके अतिरिक्त वह आप में अनुरक्त भी नहीं है। उदासीन नारी के प्रति प्रेमप्रदर्शन रसाभास ही होता है अतः साधारण नारी की अपेक्षा लोकोत्तर गुणविशिष्ट किसी नारीविशेष के प्रति आपका आकर्षण उचित है। इस प्रकार सीता की निन्दा के व्याज से अमात्य रावण को सीताविषयक वासना से विमुख करना चाहता है॥

रावण—मूर्ख ! यहाँपर अर्थात काम के सम्बन्ध में दूसरों का उपदेश प्रमाण नहीं है। जिसके रस का उपभोग दूसरों ने किया है, ऐसी लक्ष्मी, पृथिवी पर रहने वाला सूर्य-

भारती च विरक्तेति त्यज्यते किमयं नयः ॥ २२ ॥

अमात्यः—(आत्मगतम्) अतः परमायुधानि गतिः। प्रज्ञासाहचर्य-
मतिक्रान्तो देवः ।

रावणः—गच्छ, रामवार्तावबोधनार्थं साम्प्रतं चारानाज्ञापय ।

अमात्यः—यदाज्ञापयति देवः ।

न भयेन युधो न पक्षपातात्
तव शत्रावदमुक्तमप्रियं ते ।

सेव्यमानापि कदाचिदेव कञ्चित् प्रसादयति अतः विरक्ता, भारती=वाग्दे-
सरस्वती, किं त्यज्यते=किं तिरस्क्रियते, सर्वैः स्वीक्रियते एव इत्यर्थः, (यत एव
मतः) अयम्=जानकीविषयको ममाभिलाषः, नयः=न्याय्यः, अस्ति । अ-
परभुक्तरसापद्मा इत्यनेन सीताया अन्यभुक्तता, धराकरं रत्नमित्यनेन तस्य
वसुधागोचरता, विरक्ता भारती इत्यनेन तस्याः रावणविरक्तता च निराक्रियते
तथा च एवम्भूतापि सीता पद्मादिवत् सर्वथा श्लाघ्यगुणा एव अतस्तद्गता-
भिलाषो नानुचित इति भावः। अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ २२ ॥

अथामात्यश्चरनियोगार्थमादिष्टः सन् गमनावकाशलाभेन कृतार्थो भूत्वा
शत्रुपक्षपातादिकं स्वापराधं परिहरन् स्वामिनम्प्रति स्वकर्त्तव्यं निर्दिशति—
न भयेनेति ॥ यत् इदम् ते अप्रियम् मया उक्तम् इति योज्यम् तत् न युधः भये-

---

कान्तमणि और उदासीन विद्या क्या छोड़ दी जाती हैं ? यह न्याय है ॥ २२ ॥

विमर्श=रावण अमात्य के तर्क का खण्डन तीन उदाहरणों से करता है। "लक्ष्मी
अन्यभुक्ता होने पर भी छोड़ने योग्य नहीं है, पृथिवी पर रहने वाला मणि और उदासीन
रहने वाली विद्या का परित्याग नहीं होता। उसी प्रकार अन्यभुक्ता वसुधानिवासिनी तथा
मुझ में उदासीन सीता भी छोड़ने योग्य नहीं। अत एव उसके प्रति हमारा अनुराग न्याय-
संगत ही है" यही उसका तर्क है।

अमात्य—(मन ही मन) उसके बाद शस्त्र ही गति है। देवने ज्ञान का साथ छोड़
दिया है।

रावण—जाओ, राम के समाचार को जानने के लिये गुप्तचरों को आदेश दो।

अमात्य—स्वामी की जो आज्ञा।

मैंने जो भी अप्रिय वचन तुम्हें कहा वह तुम्हारे शत्रु में न तो पक्षपात से और

असिमर्पयतोऽपि कण्ठदेशे
सुजनः शंसति पथ्यमेव भर्तुः ॥ २३ ॥

(निष्क्रान्तः)

रावणः—वर्षवर ! अशोकवनिकामार्गमादेशय ।

वर्षवरः—यदाज्ञापयति महाराजः इत इतः ।

(उभावुद्यानप्रवेशं रूपयतः)

न तव शत्रौ पक्षपातात्, कण्ठदेशे असिम् अर्पयतोऽपि भर्त्तुः पथ्यम् एव सुजनः शंसति इत्यन्वयः । यदिदम् = हितप्रदमपि त्वद्बुद्ध्या, अप्रियम् = त्वन्मनः-प्रतिकूलम् वचः ते = तुभ्यम् उक्तम् = कथितम् मयेति शेषः, तत्, युधः = संग्रामात्, भयेन = त्रासेन, न, हितोपदेशे नास्ति भयावकाशः । न तव = न भवतः, शत्रौ = रिपुभूते रामादौ, पक्षपातात् = अनुकूलताकारणात्, रामादौ नास्ति ममानुकूल्यमित्यर्थः । यतोहि स्वामिनो रिपुरेव तत्प्रकृतेरपि रिपुरत एव भवतः शत्रुभूतो रामो ममापि शत्रुरेव । कण्ठदेशे = गलप्रदेशे, असिम् = खड्गम्, अर्पयतः अपि = समर्पयतः अपि, भर्त्तुः = स्वामिनः, सुजनः = साधुजनः, पथ्यमेव = हितमेव, शंसति = कथयति । हितप्रदमपि वचनम् अप्रियम्मन्यमानेन कुपितेन भर्त्रा प्राप्तमात्मविनाशमविगणय्य स्वजनः सर्वदा स्वामिहितमेव वक्तीति भावः । कालभारिणी वृत्तम् । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः ॥ २३ ॥

युद्ध में भय से ही । गर्दन में तलवार लगाने वाले भी स्वामी को सज्जन लोग हित की बात ही कहते हैं ॥ २३ ॥

विमर्श = अमात्य ने स्वामी के प्रति अपनी कर्तव्यनिष्ठता का परिचय बड़े निर्भीक भाव से दिया है । वह स्वामी की कल्याण-कामना से ही प्रेरित होकर अप्रिय किन्तु हितप्रद वचन कहता है । उसके अप्रिय वचन-प्रयोग का प्रेरक रावण के शत्रु राम के प्रति पक्षपात अथवा युद्ध का भय नहीं है । इसी स्थिति को वह स्पष्ट शब्दों में कह देता है ।

(चला जाता है)

रावण—वर्षवर ! अशोकवाटिका का मार्ग दिखाओ ।

वर्षवर—महाराज की जो आज्ञा । इधर इधर ।

(दोनों उद्यान में प्रवेश करते हैं)

रावणः—(सर्वतो विलोक्य) अहो ! परिचयपरवशता चित्तस्य। अत्रासीनापि सीता रामतपोवनमेव चिन्तयति। अत्र हि,

एते स्वर्गविभूषणं विटपिनो मन्दाकिनीरोधसो
धीरं पश्यति देवभर्तरि महीं नेतुं मयोन्मूलिताः।

अथ रावणः सहायभूतेन वर्षवरेण सह अशोकवाटिकां प्रविश्य अतिमनोहरं तदाभोगञ्चावलोक्य तस्य जानकीकुतूहलहेतुत्वाभावेन नितरां खिन्नो भूत्वा आह—अहो परिचयपरवशतेति। परिचयः = परिचयवासना तया कृतेन परिचिते वस्तुनि औत्सुक्येन यत्पारवश्यं परिचितवस्त्वधीनत्वन्तत् अहो = अतिकष्टम्। तदेवोपपादयति—अत्रेति॥ परिचयवशादेवात्र विद्यमानाऽपि सीता अशोकवाटिकामपि रामतपोवनत्वेनैव पश्यतीति भावः।

अथ दशग्रीवोऽशोकवाटिकावैशिष्ट्यं वर्णयति—एते इति॥ मया देवभर्तरि धीरम् पश्यति (सति) महीम् नेतुम् मन्दाकिनीरोधसः उन्मूलिताः एते स्वर्गविभूषणम् विटपिन दृश्यन्ते इति शेषः। एकतः राजहंसमिथुनम् एषु हेमाम्बुजानि आचुम्बति, एकतः पुंस्कोकिलाः सकलिकम् पल्लवम् दृष्ट्वा माद्यन्तीत्यन्वयः॥

मया = रावणेन, (पूर्वम्) देवभर्तरि = देवराजे, धीरम् = धैर्यपूर्वकम् पश्यति = अवलोकयति सति, महीम् = पृथिवीम्, नेतुम् = आनेतुम्, मन्दाकिनीरोधसः = वियद्गंगायाः तटप्रदेशात् उन्मूलिताः = उत्पाटिताः, (ये ते) एते = परिदृश्यमानाः स्वर्गविभूषणम् = द्युलोकाऽलङ्कारभूतम्, विटपिनः = शाखिनः दृश्यन्ते इति शेषः। पूर्वमेभिर्वृक्षैः स्वर्गस्य लोकान्तरोत्कृष्टत्वञ्जातम्, साम्प्रतम्

रावण—(चारों तरफ देखकर) परिचित वस्तु के प्रति मन की परवशता कष्टदायक होती है। यहाँ पर विराजमान भी सीता राम के तपोवन की ही चिन्ता करती है। यहाँ तो—देवराज इन्द्र के दृढ़तापूर्वक देखते रहने पर गंगा के तटवर्ती इन वृक्षों को पृथिवीपर लाने के लिये हमने उखाड़ लिया। इन में किसलय रूप में विद्यमान स्वर्ण कमलों का एक ओर हंसों का जोड़ा चुम्बन (पान) करता है और दूसरी ओर कलि सहित किसलय को देख कर पुरुष जाति के कोयल उन्मत्त हो रहे हैं॥ २४॥

विमर्श—उद्दीपन सामग्री के विद्यमान रहने पर भी सीता को कामविषयक उत्कण्ठा नहीं होती है। वह राम के परिचय की अधिकता के कारण उसी की चिन्तना करती है। उद्यानवैभव के प्रति सीता की उदासीनता का कारण राम का परिचयाधिक्य ही है।

पश्चाचुम्बति राजहंसमिथुनं हेमाम्बुजान्येकतो
दृष्ट्वा पल्लवमेकतः सकलिकं माद्यन्ति पुंस्कोकिलाः ॥२४॥

वर्षवरः—(आत्मगतम्) चम्पकसौरभ्यमिव षट्पदमाला पश्यति रावणविभवं सीता।

रावणः—(कामवेशं निरूप्य)

जनतामशोकसहकारमञ्जरी-
शरमात्रया सरभसं भिनत्ति यः।

एतैः पादपैर्मञ्जगर्या लङ्कायाः लोकोत्तरता जायत इति भावः। एकतः=एकस्यां दिशि, राजहंसमिथुनम्=राजहंसयुग्मम्, एषु=पुरोवर्तमानेषु वृक्षेषु, हेमाम्बुजानि=एतेषाम् पुष्पतया अवस्थितानि स्वर्णमयानि कमलानि, आचुम्बति=परिचुम्बनं करोति। परिमलाघ्राणनपूर्वकं मधु पिबतीत्यर्थः। एकतः=एकस्यां दिशि, पुंस्कोकिलाः=अवान्तरजातिविशेषाः पिकाः, सकलिकम्=कलिकायुतम्, पल्लवम्=किसलयम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, माद्यन्तिः=मत्ताः भवन्ति। सर्वत्र कामोद्दीपनहेतुभिरेभिः परिदृश्यमानैः वैदेह्याः कौतुकलेशोऽपि न भवत्यतः कष्टं परिचयपारवश्यमिति ध्येयम् ॥ शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। विशेषोक्तिरलङ्कारः ॥२४॥

रावणं प्रति जानक्या औदासीन्यं संलक्ष्य वर्षवर आत्मगतं कथयति—चम्पकसौरभ्यमिति॥ यथा षट्पदमाला=भ्रमरपङ्क्तिः, चम्पकसौरभ्यम्=चम्पकस्य=एतन्नामकस्य तीक्ष्णगन्धस्य पुष्पविशेषस्य, सौरभ्यम्=सुरभिम्, पश्यति=उपेक्षाबुध्याऽवलोकयति तथैव सीताऽपि रावणविभवम्=दशग्रीवसम्पदम्, उपेक्षापूर्वकं पश्यतीत्यर्थः। अलयः चम्पकपुष्परसं न गृह्णन्ति इति लोके प्रसिद्धिः।

अथ दशग्रीव उद्यानशोभामालोक्य वर्धितमदनसन्तापकारणं विचारयति—जनतामिति॥ यः अशोकसहकारमञ्जरीशरमात्रया सरभसम् जनताम् भिनत्ति। अधुना सोऽयम् अयुग्मसायकः सुरलोकवृक्षसुमनःशिलीमुखः (सन्) जनताम् भिनत्तीति किम् पुनः उच्यते इति शेषः इत्यन्वयः। यः=कामदेवः, अशोकसहकारमञ्जरीशरमात्रया=अशोकसहकारयोः या मञ्जरी सा एव शरः=बाणः तन्मात्रया=भूमिप्रसवसहकारादिसुमनवाणैरपि यः सरभसम्=संरम्भम्, जनताम्=जन-

---

वर्षवर—(मन ही मन) जिस प्रकार भौंरों की पङ्क्ति चम्पा की सुगन्धि को देखती है उसी प्रकार सीता भी रावण के वैभव को देखती है।

रावण—(काम के आवेश का अनुभव कर) जो कामदेव अशोक और आम्रमञ्जरी

अधुना स किं पुनरयुग्मसायकः
सुरलोकवृक्षसुमनः शिलीमुखः ॥ २५ ॥

वर्षवर ! ननु सीता शिंशपाश्रिता ।

वर्षवरः—देव ! अथ किम् ।

रावणः—सीता मयि

नयति नयने सावज्ञं मां करोति करावृतां
श्रुतिमसहना श्रोत्रानन्दं वचो मयि जल्पति ।

समूहम्, भिनत्ति = छिनत्ति, अधुना = सम्प्रति सोऽयम् अयुग्मसायकः = पञ्चशरः (कामदेवः) सुरलोकवृक्षसुमनःशिलीमुखः = पञ्चसुरतरुकुसुमबाणः सन् जनताम् भिनत्ति इति किम् पुनरुच्यते । यो भुवनतलसंस्पर्शि अशोकसहकार-वृक्षद्वयपुष्पशरैर्लोकान् भेत्तुं शक्तः स पुनरधुना सुरपुरवर्त्तिनां पञ्चानां वृक्षाणां कुसुमसायकैः लोकान् विकलीकरोति इत्यत्र नास्ति चित्रम्, पूर्वापेक्षयोत्कृष्टसाधन-लब्धत्वादिति भावः ॥ मञ्जुभाषिणी वृत्तम् । अर्थापत्तिरलङ्कारः ॥ २५ ॥

अथ रावणः स्वं प्रति वैदेह्याः प्रतीपत्वं वर्णयति—नयति नयने इति ॥ मयि (सानुरागं पश्यति सति) सीता सावज्ञम् माम् नयने नयति, श्रोत्रानन्दम् वचः मयि जल्पति असहमाना (सती) श्रुतिम् करावृताम् करोति । बद्धाञ्जलौ मयि पुरः तिष्ठति सति रामम् विलपति, अहम् प्रतिदिनम् (अभ्यसन्नपि) अस्याः प्रसादनसाधनम् किमिति न जाने इत्यन्वयः ॥ मयि = रावणे (सानुरागं पश्यति

के बाणमात्र से जनसमूह को हठात् विद्ध कर देता है, तो इस समय पाँच बाणों वाला वह देवलोक के वृक्षों के फूलों के बाणों से छेदता है तो क्या ? ॥ २५ ॥

विमर्श = पृथिवी पर के एकाध पुष्पबाण से ही जनसमूह को घायल करने वाला कामदेव इस समय देवलोक के पञ्चपुष्पबाण से जनसमूह को यदि घायल करता है तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

वर्षवर ! क्या सीता सीसम वृक्ष के नीचे है ?

वर्षवर—जी हाँ ।

रावण—सीता मेरे अनुरागपूर्वक देखने पर तिरस्कारपूर्वक नजर डालती है । अर्थात् मेरे देखने पर मुझसे मुँह फेर लेती है । कानों को सुख देने वाले वचन बोलने पर उसे सहन नहीं करती हुई अपने कानों को बन्द कर लेती है । मनाने के लिये हाथ

विलपति पुरो रामं बद्धाञ्जलौ मयि तिष्ठति
प्रतिदिनमहं जाने नास्याः प्रसादनसाधनम् ॥ २६ ॥

(ततः प्रविशति शिंशुपाश्रिता सीता लतावलयान्तरिता मण्डोदरी चेटी च)

सीता—अहो ! रक्खसजादीणं णिग्घिणदा । (अहो ! राक्षसजातीनां निघृणता ।)

मण्डोदरी—हञ्जे ! एसो महाराओ । चिंतिदं दाणिं पेक्खिदव्वं संवुत्तं। (हञ्जे ! एष महाराजः । चिन्तितमिदानीं प्रेक्षितव्यं संवृत्तम् ।)

सति) सीता = जानकी सावज्ञम् = अवज्ञापूर्वकम् नयने = नेत्रद्वयम्, माम् रावणम् , नयति = प्रापयति । सहसा मद्दर्शने जाते सावज्ञा भूत्वा पराङ्मुखी भवतीति भावः । श्रोत्रानन्दम् = कर्णद्वयानन्दप्रदम् , वचः=वचनम् मयि जल्पति= मयि कथयति (सति) असहना = तद्वचः श्रोतुमसमर्था भूत्वा, श्रुतिम् = श्रवणम्, करावृताम् = कराभ्याम् संवृताम्, करोति = विदधाति, प्रियमपि मे वचनं न शृणोतीत्यर्थः । बद्धाञ्जलौ = अञ्जलिम् बद्ध्वा पुरः = अग्रे मयि तिष्ठति सति = मयि विद्यमाने सति रामम् = स्वभर्तारम्, विलपति = विलापं करोति । अञ्जलिबद्धं पुरस्थमपि मामुपेक्ष्य परोक्षं रामं विलपतीति भावः । प्रतिदिनम् = अनुदिनम् अहम् = रावणः (अभ्यसन्नपि) अस्याः = पराङ्मुखायाः सीतायाः, प्रसादनसाधनम् = प्रसन्नताहेतुम्, न जाने = न जानामि । प्रतिदिनमस्याः प्रसादनकर्मव्यापृतोऽप्यहं तत्साधनज्ञानशिथिल इव भवामीति भावः । हरिणी वृत्तम् ॥ २६ ॥

निशाचरीसम्पादितपीडाया दुरन्तत्वमनुचिन्त्य सीता निरूपयति—अहो राक्षसजातीनामिति ॥ निर्घृणता = दयाराहित्यम् ।

लतान्तरिता मण्डोदरी रावणं दृष्ट्वा आह—एष इति ॥ चिन्तितम् = महाराजं

जोड़ कर उसके आगे मेरे खड़ा होने पर राम के लिये विलाप करती है । इस प्रकार प्रतिदिन प्रयास करने पर भी उसको प्रसन्न करने का उपाय समझ नहीं पा रहा हूँ ॥२६॥

(उसके बाद सीसमवृक्ष के नीचे सीता और लतामण्डल में छिपी हुई मन्दोदरी और दासी प्रवेश करती है) ।

सीता—राक्षस जाति की नृशंसता कष्टप्रद है ।

मन्दोदरी—अरी, यह महाराज हैं । जिसे हम लोगों ने सोचा था वह अब देखने योग्य हो गया है ।

रावणः—(उपेत्य) ननु देवि !

सीता—(आत्मगतम्) किं णु खु पावो भणिस्सदि । (किं नु खलु पापो भणिष्यति ।)

रावणः—देवि !

स्नात्वा गङ्गापयसि विहितोपायना कल्पवृक्षैः
कैलासे वा शिखरिणि वने नन्दने वा मनोज्ञे ।
दुष्प्रापां वः सुतनु ! तपसा निर्विश स्वर्गलक्ष्मीं
पातिव्रत्यं परिघ इव ते स्वर्गमार्गं रुणद्धि ॥ २७ ॥

प्रति विरक्तायां जानक्यां तस्य स्मरचापलत्वमवलोक्य ापहसिष्यामि इति यत् पूर्वम् विचारितम् तत् साम्प्रतम् प्रेक्षितव्यम् = प्रत्यक्षतया ऽवलोकनयोग्यम्, संवृत्तम् = सञ्जातम् । सीतानुरक्तो मदनाकुलो महाराज इदानीमस्माभिः सोपहासं द्रष्टव्य इति भावः ॥

अथ रावणः सीताप्रसादनतत्परो भूत्वाऽऽह—स्नात्वेति ॥ सुतनु ! कैलासे शिखरिणि, मनोज्ञे नन्दने वने वा गंगापयसि स्नात्वा कल्पवृक्षैः विहितोपायना (भूत्वा) तपसा वः दुष्प्रापाम् स्वर्गलक्ष्मीम् (मया सह) निर्विश । परिघ इव ते पातिव्रत्यम् स्वर्गमार्गम् रुणद्धि इत्यन्वयः ॥ हे सुतनु = हे सुविग्रहे, कैलासे शिखरिणि = कैलासाख्ये पर्वते वा = अथवा, मनोज्ञे = मनोहारिणि, नन्दने वने = देवराजोद्याने, गंगापयसि = मन्दाकिनीजले, स्नात्वा = स्नानं कृत्वा, कल्पवृक्षैः = देवतरुभिः, विहितोपायना = विहितम् = सम्पादितम्, उपायनम् = उपाहारः, यस्यै तथा भूता सती वः = युष्माकम्, तपसा = तपोमार्गेण दुष्प्रापाम् = दुःखेन प्राप्तुं योग्याम्, असुलभामित्यर्थः । स्वर्गलक्ष्मीम् = द्युलोकवैभवम्, निर्विश = प्रविश । मया सह स्वर्गसुखमनुभवेति भावः । परिघ इव = अर्गलम् इव ते = भवत्याः पातिव्रत्यम् = पतिव्रताधर्मः, स्वर्गमार्गम् = अमरपुरपथम्, रुणद्धि = अवरोधयति । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् । उपमाऽलङ्कारः ॥ २७ ॥

रावण—(समीप जाकर) देवि !

सीता—(मन ही मन) पापी न जाने क्या कहेगा ?

रावण—देवि ! गंगा के जल में स्नान करके कल्पवृक्षों के द्वारा प्रदत्त उपहार वाली, शिखर युक्त कैलाश अथवा मनमोहक नन्दन-वन में भी तपस्या से नहीं मिलने वाली स्वर्ग-लक्ष्मी को मेरे साथ प्राप्त करो । हे सुतनु ! तुम्हारा पातिव्रत धर्म तुम्हारे स्वर्ग के मार्ग को अर्गला की भाँति रोक रहा है ॥ २७ ॥

सीता—अघं दे सग्गमग्गं अज्जउत्तं अणुव्वदा णरअं एव्व पविसदु-कामम्हि। (अघं ते स्वर्गमार्गम् आर्यपुत्रमनुव्रता नरकमेव प्रवेष्टुकामास्मि।)

रावणः—देवि ! तव कारणात् सर्वमन्तःपुरं त्यजामि।

मण्डोदरी—सुमरदु सुमरदु दाणिं महाराओ। (स्मरतु स्मरतु इदानीं महाराजः।)

सीता—ण हि ण हि केवलं अन्तेउरं एव्व। मम किदे तुए जीविअं वि परिच्चइदव्वं भविस्सदि। (न हि न हि केवलमन्तःपुरमेव। मम कृते त्वया जीवितमपि परित्यक्तव्यं भविष्यति।)

मण्डोदरी—अहो ! परुसवअणा मणुस्सजादी। (अहो ! परुषवचना मनुष्यजातिः।)

रावणः—सत्यं मे जीवितं हरति कामः।

सीता—ण हि ण हि कामादपि सुरूपो अज्जउत्तो। (न हि न हि कामादपि सुरूप आर्यपुत्रः।)

रावणः—(प्रहस्य) हहह !।

युधि वनचरवृत्तेरायुधं क्षत्रबन्धो-
स्तृणमयमविषह्यं रावणेनेति युक्तम्।

अथ रावणः सीतया यदुक्तम् "तव जीवनमार्यपुत्रो हरिष्यति" तन्निराकरोति—युधिवनचरेति॥ वनचरवृत्तेः क्षत्रबन्धोः तृणमयम् आयुधम् युधि अविषह्यम्

सीता—तुम्हारा स्वर्ग पाप है। आर्यपुत्र की अनुगामिनी होकर मैं नरक में ही जाना चाहती हूँ।

रावण—देवि ! तुम्हारे लिए मैं अपने समस्त रनिवास को छोड़ रहा हूँ।

मण्डदोरी—महाराज ! इस समय स्मरण कीजिये स्मरण कीजिए।

सीता—केवल अन्तः पुर ही नहीं मेरे लिए तुमको प्राणों से भी हाथ धोना पड़ेगा।

मण्डोदरी—अरे, मनुष्य जाति कठोर वचन बोलने वाली होती है।

रावण—सचमुच कामदेव मेरे प्राणों का हरण कर रहा है।

सीता—नहीं नहीं, कामदेव से भी सुन्दर आर्यपुत्र।

राणण—हहह, जिसने पर्वतों के पक्ष को उच्छिन्न करने वाले इन्द्र के वज्र को पल्लव के समान कोमल समझ कर अपने वक्षस्थल पर सहन किया, उस रावण के द्वारा

किसलयसुकुमारं वक्षसा येन सोढं
क्षितिधरपतिपक्षच्छेदि वज्रं मघोनः ॥ २८ ॥

मण्डोदरी—को णु खु महाराअस्स उवक्कमो। केण वि एसा अणुणअं ण गेह्णइ। (को नु खलु महाराजस्योपक्रमः। केनापि एषा अनुनयं न गृह्णाति।)

रावणः—देवि ! अयमञ्जलिः।

गन्धर्वदैत्यगगनेचरयक्षनाग-
कन्यासनाथमवरोधनमस्मदीयम्।

इति युक्तम्, येन रावणेन वक्षसा क्षितिधरपतिपक्षच्छेदि मघोनः वज्रम् किसलयसुकुमारम् सोढम् इत्यन्वयः ॥ वनचरवृत्तेः = वनचरस्य वृत्तिरिव वृत्तिः = व्यवहारो यस्य तस्य, क्षत्रबन्धोः = क्षत्रियं बन्धुं व्यपदिशति न तु स्वयं क्षत्रियवृत्तिः तस्य क्षत्रियबन्धुव्यवहारिणः, तृणमयम् = तृणनिर्मितम्, आयुधम् = शस्त्रम् युधि = संग्रामे रावणेन = लंकेश्वरेण, अविषह्यम् = सहनाऽयोग्यम् इति युक्तम् = समीचीनम्, न समीचीनमिति काक्वा व्यज्यते। (यतोहि) येन = रावणेन वक्षसा—उरःप्रदेशेन, क्षितिधरपतिपक्षच्छेदि = नगपतिपक्षविनाशि, किसलयसुकुमारम् = पल्लवस्पर्शवन्मृदुतमम्, मघोनः = इन्द्रस्य, वज्रम् = कुलिशम् सोढम् = सोढुं शक्तम्। अत्र काक्वा विपरीत एवार्थः प्रतीयते तथाहि—यो रावणो देवराजस्य पर्वतपक्षच्छेदिकुलिशप्रहारं स्ववक्षसा किसलयस्पर्शवदङ्गीकृतवान् सोऽधुना वनवासिनो रामस्य तृणमयायुधं सोढुं न शक्त इति केवलं प्रमत्तप्रलाप एवेति भावः। अत्र 'मया' इति स्थाने 'रावणेन' इति कथनेन तस्य लोकोत्कृष्टत्वं ध्वन्यते। मालिनी वृत्तम्। अर्थापत्तिरलङ्कारः ॥ २८ ॥

कामपरवशो रावणः सीतायै सर्वस्वमर्पयन्नाह—गन्धर्वेति ॥ हे सुन्दरि ! यदि मयि तव प्रसादः अस्ति (तर्हि) गन्धर्वदैत्यगगनेचरयक्षनागकन्यासनाथम्

युद्ध में वनवासी क्षत्रिय का तृण के समान हल्का शस्त्र सहन करने योग्य नहीं, यह उचित है ॥ २८ ॥

मण्डोदरी—महाराज का क्या उपक्रम है ? यह तो किसी प्रकार से भी प्रार्थना को स्वीकार नहीं करती है।

रावण—देवि ! यह अञ्जलि है।

सुन्दरि ! यदि मेरे ऊपर तुम प्रसन्न हो जाओ तो गन्धर्व, राक्षस, अमर, यक्ष और

सर्वस्वमेव तव सुन्दरि ! दासकृत्य-
मालम्बते यदि तवास्ति मयि प्रसादः ॥ २९ ॥

मण्डोदरी—इदं वि इमाए अहं करिस्सम् । अण्णं जणं ण जाणामि । (इदमप्यस्या अहं करिष्ये । अन्यं जनं न जानामि ।)

चेटी—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिणी । सव्वभाअविणिबद्धेहिं अञ्जलिपुडेहिं विरलप्फुल्लविसहरो विअ महासमुद्दो भट्टा । (पश्यतु पश्यतु भट्टिनी । सर्वभागविनिबद्धैः अञ्जलिपुटैः विरलोत्फुल्लविसधर इव महासमुद्रो भर्ता ।)

अस्मदीयम् अवरोधनम् (अपि चास्मदीयम्) सर्वस्वम् एव तव दासकृत्यम् आलम्बते इत्यन्वयः ॥ हे सुन्दरि = हे शोभने ! यदि तव = भवत्याः प्रसादः, प्रसन्नता, मयि = रावणे अस्ति = वर्तते (तर्हि) गन्धर्वदैत्यगगनेचरयक्षनागकन्यासनाथम् = गन्धर्वाश्च, दैत्याश्च, गगनेचराश्च, यक्षाश्च, नागाश्चेति गन्धर्वदैत्यगगनेचरयक्षनागाः तेषाम् कन्याभिः = कुमारिकाभिः सनाथम् = संकुलम्, अस्मदीयम् = मामकीनम्, अवरोधनम् = अन्तःपुरम् (अपि च) सर्वस्वम् = न केवलं स्त्रीसमूहोऽपितु' निखिलोऽपि मदायत्तो मित्रामात्यादिप्रकृतिसमूहः तव दासकृत्यम् = भृत्यकर्म, आलम्बते = अवलम्बते, स्वीकरिष्यतीति यावत् । यदि त्वम् मय्यनुरक्ता भवसि तदा मदायत्तं सर्वमपि मित्रामात्यवनितादिकन्त्वदायत्तं सत्तवदास्यमङ्गीकरिष्यतीति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २९ ॥

अथ चेटी अञ्जलिबद्धम् रावणं महासमुद्रस्योपमेयं प्रतिपादयति—सर्वभागेति ॥

सर्वभागविनिबद्धैः = सर्वेषु शरीरभागेषु सम्बद्धैः, अञ्जलिपुटैः = दशभिः अञ्जलिपुटैः विरलोत्फुल्लविसधरः = विरलोत्फुल्लाः = ईषद् विकसिताः - विसधराः = पङ्कजानि यत्र तादृशः महासमुद्र इव = महोदधिरिव भर्ता = स्वामी, राजते इति शेषः । विसधरशब्दोऽत्र पङ्कजवाचकः ।

नाग कन्याओं के साथ हमारा समस्त अन्तः पुर और अन्य भी हमारी सभी चीजें तुम्हारे चरणों पर दासी के रूप में न्योछावर है ॥ २९ ॥

मण्डोदरी—इसका यह भी हमें करना होगा ।

मैं दूसरे व्यक्ति को नहीं जानती हूँ ।

दासी—देखिये देखिये स्वामिनि ! सभी ओर से सम्बद्ध अञ्जलिपुटों से स्वामी कुछ कुछ विकसित कमल वाले महासमुद्र की भाँति लग रहे हैं ।

मण्डोदरी—अवि णाम महाराओ अहिलासभंगेण इमस्सिं पदिव्वदाअं कुपिदो ण भवे। (अपि नाम महाराजः अभिलाषभङ्गेण अस्यां पतिव्रतायां कुपितो न भवेत्।)

वर्षवरः—(आत्मगतम्) एष पश्यामि।

चान्द्री कलेव शरपाण्डुरगात्रलेखा
तन्वी विभाति मिथिलाधिपतेस्तनूजा।
लक्ष्मीमयं च रचिताञ्जलिरातनोति
पद्माकरस्य विनिमीलितपङ्कजस्य ॥ ३० ॥

चान्द्री कलेति ॥ शरपाण्डुरगात्रलेखा तन्वी मिथिलाधिपतेः तनूजा चान्द्रीकला इव विभाति। रचिताञ्जलिः अयम् च विनिमिलितपङ्कजस्य पद्माकरस्य लक्ष्मीम् आतनोति इत्यन्वयः ॥ शरपाण्डुरगात्रलेखा = शरवत् स्वच्छा गात्रलेखा = देहरेखा यस्याः तथाभूता, तन्वी = कृशाङ्गी, मिथिलाधिपतेः = राज्ञः जनकस्य, तनूजा = सुता, चान्द्री = चन्द्रसम्बन्धिनी कला इव विभाति = प्रतिभाति। शोभते इति यावत्। रचिताञ्जलिः = कृताञ्जलिः, अयम् च = मत्स्वामी च, विनिमीलितपङ्कजस्य = सङ्कुचितसरोजस्य पद्माकरस्य = कमलाश्रयभूततडागस्य, लक्ष्मीम् = शोभाम् आतनोति = दधाति। यथा चन्द्रकलायाः पद्माकरं प्रति प्रातिकूल्यं स्वाभाविकन्तथैव रावणं प्रति सीतायाः ईदृशं प्रातिकूल्यं नैसर्गिकमतः सहस्रैरपि प्रसादनसाधनैस्तत्प्रातिकूल्यं दूरीकर्तुं न शक्यते इति गूढाशयः। वसन्ततिलकं वृत्तम्। उपमाऽलङ्कारः ॥ ३० ॥

मण्डोदरी—अभिलाषा की पूर्ति नहीं होने पर कहीं महाराज इस पतिव्रता पर क्रुद्ध न हो जाँय?

वर्षवर—(मन ही मन) यह देखता हूँ—

सरपत के समान स्वच्छ शरीर वाली यह जनकसुता सीता चन्द्रमा की कला की शोभा धारण करती है और अञ्जलि बाँधे यह रावण संकुचित कमलवाले तालाब की शोभा को प्राप्त कर रहा है ॥ ३० ॥

विमर्श=सीता के समक्ष अञ्जलि बाँधे रावण को तालाब के समान वर्णन किया गया है। चन्द्रमा के उदित होने पर तालाब में कमल मुँद जाते हैं। सीता चन्द्रकला के समान है। रावण की बँधी हुई अञ्जलि सङ्कुचित कमल के समान और रावण गुलाब के तालाब के समान है। सीता के समक्ष अञ्जलिबद्ध रावण के दृश्यविधान की समता चन्द्रकला

रावणः—देवि ! अयमनुनयसर्वस्वमञ्जलिः। (प्रणमति)

सीता—हद्धि। (पादे दूरमाक्षिपति) हा ! धिक्।

मण्डोदरी—धीरा खु एसा, महाराअस्स सीसं पंकं विअ पावेण परिहरदि। सच्चं दाणिं कोलीणं पुहवीसुदा सीता पदुमणाहो रामेत्ति। (धीरा खल्वेषा, महाराजस्य शीर्षं पङ्कमिव पादेन परिहरति। सत्यमिदानीं कौलीनं पृथिवीसुता सीता पद्मनाभो राम इति।)

वर्षवरः—राजपुत्रि ! किमुपेक्षसे महाराजस्य प्रणिपातम्।

विप्रा यजन्ति च नमन्ति च याः शिवाय
ता देवता यमकुबेरपुरन्दराद्याः।

कौलीनम् = जनप्रवादः। पद्मनाभः = नाभौ पद्म = कमलं विद्यते यस्याऽसौ पद्मनाभो विष्णुः।

प्रणिपातम् = प्रणतिः।

अथ वर्षवरः प्रणतं रावणं प्रत्युपेक्षां प्राप्तां सीतां सम्बोध्य रावणपराक्रमं स्मारयति—विप्रा यजन्तीति॥ हे सुन्दरि ! विप्राः शिवाय याः यजन्ति च ताः यमकुबेरपुरन्दराद्याः देवताः मानं विहाय यस्मै कराणि वितरन्ति, सोऽयम् त्वाम् मौलिभिः मुहुः नमति इत्यन्वयः॥ हे सुन्दरि ! विप्राः=ब्राह्मणाः, शिवाय = कल्याणाय याः (देवताः) (यान् देवान्) यजन्ति = पूजनं कुर्वन्ति, यज्ञे देवानाहूय पूजयन्तीत्यर्थः। नमन्ति च = श्रद्धया प्रणतिं कुर्वन्ति च ताः यमकुबेरपुरन्द-

---

के समक्ष संकुचित कमलयुक्त सरोवर से की गयी है। यह दृश्यविधान कवि की अलौकिक निरीक्षण-शक्ति का सुन्दर उदाहरण है।

रावण—देवि ! समस्त प्रार्थना के रूप में यह अञ्जलि है। (प्रणाम करता है)

सीता—(चरणों को दूर खींच लेती हैं) हाय, धिक्कार है।

मण्डोदरी—यह तो बहुत ढीठ है। महाराज के शिर को कीचड़ समझ कर उसके स्पर्श से अपने पैर को बचाती है। इस समय "सीता पृथिवी की पुत्री और राम पद्मनाभ (विष्णु) हैं 'यह जनश्रुति सत्य हो रही है।

वर्षवर—राजकन्ये ! महाराज के प्रणाम की उपेक्षा करती हो ?

कल्याण के लिए ब्राह्मण लोग जिन देवताओं को यज्ञ में बुलाते और प्रणाम करते हैं,

यस्मै कराणि वितरन्ति विहाय मानं
सोऽयं मुहुर्नमति सुन्दरि! मौलिभिस्त्वाम् ॥ ३१ ॥

सीता—ण हि ण हि पणिपादो। विणिपादो खु अअं। (न हि न हि प्रणिपातः। विनिपातः खल्वयम्।)

वर्षवरः—नेयमनुनयक्षमा। (परावृत्य तिष्ठति)

रावणः—देवि! तव पादौ मे शरणम्।

सीता—अज्जउत्तपादाणि सरणं गच्छ। (आर्यपुत्रपादौ शरणं गच्छ।)

रावणः—(सरोषं सहसोत्थाय) किं किम्।

वर्णेभ्यो हृतमुपभुज्य षष्ठमंशं

राद्याः=यमः=धर्मराजः कुबेरः=धनराजः, पुरन्दरः=इन्द्रः च आदिः यासाम् ताः देवताः=अमराः, धर्मराजकुबेरवासवप्रमुखाः देवाः इति यावत् मानम्=सम्मानम् विहाय=त्यक्त्वा यस्मै=लङ्केश्वराय, कराणि=भागधेयान्, वलीनिति यावत् वितरन्ति=ददति सोऽयम्=एतादृशपराक्रमशाली लङ्केश्वरः, मौलिभिः=उत्तमाङ्गैः, दशभिः शिरोभिरित्यर्थः, त्वाम्=भवतीम्, मुहुः=बारम्बारम्, प्रणमति, नतो भवतीत्यर्थः। यद्यपि कोषे करशब्दस्य सर्वस्मिन्नर्थे पुंल्लिङ्गत्वमेव तथापि करशब्दस्य राजग्राह्यसाधारणवस्तुनि लक्षणया सामान्ये नपुंसकत्वमपि सम्भवति। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३१ ॥

अथ रावणः सीतामुखाद्रामशरणागतत्वञ्छ्रुत्वा सरोषमाह—वर्णेभ्यो हृतमिति॥ वर्णेभ्यः हृतम् षष्ठम् अंशम् उपभुज्य षाड्गुण्यम् भुवि नयताम् धरापतीनाम्

वे ही यम, कुबेर और इन्द्र प्रभृति देवगण सम्मान छोड़ कर जिसे 'कर' (टैक्स) देते हैं, वह यह (रावण) बार बार अपने मस्तकों को झुकाकर तुमको प्रणाम करता है॥ ३१॥

सीता—नहीं, यह प्रणाम नहीं है। यह तो पतन है।

वर्षवर—यह मानने योग्य नहीं है। (घूमकर बैठता है)

रावण—देवि! तुम्हारे चरण हमारी शरण है।

सीता—आर्यपुत्र के चरणों की शरण जाओ।

रावण—(क्रोध से सहसा उठकर) क्या क्या—

ब्राह्मणादि चारों वर्णों से गृहीत छठे भाग का उपभोग करके संसार में सन्धि

षाड्गुण्यं भुवि नयतां धरापतीनाम् ।
सामान्या तव जननी समुद्रनेमि-
श्चारित्रं तव किमिदं पतिव्रतानाम् ॥ ३२ ॥

(सर्वे भयं रूपयन्ति)

सीता—एदं ण जाणामि । (एतन्न जानामि ।)

रावणः—क चन्द्रहासः ।

सीता—लाहो खु अअं । मे पाणाणं गई अज्जउत्तपादमूलं एव्व ।
(लाभः खल्वयम् । मे प्राणानां गतिः आर्यपुत्रपादमूलमेव ।)

सामान्या समुद्रनेमिः तव जननी, अतः तव चारित्रम् किम् , इदम् प्रतिव्रतानाम् अस्तीति शेषः । इत्यन्वयः ॥ वर्णेभ्यः = ब्राह्मणादिवर्णचतुष्टयात् , हृतम् = गृहीतम् , षष्ठमंशम् = षष्ठभागम् , उपभुज्य = उपभोगं कृत्वा, षाड्गुण्यम् = सन्धि-विग्रहयानादीन् षड्गुणान्, भुवि=पृथिव्याम् प्रतिभूपेषु यथोचितम् नयताम् विनियुञ्जानाम्, धरापतीनाम् = वसुधाधिपानाम् सामान्या साधारणी, समुद्रनेमिः=जलधिरसना पृथिवी इत्यर्थः, तव = भवत्याः जननी = माता । क्रमेण सर्वैरेव भूपतिभिर्वसुधोपभुज्यते इति भावः । यतस्तव माता भूपतिसामान्या अतस्तदुत्पन्नायास्तव चारित्रम् = पतिव्रताधर्मः, किम् = व्यर्थम् । आक्षेपार्थे किं शब्दः । इदम् = पविव्रतारूपश्चारित्रम् , पतिव्रतानाम्=अरुन्धत्यादीनाम् संभवतीति शेषः ।

यस्या माता एव सकलराजोपभोग्या तत्प्रसूतेस्तव पातिव्रत्यलक्षणञ्चारित्रं केवलमुपहासास्पदमेवेति भावः । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ ३२ ॥

वन्दी = कारागृहे स्थापिता रमणी, स्वयमेव = भर्तृविरहात् परगृहनिवासखेदाच्च आत्मनैव प्राणेभ्यो वियुक्ता भविष्यतीत्यर्थः ।

विग्रहादि षड्गुणों से सम्पन्न राजाओं की तुम्हारी माता (पृथिवी) साधारण स्त्री है। तुम्हारे चरित्र की क्या बात है ? यह पतिव्रताधर्म अरून्धत्यादि उत्तम चरितवाली नारियों में ही संभव है ॥ ३२ ॥

(सभी लोग भय का अभिनय करते हैं)

सीता—तुम्हारी बातों को मैं नहीं जानती (तुम्हारा कथन मिथ्या है)

रावण—चन्द्रहास कहाँ है ?

सीता—यह तो लाभ ही है । आर्यपुत्र के चरण ही हमारे प्राणों की गति हैं ।

मण्डोदरी—हद्धि, तह आसि। पदिव्वदा खु एसा। मम पाणेहि महाराअस्स अणत्थादो रक्खिस्सम्। (तूर्णमुपेत्य तयोर्मध्ये तिष्ठति) (हा! धिक्, तथासीत्। पतिव्रता खल्वेषा। मम प्राणैः महाराजस्य अनर्थात् रक्षिष्यामि।)

मण्डोदरी—जेदु महाराओ। (जयतु महाराजः।)

रावणः—(विलोक्य) अये! देवी मयसुता मण्डोदरी। (अधोमुख-स्तिष्ठति)

मण्डोदरी—महाराअ! तव णिस्त्रिंसविसओ से भत्ता रामो वि ण होइ। किं पुण एसा बंदी। तुए उवक्खिदा सअं एव्व पाणाणि परिच्च-इस्सदि। (महाराज! तव निस्त्रिंशविषयोऽस्या भर्ता रामोऽपि न भवति किं पुनरेषा बन्दी। त्वयोपेक्षिता स्वयमेव प्राणान् परित्यक्ष्यति।)

वर्षवरः—(आत्मगतम्)

वसुधेव महीभुजः प्रियेयं
पतिरस्माकमपामिवैष राशिः।

वसुधेवेति। महीभुजः प्रिया इयम् (सीता) वसुधा इव, अस्माकम् एषः पतिः अपाम् राशिः इव (प्रतिभाति) अनयोः अन्तरा भवन्ती इयम् मयकन्या क्षितिपालिनी वेला इव (प्रतिभाति) इत्यन्वयः। महीभुजः = महाराजलङ्केश्वरस्य

मन्दोदरी—हाय, धिक्कार है। यह पतिव्रता है। मैं अपने प्राणों से महाराज के अन्याय से इसकी रक्षा करूँगी।

(शीघ्र दोनों के बीज में खड़ी हो जाती है)

मण्डोदरी—महाराज की जय हो।

रावण—(देखकर) अरे, मय की पुत्री महारानी मण्डोदरी है। (मुँह नीचे कर लेता है।)

मण्डोदरी—महाराज! आपके तलवार का लक्ष्य इसका स्वामी राम भी नहीं होता है। फिर यह अपहृत नारी कैसे होगी। आपसे उपेक्षा पाकर यह स्वयं ही अपने प्राणों को छोड़ देगी।

वर्षवर—(मन ही मन) महाराज रावण की प्रिया यह सीता पृथिवी के समान है।

अनयोरियमन्तरा भवन्ती
मयकन्या क्षितिपालिनीव वेला ॥ ३३ ॥

ममाप्ययमवसरः। (प्रकाशम्) देव ! किं तव खड्गोपादानम्।

अवलोक्य सुधाभुजामनर्थं
हरिणा किं धृतमग्निमालि चक्रम्।

प्रिया = प्रियात्वेन अभिमता इयम् = पुरोवर्तमाना (सीता) वसुधा इव = पृथिवी इव (प्रतिभाति) अस्माकम् = अस्मदादीनाम् राक्षसानाम् पतिः = स्वामी एषः = रावणः, अपाम् = जलानाम्, राशिः इव = समूह इव (प्रतिभाति) अनयोः = समुद्रक्षित्योः (सीतारावणयोः) अन्तरा = व्यवधाना भवन्ती, इयम् मयकन्या = इयम् मण्डोदरी, क्षितिपालिनी = वसुधारक्षिका, वेला इव = तटमिव (प्रतिभाति) यथा अन्तराभवन्त्या वेलया जलधिलङ्घनात् परिपाल्यमाना वसुधा भाति तथैवान्तराभवन्त्या मण्डोदर्याऽस्माकं पत्यू रावणात् परिपाल्यमाना सीता भातीति भावः। कालभारिणीवृत्तम्। उपमाऽलङ्कारः ॥ ३३ ॥

किं तव खड्गोपादानम् = मनुष्यभार्यां हन्तुं तव चन्द्रहासग्रहणं नोचितम् ॥

कस्मादनुचितमिति जिज्ञास्यमाने आह—अवलोक्येति ॥ सुधाभुजाम् अनर्थम् अवलोक्य हरिणा अग्निमालि चक्रम् धृतम् किम् ? अथवा हरेण त्वयि मौर्वीकृततक्षकम् पिनाकम् धनुः नमितम् किम् ? इत्यन्वयः। सुधाभुजाम् = देवानाम्, अनर्थम् = त्वत्कृतोपद्रवम् अवलोक्य = दृष्ट्वा, हरिणा = सकललोकरक्षणतत्परेण विष्णुना त्वयि=देवानिष्टकारके रावणे, अग्निमालि = सहस्ररश्मिसदृशतेजःपटलयो-

---

म लोगों के स्वामी रावण समुद्र के समान है। इन दोनों के बीच में विद्यमान मण्डोदरी पृथिवी का पालन करती हुई वेला अर्थात् तट के समान प्रतीत हो रही है ॥ ३३ ॥

विमर्श—रावण सीता के उपेक्षाभाव से क्रुद्ध होकर उसको मारने को उद्यत होता है। इसी समय मण्डोदरी बीच में आपड़ती है। रावण और सीता के बीच में मण्डोदरी किस प्रकार लग रही है इसीका इसमें वर्णन है। जिस प्रकार किनारा समुद्र के उल्लंघन से पृथिवी की रक्षा करता है उसी प्रकार मण्डोदरी रावण के अनाचार से सीता की रक्षा कर रही है।

मेरा भी अवसर है। (प्रकट) देव ! आपके शस्त्र ग्रहण का क्या प्रयोजन ?

आपके द्वारा देवताओं के उत्पीडन को देखकर क्या विष्णु ने अग्नियुक्त चक्र को धारण किया ? अथवा शंकर ने सर्पराज को धनुष की डोरी बनाकर तुम पर पिनाक

अथवा नमितं धनुः पिनाकं
त्वयि मौर्वीकृततक्षकं हरेण ॥ ३४ ॥

रावणः—उपपन्नमिदम् ।

(नेपथ्ये)

जयतु स्वामी, जयतु महाराजः, जयतु लङ्केश्वरः, जयतु देवः, जयतु भद्रमुखः, दश नाडिकाः पूर्णाः, अतिक्रामति स्नानवेला । (प्रणदन्ति शङ्खपटहाः) इत इतो महाराजः ।

रावणः—अद्य यूयमन्तरायः संवृत्तः । भवतु, प्रभाते ज्ञास्यामि ।

(निष्क्रान्तो रावणः सपरिवारः)

गात् दुर्दर्शम्, चक्रम्=सुदर्शनचक्रम् धृतम् किम्=गृहीतम् किम् ? अर्थात् गृहीतम् देवान् प्रतिस्वत्समुत्थमनिष्टं दृष्ट्वा क्रुद्धः सन्नपि मौनमेवालम्बते इति भावः । अथवा किम्वा, हरेण=निखिलविश्वविनाशकर्त्रा महेश्वरेण, मौर्वीकृततक्षकम् = मौर्वीकृतः गुणीकृतः, तक्षकः = महानागो यस्मिन् तत् पिनाकम् धनुः = एतन्नामकं शरासनं त्वयि = भवति रावणे, नमितम् किम् = नम्रीकृतम् किम् ?, यश्शङ्करस्मि=पुरा निहत्य त्रिभुवनमरक्षत् सोऽपि त्वत्तो देवान् रक्षितुमुद्योगशून्य इव जा इत्यर्थः । कालभारिणी वृत्तम् । सन्देहाऽलङ्कारः ॥ ३४ ॥

अन्तरायः = विघ्नः, सम्वृतः = सञ्जातः ।

नामक धनुष को चढ़ाया ? (अर्थात् देवताओं के प्रति आपके उत्पीडन को देखकर लोकरक्षक विष्णु और शंकर मौन ही बैठे रहे ! वे आपसे युद्ध करने के लिए अभी शस्त्र ग्रहण नहीं किए हैं अतः सम्प्रति आपके शस्त्र ग्रहण का कोई अर्थ नहीं है ॥ ३४ ॥

रावण—यह हो सकता है ।

(नेपथ्य में) स्वामी की जय हो । महाराज की जय हो । लंकापति की जय हो कल्याणमुख की जय हो । दश घड़ी पूरी हो गयी है । स्नान का समय बीत रहा है (शंख और तुरही की तीव्र आवाज होती है) इधर आइये महाराज इधर ।

रावण—आज तुम लोग बाधक हो गये । अच्छा, प्रातः काल समझ लूँगा ।

(परिवार सहित रावण चला जाता है) ....

सीता—निरासा खु अज्जउत्तं अन्तरेण। पावं खु एदं रक्खसहत्थादो मरणं। तं अज्जउत्तं चिंदिअ सअं दाव जीविअं परित्तजिस्सं। (विलोक्य) दिट्ठिआ णु सुत्ता खु रक्खसीओ। होदु। हद्धि, रक्खससीसफरिसपंसुलाणि पादाणि। अणंतराअं पुक्खरिणिं पविसिअ परिसुद्धा भविअ अत्ताणं दुक्खादो मोचइस्सं। (निराशा खल्वार्यपुत्रमन्तरेण। पापं खल्विदं राक्षसहस्तान्मरणम्। तदार्यपुत्रं चिन्तयित्वा स्वयं तावज्जीवितं परित्यक्ष्यामि। दिष्ट्या नु सुप्ताः खलु राक्षस्यः। भवतु। हा! धिक्। राक्षसशीर्षस्पर्शपांसुलौ पादौ। अनन्तरायं पुष्करिणीं प्रविश्य परिशुद्धा भूत्वा आत्मानं दुःखात् मोचयिष्यामि।)

(निष्क्रान्ता)

इति शक्तिभद्रविरचिते चूडामणिनाटके पञ्चमोऽङ्कः।

आर्यपुत्रमन्तरेण = आर्यपुत्रागमनमुद्दिश्य निराशाऽस्मि = आशारहिताऽस्मि। राक्षसशीर्षस्पर्शपांशुलौ पादौ = रावणशिरःसंस्पर्शदूषितौ चरणौ, धिक् = निन्दायोग्यौ स्तः। अनन्तरायम् = निर्विघ्नम् । पुष्करिणीम् = सरोजाश्रयम् तडागम्। प्रविश्य स्नानेनरक्षस्पर्शदोषात परिशुद्धो भूत्वा आत्मानम् = स्वाम्, दुःखात् = रक्षोगृहनिवासजन्यक्लेशात् मोचयिष्यामि = मुक्तं करिष्यामि। अनेन भाविहनुमद्दर्शन रामवार्ताश्रवणांगुलीयदर्शनादिभिर्दुःखमोचनस्यालक्षत्वादबुद्धिपूर्वकस्याप्यपरस्यापि सीतावचनस्य सत्यत्वं गम्यते। अनेनैव वचनेन नाटककारः षष्ठाङ्के जानकीक्लेशविमोचनहेतुं हनुमत्प्रवेशं सूचितवान्॥

इति आचार्य चूडामणे रमा टीकायां पञ्चमोङ्कः।

सीता—आर्यपुत्र के आने की अब आशा नहीं है। अब आर्यपुत्र का स्मरण कर स्वयं अपना प्राण छोड़ दूँगी। सौभाग्य से राक्षसियां सो गयी हैं। अच्छा, हाय, राक्षस के मस्तक के स्पर्श से अपवित्र इन चरणों को धिक्कार है। समीपवर्ती सरोवर में निर्विघ्न प्रवेश करके और शुद्ध होकर अपने को कष्ट से मुक्त करूँगी।

(सीता चली जाती है)

पञ्चम अङ्क समाप्त।

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति हनूमान् अङ्गुलीयकहस्तः)

हनूमान्—सम्प्रति हि,

मैनाकं नागकन्यासुरतसुहृदमुल्लङ्घ्य बन्धुं पयोधे-
राकर्षन् वेगवश्यं दिव इव शिथिलं चर्म जीमूतजालम् ।

रामेश्वरपदे भक्तिर्यस्य नित्यं प्रकाशते ।
तच्छ्रीजयप्रकाशे मे प्रणती राजतां गुरौ ॥

पञ्चमाङ्के वानरसैन्यसञ्चरणवृत्तान्तेन तस्य सीतावृत्तान्तपरिज्ञानार्थमुद्यम सूचितः । तत्र मारुत्युद्यमस्य सफलत्वात् तत्प्रवृत्तिं प्रकृताङ्केऽभिधातुमुपक्रमते— ततः प्रविशति हनूमानिति ॥

अथ पवननन्दनो रामप्रदत्तमङ्गुलीयकमादाय समुद्रमध्यस्थमैनाक पर्वतोल्लंघनपुरस्सरं लङ्काप्राप्तिजन्यानन्दातिशयमभिव्यनक्ति—मैनाकमिति नागकन्यासुरतसुहृदम्, पयोधेः बन्धुम् मैनाकम् उल्लंघ्य वेगवश्य जीमूतजालम् (एव) दिवः शिथिलम् चर्म आकर्षन् इव, आशुगत्या देवम् म गुरुम् अपि विस्माययन् राज्ञः रामस्य अङ्गुलीयम् धारयन् प्रहितः शरः इव लङ्का प्राप्तः अस्मि इत्यन्वयः ॥ नागकन्यासुरतसुहृदम् = नागकन्यानाम् = नागसुता नाम् स्वकान्तैः सह सुरतक्रीडायाम् उपकर्तारम् मदनोद्दीपनसहायभूतमित्यर्थः पयोधेः = समुद्रस्य, बन्धुम् = बान्धवम्, मैनाकम् = एतन्नामकजलधिमग्नं पर्वतम् उल्लंघ्य = उत्तीर्य, वेगवश्यम् = वेगाधीनम्, जीमूतजालम् = घनसमूहम् (एव) दिवः शिथिलम् = दिवः शिथिलीभूतम्, चर्म = अजिनम्, आकर्षन् इव = कर्षं कुर्वन् इव, आशुगत्या = तीव्रगमनेन, देवम् = सूर्यम्, मम गुरुम् = मम पितरम्

(तदनन्तर हाथ में अंगूठी लिए हनुमान् प्रवेश करते हैं)

हनूमान्—इस समय तो—

नागकन्याओं की कामक्रीडा में उपकारक, समुद्र के भ्राता मैनाक पर्वत को पारक आकाश के शिथिल चमड़े के रूप में विद्यमान मेघ-समूह को मानो खींचता हुआ, तीव्रगति

लङ्कां प्राप्तोऽस्मि देवं गुरुमपि मम विस्माययन्नाशुगत्या
राज्ञो रामस्य देव्यै प्रहित इव शरो धारयन्नङ्गुलीयम् ॥१॥

कस्मिन् खलु प्रदेशे तदुद्यानम्, यत्र देवी शिंशपाश्रिता प्रतिवसतीति गृध्रराजेनोपदिष्टम् । तदहमन्विच्छामि । (परिक्रम्यावलोक्य) अहो नु खलु राक्षसनगरस्य परा लक्ष्मीः । सत्यमेवैतत् ।

यानि यानि मनोज्ञानि वस्तून्यमरवेश्मनि ।
तानि तानि किलोद्धृत्य लङ्कां नयति रावणः ॥ २ ॥

पवनमपि विस्माययन् = विस्मयम् = आश्चर्यम् उत्पादयन्, राज्ञो रामस्य, महाराजस्य दशरथसुतस्य अङ्गुलीयम् = मुद्राम् देव्यै = सीतायै धारयन् = गृह्णन्, (रामेण) प्रहितः = प्रेषितः, शर इव = बाण इव, लङ्काम् = दशग्रीवनगरीम् प्राप्तोऽस्मि = समागतोऽस्मि अहमिति शेषः । यथा रामेण प्रयुक्तः शरः आशुगत्या लक्ष्यं प्राप्नोति तथैवाहमपि तेन नियुक्तो लङ्कां प्राप्त इति भावः । यतो रामप्रभावमहिम्ना हनूमता दुस्तरमपि समुद्रमनायासेनैव समुत्तीर्य राक्षससङ्कुला लङ्का प्राप्ता अतस्तस्येदं दुष्करं कर्म अबाधगतेः पवनस्यापि विस्मयोत्पादकमिति भावार्थः । स्रग्धरावृत्तम् ॥ उपमालङ्कारः ॥ १ ॥

गृध्रराजेनेति ॥ अत्र गृध्रराजशब्देन जटायुभ्राता 'सम्पातिः' बोध्यः, जटायुषो दिवंगतत्वात् ।

अथ हनूमान् लङ्काया उत्कृष्टत्वं वर्णयति—यानि इति ॥ अमरवेश्मनि यानि यानि मनोज्ञानि वस्तूनि (आसन्) तानि तानि उद्धृत्य रावणः लङ्काम् नयति किल इत्यन्वयः । अमरवेश्मनि = सुरालये, यानि यानि मनोज्ञानि वस्तूनि = ये ये शोभनाः पदार्थाः, (आसन्) तानि तानि = तानि सर्वाणि मनोहराणि वस्तूनि

मैं अपने पिता पवनदेव को भी विस्मित करता हुआ मैं राजा राम के द्वारा छोड़े गये बाण की भाँति देवी सीता के लिए अंगूठी लेकर लंका पहुंच गया हूँ ॥ १ ॥

वह वाटिका किस स्थान में है, जहाँ पर सीसम वृक्ष के नीचे देवी रहती है ऐसा गृध्रराज सम्पाति ने कहा है । उस उद्यान का पता लगाता हूँ । (घूमकर और देख कर) राक्षसों के नगर की शोभा तो आश्चर्यजनक है । यह सच ही है ।

स्वर्ग में जो जो सुन्दर चीजें हैं उन सबों को उठाकर रावण लंका में ले आता है ॥ २ ॥

(स्पर्शं निरूप्य) अनेनोद्यानेन भवितव्यम् । तथा हि—

आनेता मदकलभृङ्गकूजितानां-
माकर्षन् द्रुमसुमनःपरागभारम् ।
वीचीनां सरसि विमर्दशीतलोऽय-
माचष्टे मम गुरुरेव मातरिश्वा ॥ ३ ॥

(विलोक्य) इदं तदुद्यानं यावत् प्रविशामि । (प्रविश्य सर्वतो विलोक्य सविस्मयम्)

उद्धृत्य = आहृत्य, रावणः = दशग्रीवः, लङ्काम् = स्वस्वर्णपुरीम् , नयति किल = प्रापयति किल । लङ्कायां यानि मनोहरवस्तूनि परिदृश्यन्ते तानि दशकन्धरेण स्वर्गादेव समानीतानीति भावः । अनुष्टुप्वृत्तम् ॥ २ ॥

अथ हनूमान् स्पर्शसुखमनुभूयोद्यानमनुमिनोति—

आनेता इति । मदकलभृङ्गकूजितानाम् आनेता, द्रुमसुमनःपरागभारम् आकर्षन् , सरसि वीचीनाम् विमर्दशीतलः अयम् मम गुरुः मातरिश्वा एव आचष्टे इत्यन्वयः । मदकलभृङ्गकूजितानाम् = मदेन कलम् = मधुरम् अस्फुटम् च, भृङ्गानाम् = अलीनाम् यत् कूजितम् = गुञ्जितम् , तेषाम् आनेता = आहर्ता, मातरिश्वा आचष्टे इति बोध्यम् । द्रुमसुमनः परागभारम् = शाखिप्रसूनरजोभारम् , आकर्षन् = उद्वहन् , सरसि = जलाशये, वीचीनाम् = तरङ्गाणाम् विमर्दशीतलः = आलोडनशीतः, वीचिस्पर्शशीतल इत्यर्थः । मम = हनूमतः, गुरुः = पिता, अयम् = स्पर्शवत्तया प्रतीयमानः, मातरिश्वा एव = पवमान एव, आचष्टे = कथयति । उद्यानपरिचयं ददातीत्यर्थः । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ ३ ॥

(स्पर्श का अनुभव करके) यह वाटिका होनी चाहिये । क्योंकि—

मद से उन्मत्त भौंरों के गुञ्जन को लाने वाले, वृक्षों के फूलों के पराग के भार को लेते हुए, तालाब में तरङ्गों के मर्दन से शीतल मेरे पिता पवन ही उद्यान की सूचना दे रहे हैं ॥ ३ ॥

(देखकर) यही वह उद्यान है । तो प्रवेश करता हूँ ।

(प्रवेश करके चारों ओर आश्चर्य से देख कर)

एषां पल्लवमंशुकानि कुसुमं मुक्ताः फलं विद्रुमं
वैडूर्यं दलमङ्कुरो मरतकं हैमं च शाखाशतम् ।
एते के जगतीरुहो वनजुषाप्यज्ञातपूर्वा मया
प्रायस्सारममी दिवो विटपिनः किं तैर्ममान्यो भरः ॥ ४ ॥

अथोद्यानं प्रविश्याहष्टपूर्वदेवतरुदर्शनेन विस्मयान्वितचितः सन्नाह—एषां पल्लवमिति ॥ एषाम् पल्लम् अंशुकानि, कुसुमम् मुक्ताः, फलम् विद्रुमम्, दलम् वैडूर्यम्, अङ्कुरो मरतकम्, शाखाशतम् हैमम्, वनजुषा मयाऽपि अज्ञातपूर्वा एते के जगतीरुहः ? अमी प्रायः दिवः सारम् विटपिनः (प्रतिभान्ति) तैः किम्, मम अन्यः भरः (अस्तीति शेषः) इत्यन्वयः। अस्मिन् श्लोके 'एते के जगतीरुहः इति प्रथमं वाक्यं बोध्यम् ततः एषाम् इति अन्वयो बोध्यः। एते के जगतीरुहः, एषाम् पल्लवादीनि अंशुकादीनि (प्रतिभान्ति) इत्यन्वयो दूरादवगन्तव्यः। एषाम्= पुरोदृश्यमानानाम् वृक्षाणाम्, पल्लवम्=किसलयम्, अंशुकानि=क्षौमवस्त्राणि (रेशमी इति लोके) एषामित्यस्याग्रेऽप्यन्वयः (एषाम्) कुसुमम्=पुष्पम्, मुक्ताः=मौक्तिकानि, (मोती इति लोके) फलम् विद्रुम•=प्रवालम्, दलम्= पत्रम्, वैडूर्यम्=एतन्नामको मणिविशेषः, अङ्कुरः=अभिनवोद्भिन्नः, मरतकम्= हरिन्मणिः शाखाशतम्=लताशतम्, हैमम्=स्वर्णमयम्, एतेषाम् वृक्षविशेषाणाम् पल्लवादिस्थाने अंशुकादीनि दृश्यन्ते इति एते=दृश्यमानाः वनजुषा=भूमण्डलगतसकलवृक्षपरिचयप्राप्तवता वनवासिना मयाऽपि, हनुमताऽपि अज्ञातपूर्वाः= अविदितप्रथमाः, के जगतीरुहः=के वृक्षाः (सन्तीति शेषः) अमी=एते विलक्षणाः वृक्षाः प्रायः दिवः सारम्=स्वर्गस्य सारभूतम्, विटपिनः=शाखिनः सुरतरव इत्यर्थः (प्रतिभान्ति) तैः किम्=दृष्टैः सुरतरुभिः किम् प्रयोजनम् ? एतैर्मम प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः। कुतः प्रयोजनं नास्ति इति जिज्ञासायामाह—ममान्यः भर इति ॥ मम=रामाज्ञापालकस्य हनूमतः अन्यः=अपरः, भरः=कार्यभारः अस्तीति· शेषः। यतोऽहमन्यकार्यव्यापृतोऽतः अलमेषां दर्शनेनेति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। आक्षेपालङ्कारः ॥ ४ ॥

रेशमी वस्त्र इनके किसलय हैं। मुक्ता फूल है। विद्रुममणि फल है। वैडूर्यमणि पत्ता है। मरकतमणि कली है। और सोना सैकड़ों डालियाँ हैं। ये कौन वृक्ष हैं जिन्हें मैं अभी तक नहीं जानता हूँ। ये प्रायः स्वर्ग के सारभूत वृक्ष हैं। इनसे हमें क्या ? मुझे तो अन्य कार्य है ॥ ४ ॥

विमर्श=लंका के उद्यान की शोभा पर मुग्ध होकर हनूमान् आश्चर्य भरी आँखों से उनवृक्षों को देखते हैं। रमणीय वस्तु को देखकर किसका मन मुग्ध नहीं हो जाता किन्तु

अत्र देवीं शिंशपाश्रितामभिहितवान् स सम्पातिः। तत् क नु खलु शिंशपा। (परिक्रम्यावलोक्य) एषा खलु शिंशपा। (सहर्षमुपेत्य सर्वतो विलोक्य सविषादम्) नात्र देवीं पश्यामि। (इति मोहमुपागतः। पुनः समाश्वस्य) व्यापादिता नु राक्षसेन। स्वयमेव साहसं गता नु। वृथा मया समुद्रो लङ्घितः। वन्ध्यः सुग्रीवमनोरथः। किमुक्त्वा स्वामिदत्तमिदमभिज्ञानाङ्गुलीयकं प्रतिप्रयच्छामि। सर्वथा देवीमन्तरेण देवो न जीवति। ततः सुग्रीवो भरतलक्ष्मणौ देव्यश्च। सर्वस्यास्य वन्ध्यपुनर्दर्शनेनाहं कारणं भविष्यामि। मिथ्या स्वामिनोऽपि न वक्तव्यम्। तद्यावदहमपि यथाशक्ति चेष्टितैर्यशोमूर्तिर्भविष्यामि।

अथ मारुतिः सीतामन्वेष्टुञ्चेष्टते—अत्र देवीमिति ॥ स सम्पातिः = जटायुषो भ्राता, देवीम् = सीताम्, शिंशपाश्रिताम् = शिंशपानामकं वृक्षमाश्रित्य स्थिताम्, अभिहितवान् = उक्तवान्। (शिंशपा लोके 'सीसम' नामको वृक्षः कथ्यते) व्यापादिता = विनाशं प्रापिता। स्वयमेव साहसं गता = भर्तृवियोगदुःखमसहमाना स्वयं देहपरित्यागं कृतवती। नु शब्दो वितर्कार्थकः। वन्ध्यः = निष्फलो जातः। अभिज्ञायते इति अभिज्ञानम् अथवा अभिज्ञायते अनेनेति अभिज्ञानम्, अभिज्ञानञ्च तत् अङ्गुलीयकम् = अंगुलिमुद्रा, (लोके अभिज्ञानमित्यस्य 'पहचान' इत्यर्थः)। तथा च अभिज्ञानसाधनभूतेयमङ्गुलिमुद्रा सीताया अभावे पुनः रामाय मया कथं प्रदास्यते इति भावः। देवीमन्तरेण = सीतां विना, देवः रामः न जीवति = सीताविनाशे सर्वेषामेव सुग्रीवादीनाम् विनाशः सम्भावितः। वन्ध्यपुनर्दर्शनेन = पुनर्दर्शनस्य निष्फलेन। स्वामिनः मिथ्याऽपि न वक्तव्यम् = इतः सीतामलभमानेन मया रामसमीपं सत्यमेव वक्तव्यमित्यर्थः। यथाशक्तिचेष्टितैः = अतः परमपि

उसी क्षण उन्हें अपने कर्त्तव्य का स्मरण हो आता है। वे तत्क्षण सावधान होकर उद्यानशोभा में आकृष्ट मन पर नियन्त्रण करके सीता के अन्वेषणरूप प्रधान कार्य का निर्देश करते हैं। प्रस्तुत पद्य में कवि ने हनूमान के प्रकृतिप्रेम और कर्त्तव्यभावना दोनों का सुन्दर चित्रण किया है। लोकोत्तर चरितप्रधान व्यक्ति का व्यवहार ऐसा ही होना चाहिए।

उस सम्पाति ने यहाँ पर सीसम के वृक्ष के नीचे बैठी हुई सीता को बताया है। वह सीसम का वृक्ष कहाँ है? (घूमकर तथा देखकर) हाँ, तो यह सीसम का वृक्ष है। (खुशी से समीप पहुँच कर और सभी ओर देखकर विषाद से) यहाँ पर देवी को नहीं

(नेपथ्ये)—भअवं ! मिअलंछण ! । (भगवन् ! मृगलाञ्छन ! ।)

हनूमान्—किं नु खल्विदम् । श्रोष्यामस्तावत् ।

(पुनर्नेपथ्ये)—एसो दे अञ्जली । चिरस्स मे णअणगोअरं पत्तोसि । (एष ते अञ्जलिः । चिरस्य मे नयनगोचरं प्राप्तोऽसि ।]

हनूमान्—विलापः खल्वेषः । कोटरान्तरितो भूत्वा दृढं वृत्तान्तं ज्ञास्यामि । (तथा करोति) एषा देवी । अस्याः खलु,

---

शक्त्यनुरूपैः बहुविधैर्व्यापारैः सीताया वृत्तान्तं यथार्थतो ज्ञास्यामि । यशोमूर्तिर्भविष्यामि = यशश्शरीरो भविष्यामि यदि देवीमत्रान्यत्र वा कुत्रापि देवीं नावलोकयिष्यामि तदा तस्या विनाशं तत्त्वतोऽवगम्य सपुत्र बान्धवं दशकन्धरं निगृह्य स्वामिने च निवेद्य अनिष्टदर्शनात् प्रागेवेदं क्षणभङ्गुरशरीरं परित्यज्य कीर्तिशरीरो वा भविष्यामि । अत उभयथा लाभं निभाल्य सीतान्वेषणे मया महानुद्यमो विधेय इति भावः ।

देख रहा हूँ । (ऐसा कह मूर्छित हो जाते हैं) (फिर होश में आकर) क्या राक्षस ने मार डाला अथवा स्वयं अपने प्राणों का अन्त नहीं कर लिया ? मैंने व्यर्थ ही समुद्र को लांघा । सुग्रीव की अभिलाषा वेकार हो गयी । स्वामी के द्वारा दिये गये इस परिचयात्मक अंगूठी को क्या कह कर उन्हें फिर लौटाऊँगा ? देवी के विना देव राम निश्चित ही नहीं जीयेंगे ! उसके वाद सुग्रीव, भरत, लक्ष्मण और राजमाताएँ भी नहीं जी सकेंगी । इन सबों के नहीं देखने का एक मात्र कारण मैं ही बनूँगा । स्वामी से झूठ भी नहीं बोलना चाहिए । इसलिये मैं भी अपनी शक्तिभर सीता को खोजने का प्रयास कर यश का भागी बनूंगा । (अर्थात् सीता को खोजकर यश कमाऊँगा अथवा सीता के अभाव में सबान्धव रावण को राम के समीप ले जाकर अनिष्ट दर्शन से पहले ही अपने प्राणों का परित्याग कर कीर्ति के शरीर को प्राप्त करूँगा)

(नेपथ्य में)

भगवन् चन्द्र !

हनूमान्—हैं, यह क्या है ? अच्छा तो सुनता हूँ । (फिर नेपथ्य में) तुम्हारे लिये यह अञ्जलि है । बहुत दिनों के वाद दर्शन दिये हो ।

हनूमान्—यह तो विलाप है । वृक्ष के खोखले में छिपकर सत्य वृत्तान्त को जानूँगा । (वैसा ही करते हैं) यह सीता है । इसका तो—

परिवर्तनेन बहुशो महीतले
निचितं कपोतगलकर्बुरं रजः ।
नयनाम्भसा सरसमङ्गरागता-
मुपयाति पाण्डुनि पयोधरद्वये ॥ ५ ॥

अस्या विलापवचनं स्वामिनः श्रोत्रोपायनं क्षणमात्रमावर्जयिष्यामि। (तूष्णीमास्ते)

(ततः प्रविशति विलपन्ती सीता)

सीता—तुमं दाव चन्द ! उपालम्भइ अअं जणो। सुणीअदि अबन्धुभावो खत्तस्स । सदेसोत्ति तुमं दाव अज्जउत्तेण लोओ बाहरदि।

अथ मारुतिः सीताविलापमाकर्ण्य कोटरान्तरितः सन् तस्याः विरहोत्कण्ठितं स्वरूपमवलोक्याह—परिवर्तनेनेति ॥ (अस्याः) महीतले बहुशः परिवर्तनेन निचितम् कपोतगलकर्बुरम् नयनाम्भसा सरसम् रजः पाण्डुनि पयोधरद्वये अङ्गरागताम् उपयाति इत्यन्वयः। अस्याः देव्याः पाण्डुनि पयोधरद्वये इत्यग्रेनान्वयः। महीतले = भूतले, बहुशः = अनेकवारम्, परिवर्तनेन = परिवृत्य पुनः पुनर्भूलुण्ठनेन, निचितम् = व्याप्तम्, कपोतगलकर्बुरम् = शबलवर्णम्, नयनाम्भसा = नेत्रवारिणा, अश्रुणेत्यर्थः । सरसम् = आर्द्रीकृतम्, पाण्डुनि = पाण्डुरे, पयोधरद्वये = कुचद्वये, अङ्गरागताम् = अनुलेपनत्वम्, कुङ्कुमताम्, उपयाति = गच्छति । वैभवयुतायामपि लङ्कायां वर्तमानायाः पतिव्रतायाः स्वामिवियोगपीडातिशयचिन्हत्वेन निखिलमपि भूतलपरिवर्तनादिकन्शोभाधायकमेवेति भावः। मञ्जुभाषिणी वृत्तम् ॥ ५ ॥

श्रोत्रोपायनम् = श्रोत्रयोः = श्रवणयोः, उपायनम् = उपहारः । अतएव सीताविलापवचनश्रवणं प्रति आदरातिशयो व्यज्यते ।

शुभ्र कुच-युगल में पृथिवी पर अनेक बार लोटने से व्याप्त शवल रंग की धूलि नेत्रों के जल से गीले अंगरागके भाव को प्राप्त कर रही है ॥ ५ ॥

अथवा स्वामी के कानों के लिए उपहारस्वरूप इसके विलाप-वचन को क्षणभर सुनूँगा (मौन रहते हैं) (उसके बाद विलाप करती हुई सीता प्रवेश करती है)

सीता—हे चन्द्र । यह व्यक्ति तुम्हें उलाहना देता है । तुम क्षत्रियों के बन्धु हो ऐसा सुना जाता है । तुम लोक में आर्यपुत्र के समान माने जाते हो । नहीं, मैं पागल नहीं हूँ

ण हि ण हि उम्मत्ता खु अहं। तुमं खु दिअसे दिअसे पडिग्गहंतरेण अल्लीअसि। अज्जउत्तो हि दाव रज्जिस्सदि मए मंदभाआए एव्व। अहवा चिट्ठदु दाव एदं। एक्कदो मं दक्खसि एक्कदो अज्जउत्तं वि। ण किं चि भणिअ उदासीणो विअ गच्छसि। (त्वां तावत् चन्द्र! उपालभतेऽयं जनः। श्रूयते च बन्धुभावः क्षत्रस्य। सदृश इति त्वां तावदार्यपुत्रेण लोको व्याहरति। न हि न हि उन्मत्ता खल्वहम्, त्वं खलु दिवसे दिवसे परिग्रहान्तरेणालिङ्ग्यसे। आर्यपुत्रो हि तावत् रञ्जयिष्यति मया मन्दभाग्ययैव। अथवा तिष्ठतु तावदिदम्। एकतो मां पश्यसि एकत आर्यपुत्रमपि। न किञ्चिद् भणित्वा उदासीन इव गच्छसि।)

हनूमान्—अस्या विलापान्ते रूपं दर्शयिष्यामि। (तूष्णीमास्ते)

सीता—एदे ए दे इसओ सत्तत्ति सुणीअंति। अअं खु भअवं उवज्झाओ रघूणं वसिट्ठो। एसा खु पदिव्वदाणं णिदंसणभूदा भअवदी अरुन्धई देवी। भअवदि! को णाम अअं ववसाओ। रक्खसगोअरे देसे इमस्स जणस्स पडिआरं कं वि ण भणासि। सव्वहा तव दंसण-

---

अथ विलपन्ती सीता चन्द्रे रामसादृश्यं प्रदर्श्य तत्र तद्वैधर्म्यमपि दर्शयते—त्वं खलु दिवस इति॥ दिवसे दिवसे=प्रतिदिनम्, त्वम्=चन्द्रः, परिग्रहान्तरेण आलिङ्ग्यसे=कृत्तिकया वियुक्तो रोहिण्या, तया च वियुक्तो मृगशिरसा संगच्छसे, एवञ्च न कदाचिदपि तव परिग्रहवैधुर्यम्। रामस्तु केवलं मया सहैव रञ्जयिष्यति एकपत्नीव्रतपालकत्वात्। अतस्तेन तव साम्येऽपि वैषम्यमस्त्येवेति भावः।

तुम प्रतिदिन एक के बाद दूसरे नक्षत्र से आलिङ्गित होते हो। आर्यपुत्र तो केवल मुझ अभागिन के साथ ही अपना मनोविनोद करेंगे। अथवा यह तो रहे; तुम एक तरफ मुझे देखते हो और दूसरी तरफ आर्यपुत्र को भी। विना कुछ बोलकर उदासीन सा चले जाते हो।

हनूमान्—इसके विलाप के समाप्त होने पर अपना रूप दिखाऊंगा। (मौन रहते हैं)

सीता—ये वे हैं जो सप्तर्षि कहे जाते हैं। रघुवंशियों के कुलपुरोहित ये भगवान् वशिष्ठ हैं। पतिव्रताओं में आदर्शरूप ये देवी अरुन्धती हैं। भगवति! यह कैसा व्यवसाय

फलं अण्णहा करिस्सम्। (एते ये ते ऋषयः सप्तेति श्रूयन्ते। अयं खलु भगवान् उपाध्यायो रघूणां वसिष्ठः। एषा खलु पतिव्रतानां निदर्शनभूता भगवती अरुन्धती देवी। भगवति! को नामायं व्यवसायः। राक्षसगोचरे देशे अस्य जनस्य प्रतीकारं कमपि न भणसि। सर्वथा तव दर्शनफलमन्यथा करिष्यामि।)

हनूमान्—स्वामिनि! अहं तावत्प्रतिबध्नामि।

सीता—कुदो णु खु अक्कन्दिदं। (अन्यतो विलोक्य) एसा एसा चक्कवाकवहू रआणरक्खसेण विओजिदा अम्हं विअ जणो सुण्णं रोदिदि। (कुतो नु खल्वाक्रन्दितम्। एषैषा चक्रवाकवधूः रजनीराक्षसेन वियोजिता अयमिव जनः शून्यं रोदिति।)

हनूमान्—स्वामिनि! न शून्यमिदम्। पूज्यपादो राम एव भर्ता तवेदं वचनं शृणोति।

निदर्शनभूता = उदाहरणभूता।

अथ हनूमान् सीतायाः प्राणत्यागप्रयासमवरोधयन्नाह—स्वामिनि इति॥ प्रतिबध्नामि = प्राणविसर्जनाध्यवसायम् अवरोधयामि। हनूमद्वचने आक्रन्दनभ्रान्तिः सीतायाश्चित्तविवशताकारणादेव प्रतीयते। चक्रवाकवधूः = कोकप्रिया। रजनीराक्षसेन = रजनी = रात्रिः, सा एव राक्षसः तेन वियोजिता = स्वप्रियात् पृथक् कारिता (सती) अयम् जन इव = अहम् इव शून्यं रोदिति = निष्प्रयोजनं रोदनं करोति। यथाऽहं रजनीचरेण पतिवियुक्ता सती श्रोतुरभावादरण्यरोदनं करोमि तथैवेयं कोकप्रियाऽपि निशाराक्षसेन वियोजिता भूत्वा निष्फलं रोदितीति भावः।

है? राक्षसों के इस देश में इस व्यक्ति के लिये कोई भी प्रतीकार नहीं बताती हो? तुम्हारे दर्शन के फल को मैं बिल्कुल विपरीत कर दूँगी।

हनूमान्—स्वामिनि! आपके इस प्राणत्याग रूप प्रयास को मैं रोकूगा।

सीता—(दूसरी ओर देखकर) कहां से यह आवाज आयी? यह चक्रवाक की स्त्री रात्रिरूपी राक्षस के द्वारा अपने प्रिय से विप्रयुक्त होकर हमारे ही समान शून्य में रोती है।

हनूमान्—स्वामिनि! यह स्थान सूना नहीं है। तुम्हारे स्वामी पूज्य चरण राम ही तुम्हारे इस वचन को सुन रहे हैं।

सीता—किं णु खु मए उवालद्धाणं देवदाणं अणुग्गहो। अहवा रक्खसस्स अवरा खु इअं माआ। (किं नु खलु मयोपालब्धानां देवतानामनुग्रहः। अथवा राक्षसस्यापरा खल्वियं माया।)

हनूमान्—स्वामिनि! मा संशयेन। दूतोऽहम् आर्यमनुवंशप्रदीपस्य रामस्य।

सीता—(आत्मगतम्) महुरं खु से वअणं। ण हि ण हि रक्खसजादी। कहं वम्मिआदो हारो उप्पज्जइ। (मधुरं खलु अस्य वचनम्! न हि न हि राक्षसजातिः। कथं वल्मीकात् हार उत्पद्यते।)

हनूमान्—स्वामिनि! तुभ्यमयमञ्जलिः।

उपालब्धानाम् = प्रदर्शितदोषाणाम्, अनुग्रहः = अनुकम्पा। अपरा माया = अन्या प्रवञ्चना, मायाविशेष इत्यर्थः।

आर्यमनुवंशप्रदीपस्य = आर्यः = श्रेष्ठः, मनोः वंशः = कुलम् तस्य प्रदीपः = प्रकाशकः तस्य श्रेष्ठमनुकुलदीपकस्येत्यर्थः।

राक्षसजातौ मधुरवचनत्वं खण्डयन्ती सीताऽऽह—नहि नहि इति॥ राक्षसजातिः मधुरं वचो न वदतीति शेषः। एतदेव दृष्टान्तेनोपादयति—कथं वल्मीक दि। यथा वल्मीकतः सर्प एव निर्गच्छति न तु हारस्तथा राक्षसजातेः क्रूरवचनमेवोत्पद्यते व मधुरमिति भावः। अथवा पुनः सन्दिह्य आह—नहि नहि इति॥ अयं राक्षस एव। तदेवोपपादयति—कथं वल्मीकादिति = राक्षसपुरे कथमुत्तमो जनो भवेदिति गूढाशयः।

अञ्जलिः = प्रणामाञ्जलिका।

सीता—क्या हमारे द्वारा उपालब्ध देवताओं की अनुकम्पा है अथवा राक्षस की कोई दूसरी छलना है?

हनूमान्—स्वामिनि! संदेह न करें। मैं श्रेष्ठ मनुवंश के दीपक श्री रामचन्द्र जी का दूत हूँ।

सीता—(मन ही मन) इसकी बोली तो मीठी है। राक्षसों की जाति मधुर वचन नहीं बोलती है। भला स्वामी से हार की उत्पत्ति कैसे हो सकती है?

हनूमान्—स्वामिनि! आपको हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

सीता—दंसेहि दाव अत्तणो रूपं। अवआहि कोटरादो। (दर्शय तावदात्मनो रूपम्। अपयाहि कोटरतः।)

हनूमान्—यदाज्ञापयति स्वामिनी। (अवरुह्य प्रणमति)

सीता—(निर्वर्ण्य) हं, वाणरो खु अअं। पाएण एदं रूपं रक्खसो ण गेह्णइ। (हम्, वानरः खल्वयम्। प्रायेणेदं रूपं राक्षसो न गृह्णाति।)

हनूमान्—(प्रणिपत्य)

पूतं पुनासि पितरं मिथिलाधिराजं
राजर्षिवंशतिलकं दयितं च रामम्।

अथ सीता वानरवेशं हनूमन्तं दृष्ट्वा आह—हम् वानर इति॥ वानरजातौ अतिनिकृष्टबुद्ध्या प्रायः राक्षसस्तद्रूपं न गृह्णाति इति सीताशयो बोध्यः।

अथ हनूमान् प्रणतिकाले एव जानक्याः पातिव्रत्यमहिमदर्शनेन विस्मितः सन् तां स्तौति–पूतं पुनासीति॥ (त्वम्) पूतम् मिथिलाधिराजम् पितरम्, राजर्षिवंशतिलकम् दयितम् रामम् च (पूतम्) तुषारशिशिरम् शैलम्, अम्भसाम् पतिम् च अम्बरगोचरा सरित् इव पुनासि (अतएव) जनस्य वन्द्या (असि) इत्यन्वयः हे देवि! इति सम्बोधनमाक्षेपाल्लभ्यम्। (त्वम्) पूतम् = पवित्रम्, मिथिलाधिराजम् = मिथिलानामकदेशविशेषाधिपतिम्, पितरम् = जनकम्, राजर्षिवंशतिलकम् = राजा चासौ ऋषिश्चेति राजर्षिः, तस्य वंशे = कुले तिलकम्—अलङ्कारभूतम्, दयितम् = कान्तम् रामम् च = दशरथसुतं च (पूतम्) तुषारशिशिरम् = हिमशीतलम्, शैलम् = पर्वतम्, हिमालयमित्यर्थः। अम्भसाम् जलानाम्, पतिम् = स्वामिनम्, अत्र अम्भस्पदेन अम्भसः आश्रयः सरित् लक्षणया गृह्यते तस्याः पतिः समुद्रः तम्, अम्बरगोचरा सरित् इव = आकाशगंगा इव, पुनासि=

सीता—अपना रूप दिखाओ। खोखल से बाहर आ जाओ।

हनूमान्—स्वामिनी की जो आज्ञा। (बाहर निकल कर प्रणाम करते हैं)

सीता—(ठीक से देखकर) हैं, यह तो वानर है। प्रायः राक्षस इस रूप को धारण नहीं करता है।

हनूमान्—(चरणों पर गिरकर) हे देवि!

जिस प्रकार आकाश गंगा हिमालय पर्वत और समुद्र को पवित्र करती हुई सभी लोगों की वन्दना के योग्य है। उसी प्रकार तुम भी अपने पवित्र पिता जनक और क्षत्रिय वंश

वन्द्या जनस्य सरिदम्बरगोचरेव
शैलं तुषारशिशिरं पतिमम्भसां च ॥ ६ ॥

सीता—(आत्मगतम्) को णु खु अअं महुरवअणाणं पजावई। होदु, पुच्छिस्सं दाव णं पच्चा इमस्स परिक्खणे अत्थि पमाणं अच्चरीअचूडामणी। (प्रकाशम्) वित्थरेण भणेहि, को तुमं कदमेण उवाएण अज्जउत्तेण संसग्गो जादो। (को नु खल्वयं मधुरवचनानां प्रजापतिः। भवतु, प्रक्ष्यामि तावदेनं पश्चादस्य परीक्षणे अस्ति प्रमाणम् आश्चर्यचूडामणिः। (प्रकाशम्) विस्तरेण भण, कस्त्वं कतमेनोपायेन आर्यपुत्रेण संसर्गो जातः।)

हनूमान्—शृणोतु स्वामिनी। अहं तनयः सदागतेः, आज्ञाकरः सुग्रीवस्य, नाम्ना हनूमान्।

सीता—तदो तदो। (ततस्ततः।)

वित्रयसि। यथा वियद्गंगा पवित्रमपि हिमालयमम्भसां पतिं समुद्रञ्च पुनाति थैव त्वममपि पूतमपि जनकं पतिं रामञ्च पवित्रयसीति भावः। (अत एव) तस्यापि पवित्रकरणादेव जनस्य = लोकस्य, वन्द्या = पूज्या (असि) वसन्तलकं वृत्तम् ॥ उपमाऽलङ्कारः ॥ ६ ॥

प्रजापतिः = स्रष्टा, कतमेनोपायेन = केन विधिना।

अथ हनूमान् स्वपरिचयं ददाति—शृणोतु इति ॥ सदागतेः = सदा गच्छतीति दागतिस्तस्य पवनस्येति यावत्। आज्ञाकरः = भृत्यः, सेवक इति यावत्। अनेन ग्रीवो नाम वानरराजोऽस्तीति सूचितः।

अलंकार स्वरूप प्रिय राम को पवित्र करती हो अतएव (पवित्रको भी पवित्र करने के रण) तुम सभी लोगों के द्वारा पूजने योग्य हो ॥ ६ ॥

सीता—(मन ही मन) मधुर बोली का जन्मदाता यह कौन है ! अच्छा पहले तो से पूछूँगी फिर इसकी परीक्षा के लिए आश्चर्य चूड़ामणि प्रमाण के रूप में है। (प्रकट) कौन हो ? आर्यपुत्र के साथ तुम्हारा सम्बन्ध किस प्रकार हुआ ?

हनूमान्—सुनिये स्वामिनि ! हम पवनदेव के पुत्र हैं, सुग्रीव के आज्ञापालक हैं। मान् मेरा नाम है।

सीता—उसके बाद।

हनूमान्—तस्य सुग्रीवस्य पूर्वजेन वालिना स्त्रीनिमित्तं राज्यनिमित्तं च प्रवृद्धं वैरमासीत्।

सीता—तदो तदो। (ततस्ततः।)

हनूमान्—ततस्स खलु वालिभयात् सुग्रीवश्चतुरन्तां पृथिवीं प्रादेशमात्रमिव पर्यचरत्।

सीता—तदो तदो। (ततस्ततः।)

हनूमान्—ततः सुग्रीवो वालिनिर्भयं मुनिशापबलान्माल्यवन्तं नाम गिरिमध्यास्त।

सीता—तदो तदो। (ततस्ततः।)

हनूमान्—ततस्तस्मिन् काले सवञ्चनमनेन तावदल्पायुषा राक्षसेन कष्टमवस्थान्तरं स्वामिनी गमिता।

सीता—तदो तदो। (ततस्ततः।)

प्रादेशमात्रमिव व्यचरत = अनयोपमया चतुरन्तवसुधासञ्चरणेन न किञ्चिच्छ्रमोऽभूदिति ध्वन्यते।

वालिनिर्भयम् = इदं हि गिरेर्विशेषणम्, निर्गतं वालिनो भयं यस्मात् तम्।

हनूमान्—उस सुग्रीव की स्त्री तथा राज्य के कारण बड़े भाई वाली के साथ शत्रुता बढ़ गयी थी।

सीता—उसके बाद।

इसलिए वह सुग्रीव वालि के भय से चतुर्दिक पृथिवी का वित्ता भर धरती की भांति भ्रमर कर डाला।

सीता—फिर

हनूमान्—उसके बाद ऋषि के शाप के प्रभाव से वालि के भय से शून्य माल्यवान् नामक पर्वतपर सुग्रीव रहने लगा।

सीता—उसके बाद।

हनूमान्—उसके बाद उस समय अल्पायु राक्षस ने आपको धोखा से इस दुःखमयी अवस्था में पहुँचाया।

सीता—उसके बाद।

हनूमान्—ततस्स धीरोऽपि देवो रामः सागर इव कारणबलादधी-रतां प्राप्तः ।

सीता—तदो तदो । (ततस्ततः ।)

हनूमान्—ततः सानुजो हतायुषो जटायुषः प्रामाण्यात् त्वदन्वेषणार्थम् अद्रेरद्रिं वनाद्वनं पादन्यासैरसकृदपुनात् ।

सीता—तदो तदो । (ततस्ततः ।)

हनूमान्—ततः कस्मिंश्चिन्महति वनान्तरे वालिचरजनपरीक्षणार्थं सुग्रीवस्य निदेशात् सञ्चरता मया दृष्टो देवः ।

सीता—(सहर्षम्) सच्चं तव णअणेहिं । (सत्यं तव नयनाभ्याम् ।)

अथ हनूमान् सीतावियोगेऽधीरं रामं सागरेणोपमिनोति—ततः स इति ॥ यथा धीरोऽपि सागरश्चन्द्रोदयात् प्रभृति—अस्तमयं यावदधीरतां गच्छति तथैव धीरोऽपि रामस्त्वद्वियोगमारभ्य त्वत्समागमपर्यन्तं सन्ततः सन्नधीरतां यास्यतीति भावः ।

हतायुषो जटायुषः प्रामाण्यात = हतम् आयुः यस्य, दिवंगतस्येति यावत्, जटायुषः = गृद्धराजस्य, प्रामाण्यात्=सीता दशग्रीवेन छद्मना अपहृतेति तद्वचनं प्रमाणीकृत्येत्यर्थः ।

हनूमान्—उसके बाद सागर के समान धैर्यशाली भी राम आपके वियोगरूप कारण-विशेष के वल से अपने धैर्य को खो बैठे ।

सीता—उसके बाद ।

हनूमान्—उसके बाद मरणासन्न जटायु के वचन से आपको खोजने के लिए लक्ष्मण के साथ देव ने एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ और एक वन से दूसरे वन को अपने चरण-निक्षेप से अनेक बार पवित्र किया ।

सीता—उसके बाद ।

हनूमान्—उसके बाद किसी बड़े जंगल के बीच में सुग्रीव के आदेश से वालि के गुप्तचरों की जाँच के लिए घूमते हुए मैंने स्वामी राम को देखा ।

सीता—(प्रसन्नता से) सचमुच तुम्हारी आँखों से ?

हनूमान्—स्वामिनि ! अथ किम् !

सीता—भणेहि, भणेहि। कीरिसो अज्जउत्तो। (भण, भण। कीदृश आर्यपुत्रः।)

हनूमान्—शृणोतु स्वामिनी।

सीता—अवहिदम्हि। (अवहितास्मि।)

हनूमान्—पूज्यपादस्य रामस्य,

नखोदग्रौ पादौ रथचरणशङ्खाङ्किततलौ
स्थिरे जङ्घे मध्यं तनु मणिशिलामण्डलनिभम्।

अवहिताऽस्मि = दत्तावधानाऽस्मि।

अथ हनूमान् सीतया जिज्ञासितं रामरूपं वर्णयति—नखोदग्रौ इति। (रामस्य) पादौ नखोदग्रौ, (अथ च) रथचरणशंखाङ्किततलौ (विद्येते) (रामस्य) जङ्घे स्थिरे मध्यम् तनुः मणिशिलामण्डलनिभम् (अस्ति) उरः श्रीवत्साङ्कम्, भुजयो युगलम् उरगयामि, चक्षुः पयोजाभम्, मुखम् परिणतशशाङ्काकृति (अस्ति) इत्यन्वयः। (रामस्य) पादौ = चरणौ, नखोदग्रौ = नखैः उदग्रौ = उन्नतौ, उन्नतनखावित्यर्थः। (अथ च) रथचरणशङ्खाङ्किततलौ = रथचरणशंखाभ्याम् = शङ्खचक्राभ्याम् अङ्कितं = चिन्हितं तलम् = पादस्याधोभागः ययोः तादृशौ, शङ्ख चक्र चिन्हिततलौ (विद्येते) अग्रे 'रामस्य' 'अस्ति' इत्यस्य च सर्वत्र अन्वयो बोध्यः। जङ्घे = जघने, स्थिरे = सुदृढे (स्तः) मध्यम् = मध्यभागः तनुः = कृशम् (अथ च) मणिशिलामण्डलनिभम् = रत्नशिलाचक्रवालसदृशम्,

---

हनूमान्—जी हाँ स्वामिनि !

सीता—कहो कहो, आर्यपुत्र कैसे हैं ?

हनूमान्—सुनिए स्वामिनी।

सीता—सावधान हूँ।

हनूमान्—पूज्यपाद राम का—

उन्नत नख वाले दोनों चरणों के तलवे शंख और चक्र से अङ्कित हैं। उनके दोनों जाँघ मजबूत हैं। कटिप्रदेश मणि के पीठिका-समूह के समान पतला है। हृदय पर

उरः श्रीवत्साङ्कं युगलमुरगायामि भुजयोः
पयोजाभं चक्षुः परिणतशशाङ्काकृति मुखम् ॥ ७ ॥

सीता—दाणिं पेक्खामि विअ अज्जउत्तं । तदो तदो । (इदानीं पश्यामीवार्यपुत्रम् । ततस्ततः ।)

हनूमान्—ततस्तदानीं देवः,

कुवलयपलाशाक्षि ! क त्वं गतेति लपन् वने
स्मरपरवशः स्वामी रामो मया समलक्ष्यत ।

उरः = वक्षस्थलम् , श्रीवत्साङ्कम् = श्रीवत्सपदलाञ्छितम् , भुजयोः युगलम् = बाहुद्वयम् , उरगयामि = सर्पवद्दीर्घम् , आजानुलम्बि इत्यर्थः । चक्षुः = लोचनम् पयोजाभम् = पयोजस्य = कमलस्य आभा इव आभा = कान्तिः यस्य तत् पद्मकान्ति इत्यर्थः । मुखम् = आननम् , परिणतशशाङ्काकृति = पूर्णचन्द्राकारम् , सर्वजनाह्लादकत्वान्मुखे चन्द्रसादृश्यमुक्तम् । एतैश्चिन्हविशेषै रामस्य लोकोत्तरपुरुषत्वं व्यज्यते, एतेषां शङ्खचक्रादिलक्षणविशेषाणां साधारणपुरुषेऽदर्शनात् । शिखरिणीवृत्तम् । उपमाऽलङ्कारः ॥ ७ ॥

अथ सीता पादादिवदनान्तं रामस्य स्वरूपं श्रोत्रेन्द्रियद्वारा मनसि निधाय भावनाबलेन तत्साक्षात्कारमनुभवन्ती आह—इदानीमिति ॥ साम्प्रतं स्वामिनं साक्षादवलोकयामि इव इत्यर्थः ।

अथ मारुतिः सीतावियोगजं रामप्रलापप्रकारं वर्णयति—कुवलयपलाशाक्षि इति ॥ हे कुवलयपलाशाक्षि ! त्वम् क्व गता इति वने लपन् असकृद् बाष्पैः स्नपितम् , आविर्मणिद्युतिनूपुरम् , सपदि कटकस्थाने मौलीपदे च समर्पयन् स्मरपरवशः स्वामी रामः मया समलक्ष्यत इत्यन्वयः । हे कुवलयपलाशाक्षि != कुवलयपलाशवत् = कुमुददलवत् कोमले शोभने च अक्षिणी यस्याः तत्सम्बोधने कुवलयपलाशाक्षि, कुवलयदलनयने इत्यर्थः । त्वम् = सीता, क्व = कुत्र, गता =

श्रीवत्स के चरणों का चिह्न है । दोनों भुजाएँ घुटनों तक लटकी हैं । नेत्र कमल और मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान हैं ॥ ७ ॥

सीता—इस समय मैं आर्यपुत्र को मानो देख रही हूँ । उसके वाद ।

हनूमान्—तदनन्तर उस समय देव—

"हे कुवलय के पल्लव के समान नेत्र वाली ! तुम कहाँ चली गयी" ? इस प्रकार विलाप करते हुए काम के वशीभूत स्वामी राम को जंगल में मैंने देखा । जो (राम)

स्नपितमसकृद्बाष्पैराविर्मणिद्युति नूपुरं
सपदि कटकस्थाने मौलीपदे च समर्पयन् ॥ ८ ॥

स्वामिनि ! किं बहुना । तव चरणाभरणं देवस्य सर्वाभरणं संवृत्तम् ।

सीता—कहं तुए अवगतं । (कथं त्वया अवगतम् ।)

हनूमान्—अप्रत्यक्षस्य मे प्रमाणं ननु कुमारो लक्ष्मणः ।

सीता—जुज्जइ । तदो तदो । (युज्यते । ततस्ततः ।)

हनूमान्—ततस्तदानीम्,

याता, इति=एवं प्रकारेण, वने=विपिने, लपन्=प्रलपन् (अपिच) असकृद् बाष्पैः=निरन्तरप्रवहमानैः अश्रुभिः, स्नपितम्=कारितस्नानम्, आविर्मणिद्युति नूपुरम्=प्रकटितरत्नशोभं पादाङ्गदम् मञ्जीर इति यावत् (लोके पैंजनी अथवा पायल इति प्रसिद्धम्) । सपदि=सद्यः, कटकस्थाने = वलयस्थाने, मौलीपदे च=किरीटस्थाने च समर्पयन्=स्थापयन्, स्मरपरवशः=मदनवशंगतः, स्वामी रामः=देवो रामः, मया=हनूमता, समलक्ष्यत=सम्यक् दृष्टः। वियोगे भवतीमितस्ततोऽन्विपन् भवत्या नूपुरमेव व्यस्तभावेनान्याभरणस्थाने विनियोजयन् लक्ष्मणमात्रसहायो मदनविह्वलो रामो मया दृष्ट इति भावः। हरिणीवृत्तम् ॥ ८ ॥

कथं त्वया अवगतम्=मम चरणाभरणमिति त्वया कथं ज्ञातम् ।

मणि की कान्ति से युक्त नूपुर को वार-बार आसुओं से भिगोते हुए कभी कटक (हाथ का आभूपण) स्थान में और कभी शिर पर रख रहे थे ॥ ८ ॥

स्वामिनि ! अधिक क्या ? आपके चरण का आभूषण देव के सभी अंगों का भूषण बन गया ।

सीता—तुमने कैसे जाना ?

हनूमान्—प्रत्यक्ष नहीं देखने वाले मेरे लिए कुमार लक्ष्मण ही प्रमाण हैं ।

सीता—हो सकता है । उसके बाद ।

हनूमान्—तब उस समय—

मरतकरुचो माद्यद्भृङ्गा महीरुहराजयो
निपतितनदीनिर्धौतान्ता नितम्बभुवो गिरेः।
पथिकसुहृदः पम्पावीचीभिदश्च समीरणाः
क्षणमपि विभुं नालं हर्तुं हरत्सु गुणेषु ते॥ ९॥

सीता—तदो तदो। (ततस्ततः।)

अथ हनूमान् रामस्य सीतावियोगजन्यां दशां वर्णयति—मरतकरुच इति॥ मरतकरुचः माद्यद्भृङ्गाः महीरुहराजयः निपतितनदीनिर्धौतान्ताः गिरेः नितम्बभुवः, पथिकसुहृदः, पम्पावीचीभिदः समीरणाः च ते गुणेषु विभुम् हरत्सु क्षणम् अपि (एते पूर्वोक्ताः) हर्तुम् न अलम् इत्यन्वयः। मरतकरुचः = मरतकमणेः = हरिन्मणेः रुचिरिव रुचिः कान्तिः यासाम् ताः, हरिन्मणिवद्श्यामवर्णाः इत्यर्थः। माद्यद्भृङ्गाः—माद्यन्तः = सदोन्मत्ताः, भृङ्गाः = भ्रमराः, महीरुहराजयः—महीरुहाणाम् = वृक्षाणाम्, राजयः = लेखाः, निपतितनदीनिर्धौतान्ताः = ऊर्ध्वदेशात्, निपतितया नद्या = निर्झरेण, निर्धौतः = शोधितः, अन्तः = अन्तस्तलम् यासाम् ताः तथोक्ताः, गिरेः = पर्वतस्य नितम्बभुवः = मध्यप्रदेशाः, पथिकसुहृदः = पथिकानाम् = पान्थानाम् अध्वश्रमापनयनेन मित्रभावं गताः, पम्पावीचीभिदः = पम्पाख्यसरस्तरंगभेदकाः, समीरणाः = वायवः, ते = भवत्याः, गुणेषु विभुम् = प्रभुम्, हरत्सु = स्वाधीनं कुर्वत्सु, क्षणमपि = मुहूर्तमपि, (एते पूर्वोक्ताः पदार्थाः) हर्तुम् नालम् = त्वद्गुणगतञ्चित्तं स्वगुणमहिम्ना आक्षिप्य समाश्वासयितुं नालम्। विरहिजनचित्तविनोदहेतवः एते समीरणादयः पदार्थास्त्वद्गुणाकृष्टं स्वामिनश्चेतो विनोदयितुं सर्वथाऽसमर्थाः सञ्जाता इति भावः। हरिणीवृत्तम्॥ ९॥

तुम्हारे गुणों के द्वारा रामचन्द्र के चित्त को हरण कर लिये जाने पर ये मरकतमणि के समान श्यामवर्ण के उन्मत्त भौरों से युक्त वृक्षपंक्ति, ऊपर से गिरने वाली नदियों से पवित्र पर्वत के वनप्रदेश और पथिकों के सहायक, पम्पा सरोवर की लहरों को भंग करने वाले वायु एक क्षण भी (उनके चित्त) को चुराने में समर्थ नहीं हो सके॥ ९॥

विमर्श—सीता के मनमोहक गुणों पर राम मुग्ध थे। जब सीता का वियोग सामने आया तो उसके गुणों में रमे हुए राम के चित्त को भ्रमर के गुञ्जार, मलयानिल या पर्वतीय वन-प्रदेश आकृष्ट करने में असफल रहे। सीता के अभाव में प्रकृति के पूर्वोक्त सभी उपकरण राम का मनोविनोद करने में असमर्थ से नजर आये।

सीता—उसके बाद।

हनूमान्—

दयितमुपनयन्तं शैवलं चक्रवाकीं
मधु मधुकरमम्भोजन्मनामापिबन्तम् ।
बिसवलयरसज्ञं राजहंसं च राजा
मुहुरभजत तुभ्यं देवि ! सन्देष्टुकामः ॥ १० ॥

सीता—तदो तदो । (ततस्ततः ।)

हनूमान्—

केकया च शिखिनां मृदुधूतकेतकीसुमनसा मरुता च ।

दयितमुपनयन्तमिति ॥ हे देवि ! तुभ्यम् सन्देष्टुकामः राजा चक्रवाकीम् शैवलम् उपनयन्तम् दयितम्, अम्भोजन्मनाम् मधु आपिबन्तम् मधुकरम्, बिसवलयरसज्ञम् राजहंसम् च मुहुः अभजत इत्यन्वयः । हे देवि ! तुभ्यम् = भवत्यै, सन्देष्टुकामः, सन्देशप्रेषणाभिलाषः, राजा = स्वामी रामः, चक्रवाकीम् = कोकप्रियाम्, शैवलम् = शेवालम्, जलनीलीमित्यर्थः । उपनयन्तम् = दत्तवन्तम्, दयितम् = चक्रवाक्याः प्रियम् कोकम्, (अभजत) स्वप्रियावदने निजमुखेन शेवालं दत्तवन्तञ्चचक्रवाकमित्यर्थः । अम्भोजन्मनाम् = पङ्कजानाम्, मधु = मकरन्दम्, आपिबन्तम् = आस्वादयन्तम्, मधुकरम् = भ्रमरम्, बिसवलयरसज्ञम् = मृणाल-वलयरसास्वादकम्, राजहंसम् च = हंसविशेषञ्च, मुहुः = वारम्वारम्, अभजत = सेवितवान् । लोहितचञ्चुचरणः सितवर्णो हंसविशेषो राजहंसपदवाच्यः । देवो राम एभिर्दूतकर्मनिपुणैश्चक्रवाकादिभिस्त्वां सन्देष्टुं सर्वथा यतमान आसीदिति भावः । मालिनी वृत्तम् ॥ तुल्ययोगिताऽलङ्कारः ॥ १० ॥

तस्मिन् काले प्रावृट्समयश्चाविरभूदिति दर्शयति—केकयेति ॥ सः वीरवाह-मलिनासु निशासु शिखिनाम् केकया मृदुधूतकेतकीसुमनसा मरुता च मुहूर्तम् प्राणसंशयम् अगात् इत्यन्वयः । सः = देवो रामः, नीरवाहमलिनासु = नीरवाहैः=

हनूमान्—देवि ! चकवी के द्वारा प्रदत्त सेवार से युक्त चकवाक, कमल के मकरन्द को पीते हुए भ्रमर और कमल के नालसमूह के रस को जानने वाले हंस की आपको संदेश देने की कामना से राजा राम ने बार-बार सेवा की ॥ १० ॥

सीता—उसके बाद ।

हनूमान्—वे राम मयूरों की केका ध्वनि से, कोमल केतकी पुष्प की सुगन्धि से युक्त

नीरवाहमलिनासु निशासु प्राणसंशयमगात् स मुहूर्तम् ॥ ११ ॥

सीता—हद्धि, तदो तदो । (हा ! धिक् , ततस्ततः ।)

हनूमान्—ततस्तदानीमेव विद्युत्प्रकाशे सति,

करपल्लवमात्रमुज्जिहीते
मदिराक्ष्या मम वारिमग्नगाऽयाः ।

पयोधरः, मलिनासु=मालिन्यं प्राप्तासु, निशासु = रात्रिषु, शिखिनाम्=मयूराणाम् , केकया = ध्वनिना, शब्देनेत्यर्थः, 'केका वाणी मयूरस्ये'त्यमरः । मृदुधूतकेतकी-सुमनसा मरुता = मृदु = मन्दभावेन धूतानि = उत्सृष्टानि, केतकीसुमनांसि = केतकीपुष्पाणि येन तथाभूतेन मरुता = पवमानेन, मुहूर्तम् = क्षणं यावत् आविद्युत्प्रकाशादित्यर्थः । प्राणसंशयम् = जीवितसन्देहम् अगात् = गतवान् । प्रावृट्समये प्रायशो मयूराणां केकाः केतकीपुष्पाणि च भवन्ति अतस्तादृशः कालो विशेषतो वियोगिभिर्न सोढुं शक्य इति मनसि निधाय 'प्राणसंशयमगात्' इत्यु-क्तम् ॥ स्वागता वृत्तम् । तल्लक्षणं हि—स्वागतारनभगैर्गुरुणा च ॥ ११ ॥

एवं जीवितसन्देहं प्राप्तस्य देवस्य दैवानुग्रहाद् देवीदर्शनभ्रान्तिः जीवना-लम्बनमासीदिति आह—करपल्लवमात्रमिति ॥ हे देवि ! वारिमग्नगाऽयाः मम मदिराक्ष्याः करपल्लवमात्रम् उज्जिहीते इति तूर्णम् उपेत्य देवः विकोशाः कन्दलीः मुहुः आलम्बत इत्यन्वयः । हे देवि ! हे भगवति ! वारिमग्नगाऽयाः = जल-निमग्नशरीरायाः मम = रामस्य, मदिराक्ष्याः = सुलोचनायाः (प्रियायाः) कर-पल्लवमात्रम् = करः = हस्तः पल्लवम् = किसलयम् इव तन्मात्रम् = केवलं करकिस-

---

वायु से, मेघों से आच्छन्न (अतएव) मलिन रात्रि में एक क्षण के लिये अपने प्राण को संशय में डाल दिए ॥ ११ ॥

विमर्श—आपके वियोग में राम व्याकुल थे । वर्षाऋतु आ गयी । इस ऋतु में मयूरों की ध्वनि और केतकी के फूल खिलते हैं । इस प्रकार की वर्षा ऋतु में प्रिय की याद सताती है । वियोगीजन के लिए यह समय सर्वथा प्रतिकूल हो जाता है । इस विपरीत वातावरण में राम आपके वियोग में सर्वथा असहाय से हो गये । अतएव उनके प्राणसंशय का प्रसंग उपस्थित हो गया ।

सीता—हाय ! कष्ट है । उसके बाद ।

हनूमान्—उसके बाद उसी समय बिजली के प्रकाश होने पर—हे देवि ! "जल में

इति तूर्णमुपेत्य देवि ! देवो
मुहुरालम्बत कन्दलीर्विकोशाः ॥ १२ ॥

सीता—तदो तदो । (ततस्ततः ।)

हनूमान्—ततः अन्यतो गत्वा,

आपाद्य भङ्गि शयनं तरुणैः प्रवालै-
राल्रूय पुष्पमलकाभरणास्थया ते ।

लयमेव, उज्जिहीते = अवशिष्टोऽस्ति, जलादुपरि दृश्यते इत्यर्थः। इति = करपल्लवस्यापि निमज्जनं शङ्कमानः, तूर्णम् = शीघ्रम् , उपेत्य = उपयानं कृत्वा, समीपं गत्वेति यावत्। देवः = स्वामी विकोशाः कन्दलीः = विकसितानि रक्तोत्पलानि, मुहुः = पौनःपुन्येन, आलम्बत = अभजत। एकस्मिन् रक्तकमले गृहीते नेदं करपल्लवमपि तु रक्तोत्पलमेवेति सञ्जातबोधः पुनः अन्यद् रक्तोत्पलं करपल्लवभ्रमेण गृहीतवान् , एवं तत्रापि करपल्लवबाधेऽन्यदिति मुहुः शब्देन, कन्दलीगतबहुवचनप्रयोगेन च ध्वन्यते। कालभारिणी वृत्तम्। भ्रान्तिमानलङ्कारः ॥ १२ ॥

अथ मारुतिः पम्पामुत्तीर्य तीरवनं गतस्य रामस्य कामोन्मादान्तरं निवेदयति—आपाद्येति ॥ काम् अपि पुष्पवल्लीम् (दृष्ट्वा) तरुणैः प्रवालैः भङ्गि शयनम् आपाद्य ते अलकाभरणास्थया पुष्पम् आलूय इति सान्त्वयति—हे वैदेहि ! हे चण्डि, हे मम जीवित, हे भामिनि, त्वम् एहि इत्यन्वयः। कामपि पुष्पवल्लीम् = काञ्चिदपि कुसुमलतिकाम् , (अवलोक्य त्वद्भ्रमेण) तरुणैः = नूतनैः, प्रवालैः = किसलयैः, भङ्गि = चारुतरम् , शयनम् = शय्याम् आपाद्य = निर्माय, ते = भवत्याः, अलकाभरणास्थया = केशाऽलङ्काराभिलाषेण, पुष्पम् = कुसुमम् , आलूय = संछिद्य, इति = वक्ष्यमाणप्रकारेण सान्त्वयति=सम्बोधयति, सान्त्वनां ददाति इति यावत्।

डूब गया है शरीर जिसका ऐसी सुन्दर नेत्रों वाली मेरी प्रियतमा का किसलय के समान कोमल हाथ ही केवल (जल के बाहर) बचा हुआ है" ऐसा समझकर राम शीघ्र ही विकसित रक्तकमल को बार-बार पकड़े ॥ १२ ॥

सीता—उसके बाद ।

हनूमान्—उसके बाद दूसरी ओर जाकर,

नवीन किसलयों से सुन्दर शय्या बिछाकर और तुम्हारे केशों के अलंकार के लिए उपयुक्त फूलों को तोड़ कर, "वैदेहि ! मेरा जीवन ! कुपिते, मानिनि ! तुम आओ। यहाँ

वैदेहि ! चण्ड ! मम जीवित ! मानिनि ! त्वम्
एह्यीति सान्त्वयति कामपि पुष्पवल्लीम् ॥ १३ ॥

सीता—होदु एदं एत्तएण पवणपुत्त ! पिअं खु इत्थिआणं। मम खु दाव सोअं वीलं अ उप्पादेदि। भणेहि भणेहि, अधण्णाए मम किदे अज्ज वि तादिसो एव्व अज्जउत्तो। (भवत्वेतत्। एतावता पवनपुत्र! प्रियं खलु स्त्रीणाम्। मम खलु तावत् शोकं व्रीडां चोत्पादयति। भण भण, अधन्याया मम कृते अद्यापि तादृश एवार्यपुत्रः।)

हनूमान्—न हि न हि सहायलाभादिदानीं प्रसन्नो देवः।

हे वैदेहि = विदेहतनये ! मम जीवित = रामस्य प्राणभूते, चण्ड = कठोरहृदये, मानिनि = मानशीले, त्वम् = सीता, एहि = आगच्छ, आगत्य च इमाम् पुष्पोपकल्पिताम् शय्यामलङ्कुरु, अनेन च पुष्पेण त्वामलङ्करोमीत्यर्थः। कामपि पुष्पलतिकामवलोक्य तामेव सीतां मन्यमानो रामस्तच्छयनार्थं किसलयशय्यां निर्माया-ऽलङ्करणाय च पुष्पाण्यादाय 'वैदेहि' इत्यादिना तामेव लतां सम्बोध्यात्मानं प्रबोधयतीति भावः। अत्र कविना विरहोत्कण्ठितानाम् कामिजनानां दशा शोभनतयोपन्यस्ता। वसन्ततिलकं वृत्तम्। भ्रान्तिमानलङ्कारः ॥ १३ ॥

विरहसंतप्तस्य रामस्येतिवृत्तं ज्ञात्वा प्रसन्ना भूत्वा सीता आह—भवत्वेतत् इति ॥ हे पवनपुत्र = हे वायुनन्दन ! एतत् = प्रियस्य विरहदुःखम्, स्त्रीणाम् = मदतिरिक्तानाम् कामिनीनाम्, प्रियं भवतु = (अनुरागद्योतकत्वात्) शोभनं भवतु। मम तु = सीतायाः तु, एतत् = प्रियविरहदुःखम्, शोकम् = कष्टम्, व्रीडाम् = लज्जाञ्चोत्पादयति। यतो हि ममाऽपेक्षया सत्प्रियस्य शोको मया सोढुं न शक्यः अतो ममोऽपि आर्यपुत्र एव प्रियतर इति भावः। तादृशः = दुःखविवशः, विरहक्लेशाकुलीकृतचित्त इत्यर्थः।

अथ हनूमान् रामस्य प्रसन्नतां निवेदयति—नहि नहि इति ॥ सहायलाभात् = सुग्रीवरूपमित्रलाभात्,

---

शय्या है। आओ, मैं तुम्हें अलङ्कृत करता हूँ"। ऐसा कहते हुए किसी पुष्पलता को सान्त्वना देते हैं ॥ १३ ॥

सीता—हे पवनपुत्र ! यह विरह दुःख अन्य स्त्रियों के लिये भले ही प्रिय हो किन्तु मुझे तो दुःख और लज्जा ही देता है। कहो कहो। मुझ अभागिन के लिए आज भी आर्यपुत्र उसी तरह हैं।

हनूमान्—नहीं नहीं, मित्र की प्राप्ति से राम इस समय प्रसन्न हैं।

सीता—अज्जउत्तस्स अणत्थमित्तं दाणिं कहेहि। (आर्यपुत्रस्य अनर्थमित्रमिदानीं कथय।)

हनूमान्—ततस्तस्माद् वनादुपनीय संस्कारेण शरीरशरीरिणोरिव रामसुग्रीवयोः सम्बन्धो मया कारितः।

सीता—तदो तदो। (ततस्ततः।)

हनूमान्—ततस्तदनुभावादत्यन्तदूरीकृतवालिभयम् ऋक्षवानरैश्वर्यम् अखिलदिङ्मण्डलविषयमप्रतिहतशासनमयत्नमेव स्वामी प्रत्यपद्यत।

सीता—तदो तदो (ततस्ततः।)

अनर्थमित्रम् = निःस्वार्थसुहृदम्।

अथ मारुतिः रामसुग्रीवयोर्मैत्रीकरणे आत्मानं हेतुतयोपपादयति—ततो मयेति॥ रामसुग्रीवयोः सम्बन्धः मया संस्कारेण शरीरशरीरिणोरिव कारित इत्यन्वयो विधेयः। संस्कारेण शरीरशरीरिणोरिव = जन्मान्तरार्जितपुण्यापुण्यवासनाख्यविशेषेण कर्तृत्व-भोक्तृत्वादि-धर्मयुक्तजीवात्मानं प्राक्तनदेहादानीय तस्य फलभोगार्थं स्वार्जितेन देहान्तरेण यथा सम्बन्धः कार्यते तथा मयाऽपि रामवानरराजयोर्मित्रभावलक्षणः सम्बन्धः सम्पादित इति भावः।

अथ हनूमान् रामकृतवालिवधपुरस्सरं सुग्रीवराज्यप्राप्तिप्रकारं वर्णयति—ततस्तदनुभावादिति॥ तदनुभावात् = रामस्य प्रभावात्, अत्यन्तदूरीकृतवालिभयम् = अत्यन्तम् दूरीकृतम् वालिभयम् यस्मिन् तत् तथोक्तम् शासनम् प्रत्यपद्यत। वालिवधेन सर्वथा विनष्टवालिभीतिम्, ऋक्षवानरैश्वर्यम्=भल्लूकपिवैभवम्, अखिलदिङ्मण्डलविषयम् = अखिलम् = समस्तम्, दिङ्मण्डलम् = आशाचक्रम्

सीता—आर्यपुत्र के अकारण अर्थात् निःस्वार्थ मित्र के सम्बन्ध में इस समय कहो।

हनूमान्—उसके बाद बन से लाकर पूर्वजन्म के संस्कार से शरीर और आत्मा की भाँति हमने राम और सुग्रीव में परस्पर मित्रता करा दी।

सीता—उसके बाद।

हनूमान्—उसके बाद उनके प्रभाव से वालि के भय से मुक्त हो भालु और वानरों के वैभव से युक्त और समस्त दिशाओं का शत्रुरहित शासक विना प्रयास के ही सुग्रीव वन गया।

सीता—उसके बाद।

हनूमान्—एवं सिद्धार्थः सुग्रीवः पश्चात् त्वदन्वेषणोपक्रमे स्वामिकर्मणि व्यापृतः।

सीता—तदो तदो। (ततस्ततः।)

हनूमान्—ततः परिहासमात्रमिव जन्मना देवानामतिशायिनः कर्मणा वानरवीरानृक्षाधिपतींश्च कृतसमयानसृजदाशाचतुष्टयम्।

सीता—तदो तदो। (ततस्ततः।)

हनूमान्—अस्यामपि दिशि युवराजनेतृकमृक्षेश्वरपुरोगमसमदादि विरलमादिशदिदं सैन्यम्।

विषयो यस्य तत् तथोक्तं निखिलदिशाचक्रविषयम् इत्यर्थः। अप्रतिहतशासनम् = अप्रतिहतम् = अप्रतिरुद्धम् शासनम् = आज्ञापनम् यस्मिन् एतादृशं राज्यम् स्वामी = वानरराजः सुग्रीवः अयत्नमेव = अनायासमेव, प्रत्यपद्यत = प्राप्तवान्।

सिद्धार्थः = सिद्धः = सम्पन्नः, अर्थः = प्रयोजनं यस्य तथाभूतः, लब्धमनोरथ इत्यर्थः। व्यापृतः = आत्मानं व्यापारितः।

अथ मारुतिः सीतान्वेषणाय सुग्रीवकर्म वर्णयति—ततः परिहासमात्रमिवेति॥ जन्मना—जात्या, परिहासमात्रम् = उपहासयोग्यान् एव तान्, किन्तु कर्मणा = पराक्रमादिशौर्यव्यापारेण, देवानाम् = अमराणाम्, अतिशायिनः = अतिक्रम्य वर्तमानान्, कृतसमयान् = कृतसङ्केतान्, वानरवीरान् = वीरभावमुपेतान् कपीन्, ऋक्षाधिपतीन् च = भल्लनायकान् च आशाचतुष्टयम् प्रति = चतुर्दिङ्मण्डलम्, चतुर्दिशमिति यावत्, प्रति, असृजत् = प्रेषयामास। त्वदन्वेषणाय सुग्रीवेण सर्वासु दिक्षु वानरभल्लनायकाः प्रेषिता इति भावः।

अस्यामपि दिशि = दक्षिणस्यां दिशि लंकां प्रतीत्यर्थः, युवराजनेतृकम् = युवराजः अंगदः नेता = नायकः यस्य तत्तथोक्तं सैन्यम् इति योजनीयम्। ऋक्षेश्वरपुरोग-

---

हनूमान्—इस प्रकार अपने मनोरथ को पूर्णकर तदनन्तर आपके अन्वेषण रूप स्वामी के कार्य में लग गये।

सीता—उसके बाद।

हनूमान्—उसके बाद स्वामी सुग्रीव ने जन्म से हंसी के पात्र किन्तु कर्म से देवताओं को भी तिरस्कृत करने वाले वानरों और भालुओं को यथा समय चारों दिशाओं में विदा किया।

सीता—उसके बाद।

सीता—संकणिज्जा एसा आसा। तदो तदो। (शङ्कनीयैषाशा। ततस्ततः।)

हनूमान्—ततः सर्वेषु वानरवीरेषु स्थितेष्वपि पूर्वदर्शनविस्रम्भान्मामुपह्वरमाहूतवता देवेन दत्तमुक्तं च।

सीता—(सहर्षम्) किं किं। (किं किम्।)

हनूमान्—(प्रणिपत्याङ्गुलीयकं प्रयच्छति)

सीता—(सहर्षं प्रतिगृह्य निर्वर्ण्य) एदमच्चरिअं अङ्गुलीअअं। एदं तपोधणेहिं दिण्णं। एदं कुमारेण आणीदं। (अङ्गुलीयमादाय च विलपति एतदाश्चर्यमङ्गुलीयकम्। एतत्तपोधनैर्दत्तम्। एतत् कुमारेणानीतम्।)

हनूमान्—एषा देवी,

मम् = ऋक्षेश्वरः = भल्लराजः पुरो गच्छति यस्य तत्तथोक्तम्, विरलम् = अल्पम्, आदिशत् = आदिष्टवान्। युवराजाङ्गदनेतृत्वे जाम्बवत्पुरस्सरमस्मदादियुतं कपिसैन्यं दक्षिणां दिशं प्रति त्वदन्वेषणाय गन्तुमादिष्टवानित्यर्थः।

पूर्वदर्शनविस्रम्भात् = प्रागवलोकनप्रत्ययात् उपह्वरम् = समीपम्। देवेन दत्तम् = तुभ्यम् इयमूर्मिका दत्ता, उक्तम् च = अयं संदेशोऽपि कथितः।

अथ मारुतिः प्राप्तेन अङ्गुलीयकेन विलापात् प्राक् आश्वासनप्रकारं पश्यन् देवीमभिनन्दति—एषेति ॥ (एषा देवी) अङ्गुलीयकम् अलकम् आरोपयति, स्ववक्त्रम् आनयति, बाहुलतोपपीडम् भूयः समाश्रयति, अङ्गुलिपल्लवेषु च प्रत्येकम् अर्पयति, ध्यानाधिकस्तिमितम्, आर्द्रम् अवेक्षते च इत्यन्वयः। (एषा

हनूमान्—युवराज अंगद के नेतृत्व में जाम्बवान् हैं अगुआ जिसमें ऐसे हम लोगों से युक्त सेना को इस दिशा में जाने का आदेश दिया।

सीता—यह दिशा तो शंका के योग्य है। उसके बाद।

हनूमान्—उसके बाद सभी वीर वानरों के विद्यमान रहने पर भी पूर्व परिचय के विश्वास से हमें समीप बुलाकर स्वामी ने यह (अंगूठी) दी और कहा—

सीता—(खुशी से) क्या, क्या?

हनूमान्—(झुक कर अंगूठी देते हैं)

सीता—(खुशी से लेकर और देखकर) यह अद्भुद् अंगूठी है। इसे तपस्वियों ने दिया है। इसे कुमार लक्ष्मण ने लाया है। (अंगूठी लेकर विलाप करती हैं)

हनूमान्—यह देवी—

आरोपयत्यलकमानयति स्ववक्त्रं
भूयः समाश्रयति बाहुलतोपपीडम् ।
प्रत्येकमर्पयति चाङ्गुलिपल्लवेषु
ध्यानाधिकस्तिमितमार्द्रमवेक्षते च ॥ १४ ॥

सीता—इदं लोआभरणस्स आभरणं, इदं बाणासणगुणपरिखेदिअं, इदं रक्खसमाआपिसुणं, इदं रअणीसु रअणदीवो, इदं वदणालंकारविक्कप्पादरिसो। (इदं लोकाभरणस्याभरणम्, इदं बाणासनगुणपरिखिन्नम्, इदं राक्षसमायापिशुनम्, इदं रजनीषु रत्नदीपः, इदं वदनालंकारविकल्पादर्शः।)

देवी) अङ्गुलीयकम् अलकम् आरोपयति = अलकेषु = केशेषु समर्प्य आश्वसिति, स्ववक्त्रम् = निजमुखे, आनयति = समर्पयति, बाहुलतोपपीडम् = भुजलताभ्याम् उपपीड्य, भूयः = अनेकवारम्, समाश्रयति = आलिङ्गति, अङ्गुलिपल्लवेषु च = किसलयसदृशाङ्गुलीषु मध्ये च प्रत्येकम् अर्पयति = क्रमेण एकैकम् समर्पयति, ध्यानाधिकस्तिमितम् = ध्यानाधिकेन = दयितगोचरसंकल्पबाहुल्येन, स्तिमितम् = स्तम्भितम्, (अतएव) आर्द्रम् = स्निग्धं यथा स्यात्तथा अवेक्षते = प्रेक्षते। अङ्गुलीयकमवाप्य तद्दर्शनसञ्जातानन्दहृदया देवी सर्वाङ्गेषु तत्स्पर्शं नाटयन्ती दयितचिन्तनैकपरा भूत्वा हर्षातिरेकमनुभवतीति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १४ ॥

लोकाभरणस्य ॥ संसाराऽलङ्कारभूतस्य (रामस्य) आभरणम् = आभूषणम्, इदम् अङ्गुलीयकमस्ति । बाणासनगुणपरिखिन्नम् = बाणासनगुणैः = शरासनज्याभिः, परिखिन्नम् = परिक्लेशितम्, संघृष्टमिति यावत्। राक्षसमायापिशुनम् = रजनीचरमायापरिचायकम्, रत्नदीपः = मणिप्रदीपः, वदनाऽलङ्कारविकल्पादर्शः = आननाभूषणदर्शनार्थं परिकल्पितः आदर्शः = दर्पणम्।

इस अंगूठी को केशों में लगाती है। इसे अपने मुँह के पास ले जाती है। अपनी बाहुलता से पीडित करके पुनः आलिंगन करती है। अपनी सभी अंगुलियों में बारीबारी से पहनती है और एकाग्र होकर इसे देखती है ॥ १४ ॥

सीता—यह संसार के आभूपण के आभूषण है। यह धनुष की प्रत्यञ्चा से घिसी है। यह राक्षसों के कपट का सूचक है। यह रात्रि में रत्नदीप है। यह मुख की शोभा को देखने के लिए दर्पण है।

हनूमान्—अस्याः कृते ततोऽपि शतगुणमुन्मादं कर्तुमर्हति देवः।

सीता—अङ्गुलीअअ ! दाणिं अज्जउत्तहत्थब्भासविरहिदो तुवं वि। तुवं वि अज्जउत्तेण पाणिणा गहीदोऽसि। तव केण विवण्णत्तणं जादं। तुवं वि अहं विअ रक्खसबन्दीभूदो। (अङ्गुलीयक ! इदानीमार्यपुत्रहस्ताभ्यासविरहितस्त्वमपि। त्वमप्यार्यपुत्रेण पाणिना गृहीतोऽसि। तव केन विपन्नत्वं जातम्, त्वमप्यहमिव राक्षसबन्दीभूतः।)

हनूमान्—

रघुवृषभकराङ्गुलीवियोगादधिगतविश्रममेषु वासरेषु।
विरहदहनवेदनापरीतं नयति नताङ्गि ! तवाङ्गमङ्गुलीयम् ॥१५॥

ततोऽपि = पूर्वदृष्टादुन्मादात्। पूर्वं देवस्य सीताविरहजन्योन्मादोऽतिकष्टमिति मदीया मतिरभूत् साम्प्रतन्तु एवंभूताया देव्या दर्शने स्वल्प एव स्वामिन उन्माद इति निश्चयो भवतीति भावः।

अथ सीता रामाङ्गुलीवियुक्तमङ्गुलीयकमपि आत्मना सदृशं मन्यमाना तत् सम्बोध्य कथयति—अङ्गुलीयक इति॥

अथ मारुती रामकरवियुक्तस्याङ्गुलीयकस्य देवीप्रतिपादितं शोचनीयत्वं परिहरन्नाह—रघुवृषभेति॥ हे नताङ्गि ! रघुवृषभकराङ्गुलीवियोगात् (हेतोः) इदम् अङ्गुलीयम् विरहदहनवेदनापरीतम्, तव अङ्गम् एषु वासरेषु अधिगतविश्रमम् नयति इत्यन्वयः। हे नताङ्गि = हे कृशाङ्गि ! रघुवृषभकराङ्गुलीवियोगात्= रघुकुलश्रेष्ठहस्ताग्रभागविप्रलम्भात् (हेतोः त्वदङ्गं प्राप्य) इदम् अङ्गुलीयम्= इयं मुद्रिका, विरहदहनवेदनापरीतम्=वियोगाग्निजनितशोकव्याप्तम्, तव=

हनूमान्—इस देवी के लिए तो देव उससे भी सौ गुणा अधिक उन्माद कर सकते हैं।

सीता—हे मुद्रिके ! इस समय तुम भी आर्यपुत्र के हाथों से बिछुड़ गयी हो, आर्यपुत्र ने तुम्हें भी अपने हाथों से ग्रहण किया है।

तुम्हें किससे विपत्ति मिली है ? क्या तुम भी हमारी ही तरह राक्षस की बन्दी बन गयी हो ?

हनूमान्—हे कृशाङ्गि ! यह अंगूठी रामचन्द्र के हाथ की अङ्गुली के वियोग से विरह की आग के दुःख से व्याप्त आपके शरीर के अवयव को इस समय विरहाग्नि की ज्वाला से रहित बना रही है॥ १५॥

सीता—किं णु खु करिस्सं। (किं नु खलु करिष्यामि।)

हनूमान्—(आत्मगतम्) अस्याः खलु,

शरपाण्डुरगात्रेषु श्यामां पुलकितामपि।
अङ्गुलीयस्य चरतः पश्यामि पदवीमहम्॥ १६॥

भवत्याः, अङ्गम्=शरीरावयवम्, एषु वासरेषु=साम्प्रतिकेषु दिवसेषु, अधिगतविश्रमम् = अधिगतः=प्राप्तः, विश्रमः = विरहाग्निज्वालोपशमः यस्य, तत् तथोक्तम् नयति=करोति। रामाङ्गुलीवियुक्तमप्यङ्गुलीयकमिदं साम्प्रतं विरहाग्निविदग्धं भवत्याः शरीरावयवं सर्वथा विगतविरहज्वालं करोति अतो नास्त्यस्य शोचनीयत्वमिति भावः। पुष्पिताग्रावृत्तम्॥ १५॥

अङ्गुलीयकप्रदानानुरूपप्रतिदानञ्चिन्तयन्ती सीता आह—किन्नु खलु करिष्यामीति॥ अनेन सीतावचनेन प्रतिदाने चूडामणिप्रदानस्य बीजभूता चिन्ताऽभिव्यज्यते।

अथ मारुतिरङ्गुलीयकसंस्पर्शेन विरहवेदनाया अल्पीयस्त्वं द्योतयति—शरपाण्डुरेति॥ शरपाण्डुरगात्रेषु चरतः अङ्गुलीयस्य श्यामाम् पुलकिताम् पदवीम् अपि अहम् पश्यामि इत्यन्वयः। (अस्या देव्याः) शरपाण्डुरगात्रेषु=शरवत् पाण्डुशरीरेषु, ईषत् पीतसम्वलितशुक्लवर्णस्य पाण्डुरसंज्ञा। शरस्तु लोके 'सरपत' इत्यर्थे प्रसिद्धः। चरतः=गच्छतः, परिहितस्येत्यर्थः। अङ्गुलीयस्य=मुद्रिकायाः,

---

विमर्श—राम की अंगुली से बिछुड़ कर भी यह अंगूठी आपके पास पहुँच कर आपके विरह की आग को शान्त कर रही है। प्रियतम के सन्देश अथवा किसी प्रिय वस्तु की प्राप्ति से विरही का दुःखभार हल्का हो जाता है। यह अंगूठी सम्प्रति आपके वेदनाधिक्य को कम करने में सहायक सिद्ध हुई है अतः इसकी अवस्था शोचनीय नहीं है।

सीता—तो मैं क्या करूँगी (अर्थात् अंगूठी के बदले मैं क्या भेजूँगी)

हनूमान्—इनके तो—

सरपत के समान सफेद शरीर में अंगूठी के सम्पर्क से पुलकित श्याम-चिह्न को देखता हूँ॥ १६॥

विमर्श—राम के विरह में सीता पाण्डु-वर्ण की हो गयी थी। सम्प्रति जब उन्होंने अंगूठी को धारण किया तो उनकी विरह-वेदना कम हो गयी अतएव श्वेतिमा की जगह श्यामता आ गयी। साथ ही हर्षातिरेक से शरीर में रोमाञ्च भी हो आया। इससे हनूमान् सीता की विरह-वेदना की न्यूनता का अनुमान करते हैं।

सीता—वाचइस्सं दाव दाणिं णामक्खरं। (उत्तानहस्तांवलोकयति) (वाचयिष्यामि तावदिदानीं नामाक्षरम्।)

हनूमान्—

अरुणे परिशीर्णमञ्जलौ निपतन्तो नयनोदबिन्दवः।

शकलीकृतमौक्तिकत्विषो हिमलेशा इव पङ्कजोदरे॥ १७॥

सीता—भद्द! तव दंसणमत्तेण अहिमुहं देवदं ति मए विण्णादं। अवि अ अङ्गुलीअप्पदाणेण आलिंगिदा विअ अज्जउत्तं। दाणिं उण वअणस्सवणे सकुदूहलं मे हिअअं। ण उण अहिण्णाणत्थं अवरं। अज्ज-उत्तस्स अहिण्णाणवअणं मे भणेहि। (भद्र! तव दर्शनमात्रेणाभिमुखं दैव-

---

श्यामाम्=कृष्णवर्णाम्, पुलकिताम्=रोमाञ्चिताम्, पदवीम्=स्थानम्, अहम्=हनूमान्, पश्यामि=अवलोकयामि। अङ्गुलीयकसंस्पर्शेन सीताया विरहवेदनाया अल्पत्वात् पाण्डुरस्यापगमेन श्यामत्वम्, आनन्देन रोमाञ्चितत्वञ्च जातम्। अनुष्टुब्वृत्तम्॥ १६॥

अरुण इति॥ अरुणे अञ्जलौ परिशीर्णम् निपतन्तः नयनोदबिन्दवः पङ्कजोदरे शकलीकृतमौक्तिकत्विषः हिमलेशाः इव (प्रतिभान्ति) इत्यन्वयः। अरुणे=रक्तवर्णे, अञ्जलौ=करपुटे, परिशीर्णम्=परितः शीर्णम्=विस्तृतं यथा भवति तथा, निप-तन्तः=स्रवन्तः, नयनोदबिन्दवः=अश्रुकणाः, (अरुणे) पङ्कजोदरे=कमलोदरे, शकलीकृतमौक्तिकत्विषः=शकलीकृतानाम्=खण्डशो विभक्तानाम्, मौक्तिकानाम्=मुक्तानाम् त्विडिव त्विट्=कान्तिः येषाम् ते, खण्डीकृतमुक्ताकान्तयः, हिमलेशा इव=तुषारबिन्दव इव, (प्रतिभान्ति)। देव्या रक्तकराञ्जलिपुटे स्रवन्तो लोचनजललवा रक्तकमलोदरे खण्डशो विभक्तमौक्तिककान्तिमतां हिमकणानां शोभां धारयन्तीति भावः। सुन्दरी वृत्तम्॥ पूर्णोपमाऽलङ्कारः॥ १७॥

अभिमुखदैवतमिति॥ देवानामाभिमुख्यमित्यर्थः। अभिज्ञानम्=अभिज्ञायते

सीता—(दोनों हाथों को उलट कर देखती है) अब इस अंगूठी में अंकित नाम को पढ़ती हूँ।

हनूमान्—लाल हथेली पर हर्ष से गिरते हुए नयन के जलकण कमल के मध्य टुकड़ों में बँटे हुए मुक्तामणि की शोभा को धारण करने वाले ओसबिन्दु के समान लग रहे हैं॥ १७॥

सीता—सौम्य! तुम्हारे दर्शन मात्र से मेरा भाग्य अनुकूल है, ऐसा मुझे ज्ञात हो गया। और अंगूठी की प्राप्ति से तो मैंने आर्यपुत्र का मानो आलिङ्गन किया है अब पुनः

तमिति मया विज्ञातम्। अपि चाङ्गुलीयप्रदानेन आलिङ्गितेवार्यपुत्रम्। इदानीं पुनर्वचनश्रवणे सकुतूहलं मे हृदयम्। न पुनरभिज्ञानार्थमपरम्। आर्यपुत्रस्याभिज्ञानवचनं मे भण।)

हनूमान्—अत्रभवत्या वञ्चनाभूमौ वर्तमानाया अभिज्ञानदृढीकरणार्थमिदमप्याह।

सीता—किं णु खु। अवहिदम्हि। (किं नु खलु। अवहितास्मि।)

हनूमान्—शृणोतु स्वामिनी।

आयातं मामपरिचितया वेलया मन्दिरं ते
चोरो दण्ड्यस्त्वमिति मधुरं व्याहरन्त्या भवत्या।
मन्दे दीपे मधुलवमुचां मालया मल्लिकानां
बद्धं चेतो दृढतरमिदं बाहुबन्धच्छलेन ॥ १८ ॥

अनेनेति करणव्युत्पत्त्या असाधरणं चिह्नम् अथवा तज्जन्यं ज्ञानम् बोध्यम्।

वञ्चनाभूमौ इति ॥ वञ्चना=माया, तस्याः भूमिः=स्थानम्, लङ्केति अभिप्रेतार्थः, तस्याम्=कपटप्रयोगकुशलानां रजनीचराणां निवासभूतायां लङ्कायामित्यर्थः।

अथ मारुतिः सीतां प्रति रामसन्दिष्टमभिज्ञानवचनं श्रावयति—आयातमिति ॥ अपरिचितवेलया दीपे मन्दे (सति) ते मन्दिरम् आयातम् माम् (प्रति) 'त्वम् चोरो दण्डयः' इति मधुरम् व्याहरन्त्या भवत्या मधुलवमुचाम् मल्लिकानाम् मालया बाहुबन्धच्छलेन इदम् चेतः दृढतरम् बद्धम् इत्यन्वयः। अपरिचितवेलया=अज्ञातेन कालेन, दीपे मन्दे=प्रदीपे मन्दीभूते, (सति) ते भवत्याः,

---

आर्यपुत्र के वचन को सुनने की मेरे हृदय में उत्सुकता है। फिर किसी दूसरी पहचान की आवश्यकता नहीं। आर्यपुत्र के पहचान-परक वचन ही मुझे कहो।

हनूमान्—छल-कपट से युक्त इस स्थान में विद्यमान आपको पहचान की दृढ़ता के लिये (राम ने) यह भी कहा है—

सीता—मैं सावधान हूँ। क्या कहा है?

हनूमान्—सुनिये स्वामिनी।

अनजान समय में दीप के मन्द पड़ जाने पर तुम्हारे शयनगृह में मेरे आने पर 'तुम चोर हो अतएव दण्डनीय हो।" इस प्रकार की मधु-मीठी बोली बोलती हुई तुमने चूते हुए मधु के कणों से युक्त मल्लिका-पुष्प की माला से भुजाबन्धन के व्याज से मेरे इस हृदय को दृढ़तापूर्वक बांध लिया था ॥ १८ ॥

सीता—(सहर्षमात्मगतम्) दाणिं आसालदे ! पसवं बंधेहि । तुमं दाव मारुइणा अमिदेण सिञ्चीअसि । हिअअ ! तुवं वि लद्धप्पवेसमग्गोसि अज्जउत्तेण । जीविअ ! तुवं वि जमलोअस्स अद्धपहे णिवुत्तोसि । (प्रकाशम्) पवणतणअ ! तुज्झ किं वि भणिदुकामम्हि । भणिदव्वं पुण ण जाणामि । अत्थि तव गुरुमारुओ लोअस्स पाणो, मम खु दाव तुवं पाणो संवुत्तो । (इदानीमाशालते ! प्रसवं बध्नीहि । त्वं तावत् मारुतिना अमृतेन सिच्यसे । हृदय ! त्वमपि लब्धप्रवेशमार्गमस्यार्यपुत्रेण । जीवित ! त्वमपि यमलोकस्यार्धपथे निवृत्तमसि । पवनतनय ! तव किमपि भणितुकामास्मि । भणितव्यं पुनर्न जानामि । अस्ति तव गुरुर्मारुतो लोकस्य प्राणः । मम खलु तावत्त्वं प्राणः संवृत्तः ।)

मन्दिरम् = शयनगृहम् , आयातम् = समागतम् , माम् = दयितं रामम् , (प्रति) नित्यं परिचितो यः शय्यागमनकालस्तमतीत्य समायातं मामित्यर्थः । त्वम् = भवान् (यतः) चोरः = तस्करः (अतएव) दण्डयः = दण्डनीयः, इति = इत्थम्, मधुरं व्याहरन्त्या = मधुरं कथयन्त्या, भवत्या = त्वया, मधुलवमुचाम् = मधुकणस्रवन्तीनाम् , मल्लिकानाम् = मल्लिकाख्यपुष्पविशेषाणाम् (लोके 'मोतिया' इति) मालया = स्रजा, माल्येनेत्यर्थः, बाहुबन्धच्छलेन = भुजबन्धव्याजेन, इदम् चेतः = मदीयं चित्तम्, दृढतरम् = सुदृढम् , बद्धम् । अथवा दृढतरमपि इदञ्चेतः बद्धमिति योज्यम् । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् । अपह्नुतिरलङ्कारः ॥ १८ ॥

अथानन्यवेद्याभिज्ञानवचनमाकर्ण्यात्यन्तं विश्वासमुपगता सीता सहर्षमाह—इदानीमिति ॥ प्रसवम् = पुष्पम् । लोकस्य प्राणः = जगतः प्राणभूतः तदाज्ञाम् = सुग्रीवस्यादेशम् । देवस्य शेषम् इव = देवेन अलङ्कृतम् स्रगिव । प्रक्रान्तम् = निर्गतम् ।

सीता—(प्रसन्नता से मन ही मन) आशालतिके ! इस समय तुम फूल धारण करो । तुम तो पवनपुत्ररूप अमृत से सींची जा रही हो । हृदय ! तुम भी आर्यपुत्र के द्वारा प्रवेशमार्ग को प्राप्त कर रहे हो । प्राण ! तुम भी यमलोक के आधे रास्ते से लौट चुके हो । (प्रकट) पवननन्दन ! मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ किन्तु क्या कहना है यह नहीं जानती । तुम्हारे पिता पवन संसार के प्राण हैं । तुम तो इस समय मेरे जीवन हो गये हो ।

हनूमान्—दक्षा खलु देवी भृत्यसान्त्वने । (अधोमुखस्तिष्ठति)

सीता—पभञ्जणसूणो ! कहेहि कहेहि । अच्चरिअं खु एदं । केण दाणिं उवाएण एत्थ आअदो लंघिदो वा अअं महासमुद्दो । (प्रभञ्जनसूनो ! कथय कथय । आश्चर्यं खल्वेतत् । केनेदानीमुपायेनात्रागतो लङ्घितो वायं महासमुद्रः ।)

हनूमान्—ततस्तदाज्ञां देवस्य शेषमिव शिरसा प्रतिगृह्य प्रक्रान्तमिमां दिशं वानरसैन्यमासीत् ।

सीता—तदो तदो (ततस्ततः ।)

हनूमान्—ततः खलु,

मेघावृतासु जगतीधरकन्दरासु
रोधोवनेषु सरितां सरसद्रुमेषु ।

अथ हनूमान् वानरसैन्यस्य सीतान्वेषणप्रकारं वर्णयति—मेघावृतासु इति ॥ मेघावृतासु जगतीधरकन्दरासु सरिताम् सरसद्रुमेषु रोधोवनेषु जलनिधेः वेलातटे अपि (सञ्चरद्भिः तैः) कपीन्द्रैः ते अन्वेषणाय विनिद्रम् समयः गमितः इत्यन्वयः । मेघावृतासु = मेघैः = घनैः, आवृतासु = आच्छादितासु, जगतीधर- कन्दरासु = पर्वतगुहासु, सरिताम् = नदीनाम्, सरसद्रुमेषु = सघनवृक्षेषु रोधो-

---

हनूमान्—देवी अनुचर को सान्त्वना देने में निपुण हैं। (मुँह नीचे कर लेते हैं)

सीता—पवनतनय ! कहो, कहो, यह तो आश्चर्य है। किस प्रकार तुम यहां आए; अथवा किस भांति समुद्र को पार किया ?

हनूमान्—उसके बाद स्वामी सुग्रीव की उस आज्ञा को देवता द्वारा अलंकृत माला की भांति शिरोधार्य कर वानरों की सेना इस दिशा को चल पड़ी ।

सीता—उसके बाद !

हनूमान्—उसके बाद तो—

मेघों से आच्छन्न पर्वत की कन्दराओं में, नदियों के तटवर्ती सरस वृक्षों से युक्त जंगलों

वेलातटे जलनिधेरपि ते विनिद्र-
मन्वेषणाय समयो गमितः कपीन्द्रैः ॥ १९ ॥

सीता—तदो तदो। (ततस्ततः।)

हनूमान्—ततोऽतिक्रमणात्समयस्य सर्वे वानरपतयः प्रायोपवेशनमतिं चक्रुः।

सीता—हद्धि, तदो तदो। (हा ! धिक्, ततस्ततः।)

हनूमान्—ततो हतायुषो जटायुषः सहजः सम्पातिर्नाम गृध्रराजः स्वरोपलम्भेन तां प्रायोपवेशनभूमिमभिगतवानासीत्।

सीता—तदो तदो। (ततस्ततः।)

हनूमान्—ततः स खलु स्वामिनि ! तवेमामवस्थां सहोषित इव व्यक्तमस्मान् न्यवेदयत्।

वनेषु=तीरवर्तिविपिनेषु, जलनिधेः=समुद्रस्य, वेलातटे=सीमातीरप्रदेशे अपि, (सञ्चरद्भिः तैः) कपीन्द्रैः=वानरनायकैः, ते=भवत्याः, अन्वेषणाय=गवेषणाय, विनिद्रम्=निद्रारहितं यथास्यात्तथा भूत्वा, समयः=कालः, गमितः= अतिवाहितः। सर्वे वानरेश्वराः सर्वत्र गिरिनदीतीरवनवेलातटेषु त्वद्गवेषणपरायणा आसन्नित्यर्थः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १९ ॥

सहजः=सहोदरः।

सहोषितः=यो नित्यं सह वसति स सहोषितः।

में, और समुद के किनारे पर भी निद्रारहित होकर आपकी खोज के लिये वानरों की सेना ने समय विताया ॥ १९ ॥

सीता—उसके वाद।

हनूमान्—उसके वाद समय वीतने से सभी वानरनायक विश्राम करने का विचार किए।

सीता—हाय ! कष्ट। उसके वाद ?

हनूमान्—उसके वाद दिवंगत जटायु के भ्राता सम्पाति नामक गृध्रराज आवाज सुनकर उस विश्रामस्थान की ओर आ गये।

सीता—उसके वाद ?

हनूमान्—स्वामिनि ! उसके वाद उन्होंने आपकी इस अवस्था को साथ में रहने वाले की भांति स्पष्ट रूप से हम लोगों को कहा।

सीता—अहो ! उपआरपक्खा सा जादी । पुव्वं वि तस्स भादा मम कारणादो उज्झिदवन्तो पाणाणि । तदो तदो । (अहो ! उपकारपक्षा सा जातिः । पूर्वमपि तस्य भ्राता मम कारणादुज्झितवान् प्राणान् । ततस्ततः ।)

हनूमान्—ततस्तदुपदेशात् लङ्घितो महार्णवः । प्राप्तमिदमुद्यानम् ।

सीता—मम सोअसाअरो खु तुए लंघिदो । वसणकण्णधार ! मारुदसूणो! कहेहि इमस्स वसणस्स परिअवसाणकालो कदमो । (मम शोकसागरः खलु त्वया लङ्घितः । व्यसनकर्णधार ! मारुतसूनो ! कथयास्य व्यसनस्य पर्यवसानकालः कतमः ।)

हनूमान्—तवास्ति भर्तृसन्देशः ।

सीता—अत्थि मम संदेसो । अणुग्गहिदम्हि । (अस्ति मम सन्देशः । अनुगृहीतास्मि ।)

हनूमान्—अयं भर्तृसन्देशः ।

व्यसनकर्णधार इति ॥ अत्र पवननन्दनस्य कर्णधारत्वारोपेण व्यसनस्य समुद्रत्वं गम्यते । व्यसनसमुद्रस्य कर्णधारः=नाविकः । यथा कश्चिन्नाविकः कमपि समुद्रादुद्धरति तथा त्वमपि मां व्यसनादुद्धर्तुं शक्तोऽसि । पर्यवसानकालः=समाप्तिसमयः । कदा मे व्यसनं दूरं यास्यतीति प्रश्नाशयः ।

अथ मारुतिः सीतायै रामसन्देशं निवेदयति—तवास्ति भर्तृसंदेश इति ॥

सीता—अहो ! वह जाति उपकार करने वाली है। पहले भी उसका भाई मेरे लिए अपने प्राणों को विसर्जित कर चुका है । उसके वाद ।

हनूमान्—उसके वाद उन्हीं के उपदेश से मैंने समुद्र को पार किया और इस वाटिका को प्राप्त किया है ।

सीता—तुमने मेरे शोक के सागर को पार किया। हे दुःख के कर्णधार ! हे पवनतनय ! कहो इस दुःख का अन्त कब होगा ?

हनूमान्—आपके लिए स्वामी का संदेश है ।

सीता—मेरे लिए सन्देश है ? मैं अनुगृहीत हूँ ।

हनूमान्—स्वामी का यह सन्देश है—

सदसि नमयता धनुर्मया त्वं
गुरुजघने ! गुरुमन्दिरादवाप्ता ।
दशवदननिरोधनादपि त्वां
युधि विनमय्य शरासनं हरामि ॥ २० ॥ इति ।

सीता—रक्खसस्स पाणाणि पुढमं गेह्निअ पच्चा मं हरिस्सदि खु अज्जउत्तो । जइ एव्वं, किं दाणिं विलम्बसि । गच्छ सिग्घं । गेह्न इमं चूडामणिं इसीणं अणुग्गहं । अज्जउत्तो वि दाव इमं पेक्खिअ अणुपेक्खिदव्वो भवे । (चूडामणिं प्रयच्छति) (राक्षसस्य प्राणान् प्रथमं गृहीत्वा पश्चान्मां हरिष्यति खल्वार्यपुत्रः । यद्येवम् , किमिदानीं विलम्बसे । गच्छ शीघ्रम् ।

सन्देशमेव रामशब्देन निवेदयति—सदसि नमयतेति ॥ हे गुरुजघने ! (यथा पूर्वम्) त्वम् सदसि धनुः नमयता मया गुरुमन्दिरात् अवाप्ता (तथा साम्प्रतं) दशवदननिरोधात् अपि युधि शरासनम् , विनमय्य त्वाम् हरामि इत्यन्वयः । हे गुरुजघने = हे पृथुलजघने !, (यथा पूर्वम्) त्वम् सदसि = सभायाम् , धनुर्यज्ञे इति यावत् । धनुः = त्र्यम्बकशरासनम् , नमयता = नम्रीकुर्वता, मया = रामेण, गुरुमन्दिरात् = जनकभवनात् , अवाप्ता = प्राप्ता, (तथा साम्प्रतमपि) दशवदननिरोधात् = रावणनिरोधगृहात् अपि, युधि = संग्रामे, शरासनम् = कार्मुकम् , विनमय्य = नम्रीकृत्य त्वाम् = सीताम् , हरामि = उद्धरामि, शीघ्रमानेष्यामीति यावत् । सर्वथा त्वद्ग्रहणे धनुर्नमनमेव कारणमिति भावः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥२०॥

किमिदानीं विलम्बसे = साम्प्रतं त्वया विलम्बो न कार्यः । आर्यपुत्रोऽपि तावदिममिति ॥ यथा मुद्रिकादानेनार्यपुत्रस्य मय्युपेक्षा नास्ति इति मया

हे पृथुल जघनवाली सीते ! सभा में धनुष को झुकाते हुए मैंने तुम्हारे पिता के घर से तुम्हें प्राप्त किया था । अब युद्ध में धनुष को झुकाकर (अर्थात् चढ़ाकर) तुम्हें रावण के बन्धन से मुक्त करूँगा ॥ ५० ॥

विमर्श—धनुषयज्ञ में राम ने सीता का पाणिग्रहण शंकर भगवान् के धनुष को तोड़कर किया था । इस समय रावण की वन्दिनी के रूप में सीता का उद्धार भी युद्ध में धनुष को चढ़ाकर ही करने का सन्देश देते हैं । सीता-ग्रहण में सर्वथा राम का पौरुष ही प्रमाण है ।

सीता—पहले राक्षसों के प्राणों का हरण कर फिर आर्यपुत्र हमारा उद्धार करेंगे । यदि ऐसा है तो अब देर क्यों करते हो ? शीघ्र प्रस्थान करो । ऋषियों के अनुग्रह स्वरूप

गृहाणेमं चूडामणिमृषीणामनुग्रहम्। आर्यपुत्रोऽपि तावदिमं प्रेक्ष्यानुपेक्षितव्यो भवेत्।)

हनूमान्—(आत्मगतम्) अहो! प्राप्तज्ञता दाक्षिण्यं च देव्याः। (प्रकाशम्) प्रसीदतु स्वामिनी। (प्रतिगृह्णाति)

सीता—अज्जउत्तो जह सोअपरवसो ण होइ तह मे उत्तंतं तस्स भणेहि। (आर्यपुत्रो यथा शोकपरवशो न भवति तथा मे वृत्तान्तं तस्य भण।)

हनूमान्—अनुगृहीतोऽस्मि।

सीता—गच्छ दाणि तुवं। अहं वि पुरो विअ सिंसपासंसिदा भवित्र तुम्हाणं वुत्तंतं पडिपालेमि। (गच्छेदानीं त्वम्। अहमपि पुरोवत् शिंशपासंश्रिता भूत्वा युष्माकं वृत्तान्तं प्रतिपालयामि।)

हनूमान्—यदाज्ञापयति स्वामिनी।

रक्षोवधाद्विरतकर्म विसृज्य चापं

ज्ञातन्तथा चूडामणिप्रतिदानेनास्या मय्युपेक्षा नास्ति, सर्वथा मत्परा एवाऽस्ति इति आर्यपुत्रस्यापि ज्ञातं भविष्यति इत्याशयः।

प्राप्तज्ञता = उचितज्ञता। दाक्षिण्यम् = परचित्तानुवर्तित्वम्।

अथ सीता हनूमन्तं शीघ्रं गमयन्ती आह—त्वमपि गच्छेति॥

अथ पवननन्दनश्शीघ्रभाविप्रियसंयोगवचनामृतेन देवीमाप्याययति—रक्षोवधादिति॥ हे देवि! रक्षोवधात् विरतकर्म चापम् विसृज्य गोधाङ्गुलित्रपदवीषु धृत-

---

इस चूड़ामणि को लो। इसे देखकर आर्यपुत्र को भी कुछ सान्त्वना मिलेगी। (चूड़ामणि देती हैं)

हनूमान्—(मन ही मन) देवी का समुचित ज्ञान और अनुकूलता विलक्षण है। (प्रकट) स्वामिनी प्रसन्न हों। (चूड़ामणि लेते हैं)

सीता—मेरे समाचार को इस प्रकार कहना जिससे आर्यपुत्र शोक से विह्वल न हों।

हनूमान्—अनुगृहीत हूँ।

सीता—अब तुम जाओ। मैं भी पहले की तरह सीसम वृक्ष का आश्रय लेकर तुम लोगों के समाचार की प्रतीक्षा करती हूँ।

हनूमान्—स्वामिनी की जो आज्ञा।

देवि! राक्षसों के विनाश से शून्य कर्म वाले धनुष को रख कर डोरी को खींचने के

गोधाङ्गुलित्रपदवीषु धृतव्रणेन ।
रेखातपत्रकलशाङ्कितलेन रामो
वेणीं करेण तव मोक्ष्यति देवि ! देवः ॥ २१ ॥

सीता—अविग्घं ते होदु । (अविघ्नं ते भवतु ।)

(निष्क्रान्तौ)

इति शक्तिभद्रविरचिते चूडामणिनाटके षष्ठोऽङ्कः ।

व्रणेन रेखातपत्रकलशाङ्कितलेन करेण देवः रामः तव वेणीम् मोचयति इत्यन्वयः । हे देवि ! हे भगवति ! रक्षोवधात्=रावणकुलहननात् (हेतोः) विरतकर्म= विरतम्=समाप्तम् , कर्म=व्यापारः यस्य, तत् तथोक्तम् , चापम्=शरासनम् , विसृज्य=परित्यज्य, गोधाङ्गुलित्रपदवीषु=गोधा=करबन्धनार्थो गुणः, अङ्गुलित्रम्=अङ्गुलिबन्धनार्थः गुणः तयोः पदवीषु=स्थानेषु, धृतव्रणेन-धृतव्रणकिणकणिकेन, रेखातपत्रकलशाङ्कितलेन=रेखारूपेण आतपत्रेण=छत्रेण, कलशेन=घटेन च अङ्कि=चिन्हसहितम् , तलम्=अधोभागः, यस्य तथाभूतेन करेण=हस्तेन, देवो रामः=स्वामी रामभद्रः, तव=भवत्याः, वेणीम्=जटीभूतकेशकलापम् , मोचयति=उन्मुक्तं करिष्यति । विरहदशायां वेणीरूपेण संयतस्तवकेशकलापः संयोगदशायां दयितकरतलेन पुनरपि विन्यस्तो भविष्यति, अतएवाचिरभाविदयितसंगममनुध्यायानतिशोका भूत्वाऽस्मदागमनं प्रतिपालयेति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २१ ॥

इत्याश्चर्यचूडामणे 'रमा' टीकायां षष्ठोऽङ्कः ।

कारण घाव के चिह्न से युक्त तथा छत्र और कलश से अङ्कित करतल वाले हाथों से स्वामी राम आपके इस वेणीबद्ध केशकलाप को खोलेंगे ॥ २१ ॥

सीता – तुम्हारा विघ्न दूर हो । (दोनों चले जाते हैं)

षष्ठ अङ्क समाप्त ।

सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विद्याधरः प्रियया सह)

विद्याधरः—सौदामिनि ! अद्यापि तावद्विद्यादैवतमाराधयता मया नोपलक्षितो महेन्द्रसेवाकालः । तत् खिन्नापि मामनुगच्छ गमनत्वरया कालं नातिपातयावः ।

सौदामिनी—अज्ज ! आअदम्हि । (आर्य ! आगतास्मि ।)

विद्याधरः—सौदामिनि ! एहि ।

यस्य प्रेरणया विचिन्त्य निखिलं वेदान्तशास्त्रं मया,
प्राप्ता ज्ञप्तिकला निजात्मविषया चित्तस्य शान्तिप्रदा ।
तस्य ब्रह्मपदं गतस्य नितरां पूज्यस्य पादाम्बुजं,
उमानन्दगुरोः सदा मम नतञ्चेतो हि भृङ्गायते ॥ १ ॥

उपाध्यायपदं प्राप्तं सर्वशास्त्रविशारदम् ।
वासुदेवाग्रजं वन्दे बलदेवाभिधं गुरुम् ॥ २ ॥

दूराध्वानं वधञ्चापि रङ्गमञ्चे न दर्शयेदिति वचनाद् विष्कम्भकमाश्रित्य रावणवधं कथयितुं विद्याधरमिथुनस्य प्रवेशः । सुमेरुगिरिनिवासी कश्चन विद्याधरः स्वकान्तया सह देवराजपरिचर्यार्थञ्जिगमिषुस्तां प्रत्याह—सौदामिनि ! इति ॥ अद्यापि तावत्=अस्मिन् दिवसे एतावन्तं कालम् । नोपलक्षितः=न ज्ञातः । इदानीमेव स्मृत इत्यर्थः । खिन्नापि=देवतापूजार्थं व्रतक्लिष्टाऽपि । कालं नातिपातयावः=समयमनतिवाह्य, कालक्षेपमकृत्वेति यावत् । यथाकालं सेविष्यावहे ।

(उसके बाद अपनी स्त्री के साथ विद्याधर प्रवेश करता है)

विद्याधर—सौदामिनि ! आज भी विद्यादेवता (जिनकी कृपा से विद्याधरत्व को प्राप्त किया) की पूजा करता हुआ मैं इन्द्रदेव की सेवा का समय नहीं जान सका । इसलिए व्रत की उपासना के कारण खिन्न होने पर भी तुम मेरे पीछे जल्दी-जल्दी आओ । हम लोग समय नहीं व्यतीत करेंगे । (अर्थात् शीघ्र पहुँच कर यथासमय इन्द्र की सेवा में तत्पर हो जायँगे)

सौदामिनी—आर्य ! आ गयी हूँ ।

विद्याधर—सौदामिनि ! आओ ।

साधु संयमय मूर्धजन्मना-
मुच्छ्वसत्कुसुमदाम बन्धनम् ।
कुण्डलांशुरचितेन्द्रकार्मुकं
कार्मुकभ्रु ! रचय स्तनांशुकम् ॥ १ ॥

सौदामिनी—अज्ज ! एव्वं दाव करिस्सम् । (आर्य ! एवं तावत् करिष्ये ।)

(उभावाकाशयानं निरूपयतः)

साध्विति ॥ हे कार्मुकभ्रु ! (शीघ्रगमनाय) मूर्धजन्मनाम् उच्छ्वसत् कुसुमदाम बन्धनम् साधु संयमय । कुण्डलांशुरचितेन्द्रकार्मुकं स्तनांशुकम् रचय इत्यन्वयः । हे कार्मुकभ्रु = कार्मुकम् = धनुः, तदिव भ्रूः यस्याः तत्सम्बोधने कार्मुकभ्रु ! (शीघ्रगमनाय) मूर्धजन्मनाम् = केशानाम् , उच्छ्वसन्ति = परिमलोद्गारीणि कुसुमानि = पुष्पाणि, दाम = माला, च यत्र तत्तथोक्तम् बन्धनम् = केशपाशम् , संयमय = निबद्धं कुरु । कुण्डलांशुरचितेन्द्रकार्मुकम् = कुण्डलयोः = कर्णाभूषणयोः, अंशुभिः = किरणैः, रचितम् = निर्मितम् इन्द्रस्य = वासवस्य, कार्मुकम् = धनुः यत्र तत्तथोक्तम् स्तनांशुकम् = कुचप्रदेशस्थवस्त्रम् , रचय = स्तनयोः संयमय इत्यर्थः । अत्र कुण्डलांशुरचितेन्द्रकार्मुकमिति पदं स्तनांशुकस्य विशेषणम् । अत एवात्र न समाप्तपुनरात्ततादोषप्रसङ्गः । यत्तु पदमिदं केशबन्धनस्य विशेषणं कृतम्, तत्तु केशपाशस्य मेघसादृश्यं स्वीकृत्य तथाकृतम् । तत्र कुण्डलांशुभिः इन्द्रचापरवसंगतिः कथमपि कार्या । किन्तु अत्र समाप्तपुनरात्ततादोषः कथं परिहरणीय इति चिन्तनीयम् । रथोद्धतावृत्तम् ॥ १ ॥

हे धनुष के समान भौंहों वाली प्रिये ! मकरन्द को चुआने वाले फूलों की माला से युक्त अपने केशकलाप को संभाल लो । कुण्डल की किरण-छटा से रचित इन्द्रधनुष की शोभा धारण करने वाले कुचप्रदेश के रेशमी वस्त्र को भी कस कर समेट लो ॥ १ ॥

विमर्श—लहराती हुई केशराशि और फहराती हुई स्तनप्रदेश की साड़ी शीघ्र चलने में बाधा उत्पन्न करेगी । अतः उन दोनों को व्यवस्थित करके शीघ्रता से मेरे साथ आओ ॥

सौदामिनी—आर्य ! ऐसा ही करूँगी । (दोनों आकाश-मार्ग में चलने का अभिनय करते हैं ।)

विद्याधरः—सौदामिनि ! पश्य पश्य—

द्रुतमञ्जननीलमावयोः खं
शिखरादुत्पततोः शिलोच्चयस्य ।
अनुपूर्विकया विकारजातं
ग्रसमानेव वसुन्धरा विभाति ॥ २ ॥

सौदामिनी—अज्ज ! कुलपव्वदा दाणिं संसइदा संवुत्ता । (आर्य ! कुलपर्वताः इदानीं संशयिताः संवृताः ।)

विद्याधरः—अहो नु खलु सुभगमस्माकमध्वगमनम् । एकतः प्रिया-

द्रुतमिति ॥ शिलोच्चयस्य शिखरात् द्रुतम् अञ्जननीलम् खम् उत्पततोः आवयोः अनुपूर्विकया वसुन्धरा विकारजातम् ग्रस्माना इव विभाति इत्यन्वयः । शिलोच्चयस्य = पर्वतस्य, शिखरात् = सानोः, उपरिभागादिति यावत् । द्रुतम् = शीघ्रम्, अञ्जननीलम् = अञ्जनवत्कृष्णवर्णम् , खम् = आकाशम् , उत्पततोः = ऊर्ध्वं गच्छतोः, आवयोः=विद्याधरयोः, अनुपूर्विकया=उत्पतनक्रमानुसारेण वसुन्धरा= वसुधा, विकारजातम् = स्वविकाराणाम् वृक्षादीनाम् समूहम् , ग्रसमाना इव = निगरणं कुर्वती इव, विभाति = प्रतिभाति । पर्वतशिखरादाकाशं गच्छतोरावयोर्भू- मण्डलस्थवस्तूनि पृथिव्यां विलीयमानानि इव प्रतिभान्ति 'इति भावः । काल- भारिणी वृत्तम् । क्रियोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ॥ २ ॥

कुलपर्वताः = श्रेष्ठभूधराः, संशयिताः = अस्तित्वनास्तित्वसंशयगोचराः सम्वृत्ताः ।

अध्वगमनम् = मार्गगमनम् , सुभगम् = शोभनम् , सुखकरमिति यावत् ।

विद्याधर—सौदामिनि ! देखो, देखो—

पर्वत के शिखर से काजल के समान नीले आकाश में हम दोनों के तेजी से उड़ने से क्रम से पृथिवी अपने विकार वृक्ष आदि को मानो निगल रही है ॥ २ ॥

विमर्श—पर्वत के उन्नत शिखर से आकाश की ओर जाने वालों को पृथिवी पर की सभी चीजें उसी में विलीन होती दिखाई पड़ती हैं । कवि ने इसी चित्र के माध्यम से यह उत्प्रेक्षा की है ।

सौदामिनी—आर्य ! कुलपर्वत इस समय संशय में पड़ गये हैं ।

विद्याधर—अहो ! हम लोगों की मार्गयात्रा तो सुखप्रद है । एक ओर प्रियतमा

पयोधरस्पर्शः अन्यतो दिग्वधूपयोधरस्पर्शः ।

विधुतो व्रजामि सुरलोकमारुतै-
मरुतां पथा मरतकोपलत्विषा ।
जलभारसान्द्रमुदरं पयोमुचा-
महमालिखन् वलयवज्रकोटिभिः ॥ ३ ॥

(नेपथ्ये)

आदत्तामग्निरद्यप्रभृति हुतमसन्दूषितं यातुधानै-

प्रियापयोधरस्पर्शः=कान्ताकुचस्पर्शनम्, दिग्वधूपयोधरस्पर्शः = आशावधूकुचघनस्पर्शनम् स्पर्शजन्यानन्दोऽत्र लक्ष्यते। पयोधरशब्दः श्लिष्टः अतएव एकत्र स्तनवाचकः, अपरत्र मेघवाचकः।

विधुतो व्रजामि ॥ पयोमुचाम् जलधरसान्द्रम् उदरम् वलयकोटिभिः आलिखन् अहम् मरतकोपलत्विषा मरुताम् पथा सुरलोकमारुतैः विधुतः व्रजामि इत्यन्वयः । पयोमुचाम्=जलमुचाम् मेघानाम्, जलभारसान्द्रम्= सलिलभारेण घनीभूतम्, उदरम् = मध्यम्, वलयवज्रकोटिभिः = कटककुलिशाग्रभागैः आलिखन् = विलिखन्, रेखां कुर्वन् इत्यर्थः। अहम्= विद्याधरः, मरतकोपलत्विषा=मरतकमणिशोभिना, मरुताम् पथा=वायुमार्गेण, आकाशेनेत्यर्थः । सुरलोकमारुतैः = देवलोकपवनैः, विधुतः = सम्यक् स्पृष्टः, व्रजामि = गच्छामि । पवनपथेन गच्छन्नहममरपुरीसमीरणसुखमनुभवामीति भावः। मञ्जुभाषिणी वृत्तम्। उपमाऽलङ्कारः ॥ ३ ॥

अथ नेपथ्यमाश्रित्य रामविजयं सूचयति—आदत्तामिति ॥ अग्निः अद्यप्रभृति

के कुचप्रदेशका स्पर्शसुख और दूसरी ओर दिशा-वधू के पयोधर (मेघ) का स्पर्शसुख मिलता है।

मरकतमणि की शोभा के समान शोभा वाले वायुवार्ग से देवलोक के पवनों से ठीक से स्पर्श किया हुआ मैं जल के भार से सघन मेघों के उदर (मध्यभाग) को, कटककुलिश की नोंक से लिखता चलता हूँ ॥ ३ ॥

(नेपथ्य में)

आज से अग्निदेव राक्षसों के दोष से रहित हवि को ग्रहण करें। श्रेष्ठ सप्तर्षि आकाशगंगा में स्नान कर सायंकालिक मंत्रों का जप करें।

राप्लुत्याकाशगङ्गापयसि मुनिवृषाः सप्त सन्ध्यां जपन्तु ।
भानोर्वाहा भजेरन्नचकितमृजुना वर्त्मना मन्दराद्रिं
साध्व्यश्चारित्रभङ्गाज्जहतु भयमपास्तार्गला द्यौरपि स्यात् ॥४॥

विद्याधरः—अये ! जगद्घोषणेव । निहतेन रावणेन भवितव्यम् ।

यातुधानैः असंदूषितम् हुतम् आदत्ताम्, सप्तमुनिवृषाः आकाशगंगापयसि आप्लुत्य सन्ध्याम् जपन्तु, भानोः वाहाः ऋजुना वर्त्मना अचकितम् मन्दराद्रिम् भजेरन्, साध्व्यः चारित्रभङ्गात् भयम् जहतु, द्यौरपि अपास्तार्गला स्यात् इत्यन्वयः । अग्निः = कृशानुः, अद्यप्रभृति = अद्यारभ्य, यातुधानैः = रक्षोभिः, असंदूषितम् = अकलुषितम् , हुतम् = हविः, आदत्ताम् = गृहणातु, अतः पूर्वं हुतस्य यातुधानदूषितत्वात् अग्निग्रहणायोग्यत्वमासीत्, इदानीं तु तेषां विनाशेन कर्मानुष्ठानात् हविषोऽग्निग्रहणयोग्यत्वमापतितमितिबोध्यम् । सप्तमुनिवृषाः = सप्तर्षयः, आकाशगंगापयसि = स्वर्गंगाजले, आप्लुत्य = निमज्य सन्ध्याम् = सन्ध्याकालिकजपनीयं मन्त्रम् , जपन्तु = अभ्यसन्तु, भानोः = सूर्यस्य, वाहाः = अश्वाः, ऋजुना वर्त्मना = सरलेन मार्गेण, अचकितम् = भयरहितम् यथा भवति तथा भूत्वा, मन्दराद्रिम् = अस्ताचलम् , भजेरन् = गच्छेयुः (सेवेरन्) साध्व्यः= पतिव्रताः नार्यः, चारित्रभङ्गात् = शीलविनाशात् , भयम् = भीतिम् , जहतु = त्यजन्तु, नारीशीलभञ्जनोद्यतरावणादिविनाशेन नास्ति शीलभङ्गभीतिरधुना कुलवधूनामिति भावः । द्यौः अपि = सुरलोकोऽपि, अपास्तार्गला = अपास्ता = दूरंगता, अर्गला = बन्धनम् यस्याः तथाभूता स्यात् = भवेत् । स्वर्गनिवासप्रतिबन्धकीभूतस्य दशग्रीवस्य वधेन देवाः स्वर्गे स्वच्छन्दं निवसन्तु इति भावः । स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ४ ॥

जगद्घोषणा = जगति = संसारे, घोषणा = उच्चैः शब्दोच्चारणम् , रामाज्ञया कस्यचिदज्ञातजनस्य जगद्वासिविषयं विजयघोषणमित्यर्थः ।

सूर्य के घोड़े विना चकित हुए ही मन्दराचल को सीधे मार्ग से प्राप्त करें । पतिव्रताएँ शीलभङ्ग के भय से मुक्त हों और स्वर्ग भी प्रतिवन्धरहित हो । अर्थात् पूर्वोक्त बातों के प्रतिवन्धक राक्षसों के विनाश से अब सभी सुखपूर्वक अपने-अपने कार्यों में सन्नद्ध हो जाँय ॥ ४ ॥

विद्याधर—अरे, यह तो संसार में घोषणा है । रावण मारा गया होगा ।

सौदामिनी—अहं वि तं एव्व तक्केमि। अदिक्कंदे दिअहे पवुत्ता वत्ता, किदं रामेण रक्खसउलं रावणमत्तावसेसं ति। (अहमपि तदेव तर्कयामि। अतिक्रान्ते दिवसे प्रवृत्ता वार्ता, कृतं रामेण राक्षसकुलं रावणमात्रावशेषमिति।)

विद्याधरः—अद्योद्धृतकण्टकं त्रैलोक्यमासीत्।

सौदामिनी—अज्ज उच्छसिदाणि पदिव्वदाणं हिअआणि। (अद्य उच्छ्वसितानि पतिव्रतानां हृदयानि।)

विद्याधरः—साम्प्रतम् अभिलषितसिद्धिसम्फुल्लाक्षं सहस्राक्षं सभाजयिष्यावः।

(निष्क्रान्तौ)

मिश्रविष्कम्भः।

उद्धृतकण्टकम् = निरुपद्रवम्। जगत्कण्टकस्य रावणस्य विनाशेन भूमण्डलं विघ्नरहितं जातमित्यर्थः।

अभिलषितसिद्धिसम्फुल्लाक्षम् सहस्राक्षम् = अभिलषितस्य = अभीष्टस्य, सिद्ध्या= प्राप्त्या, सम्फुल्लानि = प्रफुल्लानि अक्षीणि यस्य तम्, मनोरथलाभेन प्रफुल्लनयनम् देवराजम्, सभाजयिष्यावः = अभिनन्दयिष्यावः।

इत्याश्चर्यचूडामणे 'रमा' टीकायां मिश्रविष्कम्भकः।

सौदामिनी—वही तो मैं भी अनुमान करती हूँ। दिन के ढलने पर यह समाचार मिला। राम ने राक्षसकुल का संहार कर दिया।

विद्याधर—आज सम्पूर्ण त्रिभुवन विघ्नरहित हो गया।

सौदामिनी—आज पतिव्रताओं के हृदय जीवित हो उठे।

विद्याधर—अब अभिलषित वस्तु की प्राप्ति से प्रसन्न नेत्रों वाले इन्द्र का अभिनन्दन करेंगे।

(दोनों जाते हैं)।

मिश्रविष्कम्भक समाप्त।

(ततः प्रविशति भेरीं प्रहरन् पर्यटन् जाम्बवान्)

जाम्बवान्—(उक्तमनुकृत्य)

वेगादुत्पततो विधूय नमुचिं पादस्य पत्युश्चिता-
मग्रे सञ्चरता मया मुहुरभूद् भेरी गभीरं हता ।
रामेणापि दशाननं हतवता व्यापारितोऽयं जनः
तस्मिन् कर्मणि कर्म नूनमुचितं लोकोऽयमालम्बते ॥५॥

उक्तमनुकृत्येति ॥ 'आदत्तामि'त्यादि वाक्यं पुनरप्युक्त्वेत्यर्थः। भेरीप्रहारकर्मणि पूर्वाभ्यासं तदानीन्तनात् भेरीप्रहाराद्उद्बुद्धसंस्कारोऽनुस्मरति—वेगादिति ॥ नमुचिम् विधूय चिताम् पत्युः वेगात् उत्पततः पादस्य अग्रे सञ्चरता मया भेरी मुहुः गम्भीरं हता अभूत्, दशाननम् हतवता रामेणापि अयं जनः तस्मिन् कर्मणि व्यापारितः, अयम् लोकः नूनम् उचितम् कर्म आलम्बते इत्यन्वयः। नमुचिम् = एतन्नामकं बलिभृत्यमसुरम्, विधूय = हत्वा, चिताम् पत्युः = विष्णोः, अत्र बुद्धिवाचकेन चिच्छब्देन ब्रह्मादयो देवा लक्ष्यन्ते। तेषां नियामको विष्णुः। तस्य वेगात् = रभसात्, उत्पततः = ऊर्ध्वं गच्छतः, पादस्य = चरणस्य, अग्रे = पुरस्तात्, सञ्चरता = गच्छता, (विष्णोः पुरो गच्छता) मया = जाम्बवता, भेरी = दुन्दुभिः, मुहुः = वारम्वारम् गम्भीरं हताऽभूत् = उच्चैः वादिताऽसीत्। दशाननम् = दशमुखम्, हतवता = विनाशितवता, रामेणाऽपि = दशरथात्मजेनापि, अयम् जनः = वृद्धोऽपि जाम्बवान्, तस्मिन् कर्मणि = भेरीप्रहारकर्मणि, व्यापारितः = नियुक्तः। अयं लोकः = अयञ्जनः नूनम् = निश्चयरूपेण उचितं कर्म = पूर्वमभ्यस्तं कर्म, आलम्बते=स्वीकरोति। पुरा नमुचिनामा कश्चिदसुरः स्वस्वामिनो बलेर्नियोगं विनैव त्रिविक्रमस्य विष्णोरुत्पतन्तं पादं निरोद्धुं प्रवृत्तः। स च वामनरूपेण विष्णु-नोत्पतनवेगेनैव हतः। तदा विष्णुविजयोत्सवे जाम्बवान् तस्याग्रे भेरीं प्रहृतवानिति पौराणिकी कथाऽनुसन्धेया। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५ ॥

(उसके बाद भेरी वजाता और घूमता हुआ जाम्बवान प्रवेश करता है)

जाम्बवान्—(आदत्तामित्यादि वाक्य को पुनः कह कर)

नमुचि नामक राक्षस को मार कर पुनः वेग से उड़ते हुए विष्णु के चरण के आगे घूमते हुए हमने वार-वार जोर से भेरी को पीट कर वजाया। रावण को मारने वाले राम ने भी मुझ को उस कार्य में नियुक्त किया। सचमुच मनुष्य पूर्व अभ्यस्त कार्य का ही अवलम्बन करता है ॥ ५ ॥

महानयं भारः । साधयामस्तावत् । (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति रामः सन्नाहवेषमपास्य लक्ष्मणविभीषणसुग्रीवैः सह)

रामः—(विभीषणमवलोक्य) वयस्य ! विभीषण !

नगरीं विश पश्य भर्तृहीनं
जनमापाद्य कर्म चोचितं च ।
व्यसनेषु महत्सु तत्कुलीनं
जनमालोक्य समुच्छ्वसन्ति पौराः ॥ ६ ॥

महानयं भारः = भेरीं प्रहृत्याखिलेषु लोकेषु सञ्चारो गुरुतरं कार्यम् । साधयामः= गच्छामः ।

सन्नाहवेषम् = युद्धवेषम् ।

अथ चतुर्दशसु लोकेषु सर्वजनानन्दहेतुकं रावणवधं निवेदयितुञ्जाम्बवन्तं नियुज्य रामभद्रो लङ्कायां विभीषणं राजपदे प्रतिष्ठापयितुमाह—वयस्येति ॥ (विभीषण !) नगरीम् विश, भर्तृहीनम् जनम् पश्य, उचितम् कर्म च आपादय, महत्सु व्यसनेषु पौराः तत्कुलीनम् जनम् आलोक्य समुच्छ्वसन्ति इत्यन्वयः। (विभीषण !) नगरीम् = लङ्कापुरीम् , विश = प्रविश, भर्तृहीनम् = रावणवधेन स्वामिविहीनम् , जनम् = प्रजावर्गम् , पश्य = अवलोकय, उचितम् कर्म च = उदक-क्रियामारभ्य प्रजापालनान्तं कर्म च, आपादय=सम्पादय । महत्सु व्यसनेषु= महतीषु आपत्सु, पौराः = नागरिकाः, पुरवासिनः, तत्कुलीनम् = स्वामिकुलसम्बन्धिनम् , भर्तृवंशोद्भवमित्यर्थः । जनम् = पुरुषम् , आलोक्य = दृष्ट्वा, समुच्छ्वसन्ति = जीवन्ति, आश्वस्ता भवन्ति इत्यर्थः । साम्प्रतं स्वामिवधोत्पन्नचिन्तः प्रजावर्गस्त्वया प्रबोध्य निश्चिन्तो विधेय इति भावः। कालभारिणी वृत्तम्। अर्थान्तरन्यासालङ्कारः ॥ ६ ॥

यह उत्तरदायित्व महान् है । अब हम चलते हैं । (चला जाता है)

(उसके बाद युद्ध के वेष का परित्याग कर लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण के साथ राम प्रवेश करते हैं)

राम—(विभीषण को देख कर) मित्र विभीषण !

लंकापुरी में प्रवेश करो । स्वामी से रहित प्रजा को देखो । उचित श्राद्ध तथा प्रजापालनादि कार्य को करो, क्योंकि महान् विपत्ति में उस कुल से सम्बन्धित व्यक्ति को देख कर नागरिक आश्वस्त होते हैं ॥ ६ ॥

विभीषणः—प्रसीदतु देवः। नाहं बन्धुस्नेहाद् ब्रवीमि।

क्व साधवः क्व च रजनीचरा वयं
तथापि मां सुखयति हि त्वदाश्रयः।
अपायिनीमहमिति पूर्वजन्मनो
न कामये नरवर! गत्वरीं श्रियम् ॥ ७ ॥

रामः—मा मा, नैष राजधर्मः। नोपनता श्रीरवमन्तव्या। अपि च,

सार्धं त्वया गुणपरायण! निर्गुणेन
निर्वासितः सरभसं तव पूर्वजेन।

अथ विभीषणो रामात् केवलं प्रसादं प्रार्थयते—प्रसीदतु देव इति॥ नाहं बन्धुस्नेहाद् ब्रवीमि = यतोऽहं बन्धुभिरुपेक्षितो भवच्छरणं गतोऽतो बन्धूनुद्दिश्य न किञ्चित् कर्त्तव्यमस्तीत्यर्थः। साधव इति॥ साधवः क्व, रजनीचराः वयम् च क्व ?, (यद्यपि इति योज्यम्) तथापि त्वदाश्रयः हि माम् सुखयति, हे नरवर! अहम् पूर्वजन्मनः, अपायिनीम्, गत्वरीम् श्रियम् न कामये इत्यन्वयः। साधवः = भवत्समाः सज्जनाः क्व = कुत्र, रजनीचराः वयम् = मत्सदृशाः राक्षसाः च क्व = कुत्र !, भवद्विधसाधूनां मत्सदृशैर्दुर्जनैः संसर्गो यद्यपि नोचितस्तथापि त्वदाश्रयः= भवदाश्रयणम्, माम् = शरणागतं विभीषणम्, सुखयति = आनन्दयति हे नरवर= हे पुरुषश्रेष्ठ, अहम् = विभीषणः, पूर्वजन्मनः = अग्रजस्य, (रावणस्येति यावत्) अपायिनीम् = अधर्मार्जितत्वाद् विनाशशालिनीम्, गत्वरीम् = गमनशीलाम्, चञ्चलाम्, श्रियम् = राजलक्ष्मीम्, न कामये = नाभिलषामि। रुचिरा वृत्तम्। विषमाऽलङ्कारः॥ ७॥

अथ रामः स्वयमुपनतराजलक्ष्मीतिरस्कारन्निषेधति—मा मेति॥ नैष राजधर्मः = एषः कुलक्रमागतराजलक्ष्मीपरित्यागो न राजधर्म इत्यर्थः। सार्धमिति॥ हे गुणपरायण! निर्गुणेन तव पूर्वजेन सरभसम् त्वया सार्धम् निर्वासितः धर्मः, हे

विभीषण—देव प्रसन्न हों। मैं भ्राता के प्रेम से कुछ नहीं कहता हूँ।

कहाँ आपके समान सज्जन और कहाँ हमारे समान राक्षस! फिर भी आपका आश्रय हमें सुख पहुँचाता है। हे नरश्रेष्ठ! मैं ज्येष्ठ भ्राता की चंचल और विनाशशील राजलक्ष्मी नहीं चाहता॥ ७॥

राम—नहीं नहीं, यह राजधर्म नहीं है। आयी हुई लक्ष्मी का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। और भी,

हे गुणपरायण! तुम्हारे गुणहीन ज्येष्ठ भ्राता ने तुम्हारे साथ ही धर्म की अवहेलना

त्वामद्य सत्पथपुरोग ! पुरो निधाय
पौलस्त्यभूमिषु पदं निदधातु धर्मः ॥ ८ ॥

विभीषणः—देव ! अद्यप्रभृति,

बहुमानपदं भवाम्यहं प्रणयोत्फुल्लमवेक्षितस्त्वया ।
ध्रियते हरसङ्ग्रहाद् बुधैः शिरसा किं न चिताकरोटिका ॥ ९ ॥

सत्पथपुरोग ! अद्य त्वाम् पुरो निधाय पौलस्त्यभूमिषु पदम् निदधातु इत्यन्वयः। हे गुणपरायण = हे राक्षसदुर्लभविनयादिगुणाश्रयभूत !, निर्गुणेन = गुणरहितेन, तव = भवतः पूर्वजेन = अग्रजेन रावणेन, सरभसम् = सक्रोधम् त्वया = विभीषणेन, सार्धम् = सह, निर्वासितः=निस्सारितः (बहिर्देशं प्रापितः) धर्मः सत्पथः, अद्य = साम्प्रतम् , हे सत्पथपुरोग = हे सन्मार्गप्रवर्तक, त्वाम् = धर्माचरणपरायणम् भवन्तम् , पुरो निधाय = अग्रेकृत्वा, पौलस्त्यभूमिषु = पुलस्त्यकुलभूमिषु, पदम् = चरणम् , निदधातु = स्थापयतु। पूर्वमधार्मिकेन दशमुखेन त्वया सह तिरस्कृतो धर्मः साम्प्रतं धार्मिकं त्वामाश्रित्य पुनरपि लङ्कायां प्रतिष्ठितो भवतु इति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम् । सहोक्ति-यमकाऽलङ्कारयोः संसृष्टिः ॥ ८ ॥

अथ विभीषणो रामप्रसादमङ्गीकुर्वन्नाह—बहुमानपदमिति ॥ हे देव ! त्वया प्रणयोत्फुल्लम् अवेक्षितः अहम् बहुमानपदम् भवामि। हरसंग्रहात् बुधैः शिरसा किं चिताकरोटिका न ध्रियते ? इत्यन्वयः। हे देव ! त्वया = भवता, प्रणयोत्फुल्लम् अवेक्षितः = सप्रसादं वीक्ष्य साधुत्वेनाङ्गीकृतः, अहम्=नीचजातीयोऽपि विभीषणः, बहुमानपदम् = सर्वजनसम्मानास्पदम् , भवामि = अस्मि । अमुमेवार्थं दृष्टान्तेन समर्थयति—ध्रियते इति ॥ हरसंग्रहात् = शम्भुनाङ्गीकृतात् , बुधः विद्वद्भिः (शिवभक्तैरिति यावत्) शिरसा = उत्तमाङ्गेन, चिताकरोटिका = श्मशानास्थि किं न ध्रियते ? = किं न धार्यते, धार्यते एव इति भावः। अत्र दृष्टान्तबलाद् गम्यमानेन विभीषणकरोटिकासादृश्येन विभीषणस्यौद्धत्याभावो व्यज्यते। सुन्दरी वृत्तम् । दृष्टान्ताऽलङ्कारः ॥ ९ ॥

की। हे सन्मार्ग के प्रवर्तक ! आज वह धर्म तुम को आगे करके पुलस्त्य की सन्तान की भूमि में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करे। अथवा अपना चरण रखे ॥ ८ ॥

विभीषण—देव ! आज से,

आपके द्वारा प्रेमपूर्वक देखे जाने से लोगों द्वारा हम आदर के पात्र होते हैं। क्या विद्वान् लोग शंकर भगवान् के द्वारा स्वीकृत चिता की हड्डी को अपने शिर पर नहीं धारण करते हैं ? ॥ ९ ॥

रामः—वयस्य ! सुग्रीव ! पर्याकुल इव ते सखा विभीषणः। कृतकरणीयमिमं लङ्कायां प्रकृतिभिस्सह संयोजय।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति देवः। एहि लङ्केश्वर ! इत इतः।

(निष्क्रान्तौ)

रामः—अद्याहं सिद्धार्थो विभीषणप्रतिष्ठापनात्। कुतः,

तस्य लक्ष्मीर्नटस्येव छत्रचामरलक्षणा।
न बध्नाति फलं यस्मिन्नर्थिनां प्रार्थनालता ॥ १० ॥

पर्याकुलः = व्याकुलः। कृतकरणीयम् = कृतपैतृककार्यम्। प्रकृतिभिः सह संयोजय = हतावशिष्टैरमात्यसुहृद्बन्धुभिः सह सम्यग् योजय।

सिद्धार्थः = कृतार्थः। विभीषणप्रतिष्ठापनात् = स्वराज्ये विभीषणस्य प्रतिष्ठापनात्, राजत्वेन व्यवस्थापनात् कृतार्थोऽहमिति भावः। तस्य लक्ष्मीरिति ॥ यस्मिन् अर्थिनाम् प्रार्थनालता फलम् न बध्नाति तस्य (नृपस्य) छत्रचामरलक्षणा लक्ष्मीः नटस्य (लक्ष्मीः) इव (विद्यते) इत्यन्वयः। यस्मिन् = राजनि, अर्थिनाम् = याचकानाम्, प्रार्थनालता = याचनावल्ली, फलम् = इष्टप्राप्तिरूपम् फलम्, न बध्नाति = न लभते, तस्य = नृपस्य, छत्रचामरलक्षणा = छत्रचामरचिह्नविशिष्टा लक्ष्मीः =

विमर्श—तुच्छ व्यक्ति पर भी जब महान् लोगों की कृपादृष्टि पड़ जाती है तो उसका सभी लोग आदर करते हैं। श्मशान की हड्डी अपवित्र है अत एव लोग उसका स्पर्श तक नहीं करते किन्तु जब शंकर भगवान् उसे ग्रहण करते हैं तो वही तुच्छ हड्डी लोगों के शिर पर अपना स्थान बना लेती है। सत्संगति के प्रभाव से क्षुद्रजन भी लोक में आदर का पात्र बन जाता है। क्षुद्र राक्षसकुल में उत्पन्न होकर भी राम के सम्पर्क से विभीषण अपने को धन्य मान रहा है।

राम—मित्र सुग्रीव ! तुम्हारे मित्र विभीषण उद्विग्न सा नजर आते हैं। पैतृक कार्य को सम्पन्न कर लेने वाले इनको लंका में मृत्यु से बचे अमात्य तथा मित्र वर्गों से मिलाओ।

सुग्रीव—देव की जो आज्ञा। आओ लंकेश्वर ! इधर से इधर से।

(दोनों जाते हैं)

राम—विभीषण को राज्य पर प्रतिष्ठित कर आज मैं कृतार्थ हुआ। क्योंकि—

जिस में याचकों की प्रार्थना रूपी लता फल को धारण नहीं करती है, उसकी छत्र और चामर से उपलक्षित लक्ष्मी नट की लक्ष्मी की भाँति प्रतीत होती है ॥ १० ॥

(प्रविश्य)

सुग्रीवः—जयतु देवः ।

रामः—सुग्रीव ! किमिदं निर्गमनानन्तरमेवागमनम् ।

सुग्रीवः—देव ! इदं विभीषणवचनम् । अहं तावन्नगरीं न प्रविशामि यावद् देवी ततो न निष्क्रामति ।

रामः—(सबहुमानम्) यद्येवम्, त्वमेव तत्र सखीमानय ।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति देवः । (निष्क्रान्तः)

रामः—(सवितर्कम्)

हत्वा वालिनमर्णवे गिरिशतैराबध्य सेतुं श्रमा-

श्रीः नटस्य = कुशीलवस्य (लक्ष्मीः) इव विद्यते । राज्ञा याचकानां प्रार्थनालता धनदानादिना सफलीकार्या इत्यर्थः । अनुष्टुब्वृत्तम् । उपमाऽलङ्कारः ॥ १० ॥

अथ रावणवधात् पूर्णप्रतिज्ञो रघुनाथोऽवसरप्राप्तं सीतापरिग्रहं प्रति वितर्कयन् आह—हत्वा वालिनमिति ॥ वालिनम् हत्वा गिरिशतैः अर्णवे सेतुम् आबध्य श्रमात्—

विमर्श—नट अभिनय के द्वारा रस-सम्पत्ति का आयोजन करता है। वह रस-सम्पति केवल दर्शकों के नेत्रों को ही आनन्दित करती है। नयनप्रीतिफल के अतिरिक्त उसका दूसरा कोई फल नहीं होता। जिस राजा की लक्ष्मी याचकों की प्रार्थना को सफल नहीं बनाती वह चतुरङ्ग सैन्यवल और छत्र-चामरादि लक्षण से युक्त राजलक्ष्मी केवल प्रजा के नयनों को ही संतुष्ट करती है। उस लक्ष्मी से प्रार्थी की वास्तविक आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है। विभीषण की राज्यप्राप्ति से आज राम अपनी राजलक्ष्मी की सार्थकता स्वीकार करते हैं, क्योंकि विभीषण की प्रार्थना फलवती हो चुकी है।

(प्रवेश करके)

सुग्रीव—देव की जय हो।

राम—यह क्या ? जाने के बाद तुरत ही लौट आये ?

सुग्रीव—देव ! विभीषण का यह कहना है—जब तक देवी सीता वहाँ से (लंका से) नहीं निकल आती तब तक मैं नगरी में नहीं प्रवेश करता।

राम—(सम्मानपूर्वक) यदि ऐसा है तो तुम्हीं अपनी सखी को ले आओ।

सुग्रीव—देव की जो आज्ञा। (चले जाते हैं)

राम—(विचारपूर्वक) वालि को मार कर, सैकड़ों पर्वतों से समुद्र में बाँध बना कर,

लङ्कामेत्य सहायबन्धुसहितं कृत्वा हतं रावणम् ।
यामद्य प्रतिपालयामि वचनप्रामाण्यतो मारुतेः
संवासादपि नाम सा नृपसुता न स्यादवर्णास्पदम् ॥११॥

लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्यः ।

सुखाभिलाषी स्त्रीभावो दुर्विनीताश्च राक्षसाः ।

लङ्काम् एत्य सहायबन्धुसहितम् रावणं हतं कृत्वा मारुतेः वचनप्रामाण्यतः अद्य याम् प्रतिपालयामि, सा नाम नृपसुता संवासात् अवर्णास्पदम् स्यात् न वा इत्यन्वयः । वालिनम् = एतन्नामकं सुग्रीवाग्रजं वानरराजम्, हत्वा, निहत्य, गिरिशतैः = पर्वतशतैः, शतसंख्यकैः पर्वतैरित्यर्थः । श्रमात् = परिश्रमपूर्वकम्, अर्णवे = समुद्रे, सेतुम् = आलिम्, आबध्य = निरूप्य, पयोधौ सेतुं निर्मायेत्यर्थः । लङ्काम् = स्वर्णपुरीम्, एत्य = प्राप्य, सहायबन्धुसहितम् = सुहृद्बान्धवयुतम्, रावणम् = दशग्रीवम्, हतं कृत्वा = विनष्टं कृत्वा, मारुतेः = पवनसुतस्य हनुमतः, वचनप्रामाण्यतः = वचः प्रमाणीकृत्य, अद्य = सम्प्रति, याम् = सीताम्, प्रतिपालयामि = प्रतीक्षां करोमि, सा नाम नृपसुता=सा जनकसुता=वैदेही, संवासात् = रक्षोगृहनिवासात्, (हेतोः) अवर्णास्पदम् = लोकापवादास्पदम्, स्यात् न वा = भवेन्नवा । केनोपायेन लोकस्य सीताविषयकशङ्कां परिहरिष्यामि ? यदि शङ्काऽपास्तं गता न स्यात्तदा सर्वोऽयं वालिनिग्रहरावणवधावसानो व्यापारः प्रियापरिग्रहगोचरसन्देहफल एव संवृत इति रामस्य खेदजन्यो वितर्कोऽवगन्तव्यः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ११ ॥

सुखाभिलाषीति ॥ स्त्रीभावः सुखाभिलाषी, राक्षसाः च दुर्विनीताः वयम् दूरे

लंका पहुँच कर मित्र और बान्धवों के साथ रावण का विनाश कर हनुमान् के वचन के प्रमाण से आज जिसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, वह जनकसुता सीता राक्षस के घर में अधिक दिन निवास करने से यदि लोकापवाद का विषय न बने ॥ ११ ॥

विमर्श—सेतुबन्धनादि विपुल प्रयास के बाद प्राप्त होने वाली सीता के चरित पर राक्षस के घर में रहने के कारण लोग शंका कर सकते हैं । और यदि यह शंका संभावित है तो इतने बड़े प्रयास का परिणाम क्या होगा यह कहना कठिन है । लोकपक्ष के संभावित संशय को ध्यान में रख कर राम अन्तर्द्वन्द्व में पड़े हैं ।

लक्ष्मण—आर्य प्रसन्न हों ।

स्त्रियों का स्वभाव सुख का अभिलाषी होता है । राक्षस क्रूर होते हैं । हम लोग दूर

दूरे वयमतो देव्याः परीक्ष्या भावशुद्धता ॥ १२ ॥

रामः—लक्ष्मण ! क्व हनूमान् ।

लक्ष्मणः—स खल्विदानीं युद्धभूमौ—

क्षिप्तान्यद्रिशतान्यपास्यति भुजेनाधः कपीनां कृते

ग्रस्तानुद्धरति प्रसह्य वदनादृक्षेश्वरान् रक्षसाम् ।

(अभूम) अतः देव्याः भावशुद्धता परीक्ष्या इत्यन्वयः । स्त्रीभावः=स्त्रीत्वम्, नारीस्वभावः इत्यर्थः । सुखाभिलाषी=उचितमनुचितं वा सुखमभिलषितुं शीलमस्येति सुखाभिलाषी, सुखार्थी, राक्षसाः=रजनीचराः, दुर्विनीताः=अविनीताः, दुष्टा इत्यर्थः । वयम्=तस्याः रक्षितारः ये रामादयस्ते दूरे (अभूम) एकाकिनी एव दुष्टरजनीचराणां मध्ये निवसन्ती सीता महतीं शङ्काञ्जनयतीति भावः । अतः=अस्मात् कारणात्, देव्याः=सीतायाः, भावशुद्धता, अन्तःकरणपवित्रता, परीक्ष्या=परीक्षणयोग्या अस्तीति शेषः । अत्र भावशुद्धतामनूद्य देव्याः परीक्षा विधीयते । यद्यपि देव्याश्शुद्धतायां नास्ति शङ्कावसरस्तथापि रक्षोगृहनिवासतया संदिग्धलोकप्रत्ययार्थं केनचित् प्रबलतमेन प्रमाणेन परीक्ष्येति लक्ष्मणाशयः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १२ ॥

अथ रामो लोकविश्वासार्थं प्रत्यक्षीकृतसीतापातिव्रत्यं पवनसुतं जिज्ञासमानः पृच्छति—लक्ष्मण ! क्व हनूमानिति ॥

युद्धभूमौ हनुमतो व्यापारं वर्णयन्नाह लक्ष्मणः—क्षिप्तान्यद्रीति ॥

क्षिप्तानि अद्रिशतानि अधः कपीनाम् कृते भुजेन अपास्यति, रक्षसाम् वदनात् ग्रस्तान् ऋक्षेश्वरान् प्रसह्य उद्धरति, गोलाङ्गूलकुलस्य युद्धश्रमम् निर्झरजलैः मुष्णाति, अपाम् निलयने हतान् पौलस्त्यबन्धून्, ग्राहेभ्यो विभजति इत्यन्वयः क्षिप्तानि = राक्षसैः प्रक्षिप्तानि, अद्रिशतानि = शतसंख्यकाः गिरयः,

---

अतः देवी के अन्तःकरण की शुद्धता की परीक्षा होनी चाहिये ॥ १२ ॥

राम—लक्ष्मण ! हनूमान् कहाँ है ?

लक्ष्मण—वे तो इस समय युद्धभूमि में—

राक्षसों के द्वारा फेंके गये सैकड़ों पर्वतों को वानरों की प्राणरक्षा के लिये हाथों से हटा रहे हैं । (अर्थात् पहाड़ों के नीचे बन्दर, भालु दब गये हैं, उन्हें बचाने के लिये मलवा हटा रहे हैं)

राक्षसों के मुँह में दबे हुए भालुओं को खींच कर उनका उद्धार कर रहे हैं । झरना के

गोलांगूलकुलस्य निर्झरजलैर्मुष्णाति युद्धश्रमं
ग्राहेभ्यो विभजत्यपां निलयने पौलस्त्यबन्धून् हतान् ॥१३॥

रामः—सदृशमिदमस्य चेष्टितम् ।

(नेपथ्ये)—उस्सरह उस्सरह अज्जा ! उस्सरह । (उत्सरत उत्सरत आर्याः ! उत्सरत ।)

रामः—लक्ष्मण ! किमिदम् ।

लक्ष्मणः—आर्य ! इदमागमनमार्यायाः ।

रामः—किं नु खलु देवीं महाजनो वक्ष्यति ! लक्ष्मण ! सुग्रीवमाज्ञापय—कृतमुत्सारणकर्मणा, तत्रैव यानादवतार्य प्रकाशं प्रवेश्यतां मैथिलीति ।

अधः कपीनाम् कृते = राक्षसोत्क्षिप्तपर्वतानामधःप्रदेशे शयानानां वानराणां कृते, अपास्यति = दूरतः क्षिपति, रक्षसाम् = निशाचराणाम् , वदनात् = मुखात् , प्रस्तान् = निविष्टान् , ऋक्षेश्वरान् = भल्लूकपतीन् , प्रसह्य = बलात् , उद्धरति = उद्धारं करोति । रक्षोमुखाद् भल्लान् निःसारयतीत्यर्थः । गोलाङ्गूलकुलस्य = लोके 'लंगूर' नाम्ना प्रसिद्धस्य कपिकुलस्य युद्धश्रमम् = समरखेदम् , निर्झरजलैः = वारिप्रवाहसलिलैः (झरना) इति लोके, मुष्णाति = दूरीकरोति, अपनयतीत्यर्थः । अपां निलयने = जलधौ, हतान् = मृतान् , पौलस्त्यबन्धून् = रावणबान्धवान् , ग्राहेभ्यः = अवहारेभ्यः (घड़ियाल इति लोके), विभजति = विभज्य ददाति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १३ ॥

जल से वानरजाति के युद्ध की थकावट को दूर कर रहे हैं । और रावण के मृत-बान्धवों को समुद्र में घड़ियाल प्रभृति जल-जन्तुओं को दे रहे हैं ॥ १३ ॥

राम—हनूमान् का यह आचरण अनुकूल है ।

(नेपथ्य में) आर्य ! आपलोग हट जाँय हट जाँय ।

राम—लक्ष्मण ! यह क्या है ?

लक्ष्मण—आर्य ! यह देवी का शुभागमन है ।

राम—श्रेष्ठजन न जाने देवी के सम्बन्ध में क्या कहेंगे ? लक्ष्मण ! सुग्रीव से कह दो, लोगों को हटाने का काम छोड़ दें । वहीं पर गाड़ी से उतार कर खुले रूप से जानकी का प्रवेश करावें ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः। (निष्क्रान्तः)

रामः—

अवधूय दशग्रीवं मामनुव्रतचेतसः।
सर्वे पश्यन्तु जानक्या रूपं चारित्रभूषणम् ॥ १४ ॥

(ततः प्रविशति सीता लक्ष्मणसुग्रीवाभ्याम्)

उभौ—(प्रणमतः) इत इतः।

(नेपथ्ये)

अहो नु खलु लक्ष्मणसुग्रीवयोः साध्वाचारः।
अनयोर्नमतोरद्य दूरानतशिरस्कयोः।

अथ रामः सीतायाश्चारित्रसूचकं रूपं लोकान् दर्शयितुकाम आह—अवधूयेति ॥ दशग्रीवम् अवधूय माम् अनुव्रतचेतसः जानक्याः चारित्रभूषणम् इदम् रूपम् सर्वे पश्यन्तु इत्यन्वयः। दशग्रीवम् = रावणम्, अवधूय = अवज्ञाय, तिरस्कृत्येत्यर्थः। माम् = रामम्, अनुव्रतचेतसः = अनुव्रतम् = अनुगतम् चेतः = अन्तःकरणम् यस्याः तथोक्तायाः, जानक्याः = मत्समीपमागच्छन्त्याः सीतायाः, चारित्रभूषणम् = चारित्रम् = शीलम् (भर्तृवियोगे पाण्डिमकार्श्यैकवेणीधारणमलीमसत्वादिलक्षणम्) तदेव भूषणम् = अलङ्कारः, यस्य तत्तथोक्तम्, रूपम् = शरीरवेषादिकम् स्वरूपम्, सर्वे = समस्ता लोकाः, पश्यन्तु = अवलोकयन्तु। प्रियतमविरहसमूहसूचकसीतारूपदर्शनेन महाजनाः तस्याश्चारित्रविषये विश्वस्ता भवन्तु इति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम्। रूपकाऽलङ्कारः ॥ १४ ॥

साध्वाचार इति ॥ साध्वाचारः = साधुः = शोभनम्, आचारः = व्यवहारः, शिष्टाचार इत्यर्थः। सीतां प्रति लक्ष्मणसुग्रीवयोः साध्वाचारमेव विवृणोति—अनयोरिति ॥

लक्ष्मण—आर्य की जो आज्ञा। (चले जाते हैं)

राम—रावण का तिरस्कार करके मुझमें अनुरक्त हृदयवाली सीता के, चरित ही हैं अलंकार जिसमें ऐसे रूप को सभी लोग देखें ॥ १४ ॥

(अर्थात् खुले रूप से सबके सामने आती हुई सीता के पतिव्रताधर्म के अनुकूल वेष को देखने का अवसर सब लोग प्राप्त करें। (उसके बाद लक्ष्मण और सुग्रीव के साथ सीता प्रवेश करती है)

(नेपथ्य में) लक्ष्मण और सुग्रीव का सुन्दर आचरण तो विलक्षण है। अभी दूर से ही शिर झुकाकर प्रमाण करते हुए इन दोनों की दृष्टि राजपुत्री के चरणों

पतन्ति राजकन्यायाः पादयोरेव दृष्टयः ॥ १५ ॥

सीता—(आत्मगतम्) किं णु खु मं महाजनो मंतेदि। किं णु खु मं अज्जउत्तो मन्तेदि ! अविस्ससणीओ खु इत्थिआभावो। अधण्णाए मम किदे अणत्थसाअरे पडिदो अज्जउत्तो अत्तकेण बाहुणा उत्तण्णो। सच्चं एव्व भणिदं मारुइणा पुढमं त्ति धणुणा पडिग्गहीदा दाणिं त्ति धणुणा उद्धरिस्सदित्ति। (किन्नु खलु मां महाजनो मन्त्रयते। किन्नु खलु मां आर्यपुत्रो मन्त्रयते। अविश्वसनीयः खलु स्त्रीभावः। अधन्याया मम कृते अनर्थसागरे पतितः आर्यपुत्रः आत्मीयेन बाहुना उत्तीर्णः। सत्यमेव भणितं मारुतिना प्रथममपि धनुषा परिगृहीता इदानीमपि धनुषा उद्धरिष्यतीति।)

(सर्वे उपसृत्य)

दूरानतशिरस्कयोः नमतोः अनयोः दृष्टयः अद्य राजकन्यायाः पादयोः एव पतन्ति इत्यन्वयः। दूरानतशिरस्कयोः=दूरम्=अत्यर्थम्, आनतम्=नम्रीभूतम्, शिरः=उत्तमाङ्गम् ययोः तयोः अत्यन्तविनम्रमस्तकयोः, नमतोः=प्रणमतोः=अनयोः=लक्ष्मणसुग्रीवयोः, दृष्टयः=लोचनानि, अद्य=अधुना, राजकन्यायाः=जनकदुहितुः, सीतायाः, पादयोः=चरणयोः एव पतन्ति=निपतन्ति। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १५ ॥

अथ सीता रक्षोगृहनिवासहेतुकं लोकापवादमाशंक्य चिन्तयति—किन्नु खल्विति ॥ दोषरहितायामपि मयि न केवलं लोकस्य, आर्यपुत्रस्यापि रक्षोगृहनिवासेन दोषशङ्का संभवतीत्याह—अविश्वसनीयः स्त्रीभाव इति ॥ नारीत्वं च विश्वासास्पदत्वं भजतीति भावः। अनर्थसागरे=विपत्तिसमुद्रे। आत्मीयेन बाहुना=स्वभुजपराक्रमेण। इत्यर्थोक्ते इति ॥ प्रथमं सीतामपश्यन् स्वागतार्थं देवि ! इत इत इत्युक्त्वा तस्याः सम्भोगशृङ्गारानुरूपं वेषं दृष्ट्वा ततः स्वमुखं परावृत्यान्यतः करोति इत्यर्थः।

पर ही पड़ती है ॥ १५ ॥

सीता—न जाने श्रेष्ठजन क्या कहते हैं। न जाने आर्यपुत्र मुझे क्या समझते हैं ? स्त्री का भाव तो विश्वास करने योग्य नहीं होता। मुझ अभागिन के लिए आर्यपुत्र कष्ट के सागर में गिरे और अपने भुजबल से उसे पार भी कर गये। हनूमान् ने सच ही कहा था—"पहले भी धनुष से ही ग्रहण की गयी थीं, अभी भी धनुष से ही उद्धार पाओगी"

(सभी लोग समीप जाकर)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः ।

सुग्रीवः—जयतु जयतु देवः ।

सीता—जेदु अज्जउत्तो । (जयत्वार्यपुत्रः ।)

रामः—देवि ! इत इतः । (इत्यर्धोक्ते मुखं परावर्तयति)

उभौ—किं नु खल्विदम् ।

रामः—लक्ष्मण ! हनूमांस्तावदाहूयताम् ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (निष्क्रान्तः)

रामः—सुग्रीव ! पूर्वमियं न दृष्टा ।

(सुग्रीवो भीतस्तिष्ठति)

रामः—सुग्रीव ! पश्येदानीं त्वयादृष्टपूर्वं विरहचारित्रम् ।

अथ सीताविरहविषयकं हनूमद्वचनं मिथ्यात्वेन परिकल्प्य स हनूमदानयनार्थं लक्ष्मणन्नियुंक्ते—हनूमानिति ॥ पूर्वमियं न दृष्टेति ॥ अस्मिन् रामवचने काकुः । प्रथममेनां सम्यगवलोक्य ततो मत्समीपमेषा आनेतव्या आसीदित्यर्थः । अदृष्टपूर्वमिति ॥ पूर्वं न दृष्टमिति अदृष्टपूर्वम्, विरहचारित्रम्=विरहचारित्रशब्देन

लक्ष्मण—आर्य की जय हो ।

सुग्रीव—देव विजयी हों ।

सीता—आर्यपुत्र की जय हो ।

राम—देवि ! इधर से इधर से (यह आधा कह कर मुँह फेर लेते हैं)

दोनों—यह क्या ?

राम—लक्ष्मण ! हनूमान् को बुलाओ ।

लक्ष्मण—आर्य की जो आज्ञा । (जले जाते हैं)

राम—सुग्रीव ! इसे पहले नहीं देखा था ?

(सुग्रीव भयभीत हो जाते हैं)

राम—सुग्रीव ! तुम इस समय तुम्हारे द्वारा नहीं देखे गये सीता के विरहचरित को देखो ।

इसके दोनों स्तन हरिचन्दन से लिप्त हैं । केशकलाप सुगन्धित फूलों से व्याप्त है । वस्त्र सायंकालिक सूर्य के लाल प्रकाश की शोभा को चुराने वाला है । यह पतिव्रता विरहव्रत के चिह्न के रूप में इन वस्तुओं को धारण करती है ।

हरिचन्दनप्रणयिनौ पयोधरौ
कुसुमाचितं सुरभि केशबन्धनम्।
अरुणप्रभातिशयचोरमम्बरं
विरहव्रताय वहते पतिव्रता ॥ १६ ॥

सुग्रीवः—देव ! ममात्याचारदोषादियं देवस्य नयनगोचरं प्राप्ता।

रामः—युज्यते। लक्ष्मणोऽपि न पश्यत्येव।

विपरीतलक्षणया शृङ्गारानुरूपं स्वैरिणीवेषो लक्ष्यते। अन्यासां पतिव्रतानां स्वामिविरहचरित्रवेषोऽन्यः, अस्यास्तु तद्विपरीतोऽतोऽस्या विरहचारित्रेऽस्ति वैलक्षण्यमिति गूढाशयः। तद्वैलक्षण्यमेव दर्शयति—हरिचन्दनेति एषा पतिव्रता विरहव्रताय हरिचन्दनप्रणयिनौ पयोधरौ, कुसुमाचितम् सुरभिकेशबन्धनम् अरुणप्रभातिशयचोरम् अम्बरम् वहते इत्यन्वयः। एषा पतिव्रता=पतिमनुगता सीता, विरहव्रताय=पतिवियोगकालिकनियमपालनाय, स्वाभिमतजारसम्भोगायेति विपरीतलक्षणया बोध्यम्। हरिचन्दनप्रणयिनौ=पीतचन्दनानुलिप्तौ, पयोधरौ=कुचौ, कुसुमाचितम्=पुष्पसंवलितम् अतएव सुरभिकेशबन्धनम्=सुगन्धियुतं केशपाशम्, अरुणप्रभातिशयचोरम्=अरुणस्य सन्ध्यासूर्यस्य यः प्रभातिशयः=कान्त्याधिक्यम्, तस्य चोरम्=तदपहारि, अम्बरम्=परिधानवस्त्रम् अरुणवर्णवसनमित्यर्थः। वहते=धारयति। विरहव्रतविरुद्धं सम्भोगानुकूलं वेषं धारयतीति आक्षेपगर्भोऽर्थः ॥ १६ ॥

अत्याचारदोषात्=अत्याचारः=अत्युत्कृष्ट आचारः तस्य दोषात्।

विमर्श—रामचन्द्र सीता को आभूषणमण्डित देखकर उनके पतिव्रता-धर्म पर आक्षेप करते हैं। पतिवियोग में पतिव्रता नारियों का आभूषणपरित्याग लोक में प्रसिद्ध है। मेरे वियोग में इस सीता के लिए भी प्रसाधन का त्याग समुचित था किन्तु इसके विपरीत इसने प्रसाधन किया है, जो पतिव्रता नारी के चरित के प्रतिकूल है। पतिव्रताओं के सामान्य आचरण से इसका आचरण भिन्न है अतः इसका चरित संदिग्ध है ॥ १६ ॥

सुग्रीव—देव ! मेरी असावधानी के दोष से यह आपके नेत्रों के सामने आयी।

राम—हो सकता है। क्या लक्ष्मण भी नहीं देखता है ?

सीता—(आत्मगतम्) हद्धि, अणसूआए अणुग्गहो वि मे दाणिं सावो संवुत्तो। (हा ! धिक्, अनसूयाया अनुग्रहोऽपि मे इदानीं शापः संवृत्तः।)

(ततः प्रविशति लक्ष्मणो हनूमांश्च)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः।

हनूमान्—जयतु देवः।

रामः—लक्ष्मण ! हनूमता सह पश्यैनाम्।

(उभौ सीतां दृष्ट्वा मुखं परावर्तयतः)

हनूमान्—देव ! लङ्कायामन्या मया दृष्टा। साम्प्रतमियमन्या।

सीता—अज्जउत्त ! अहं किं वि वत्तुकामा। (आर्यपुत्र ! अहं किमपि वक्तुकामा।)

रामः—ननु ते रूपमेव कथयति।

अनसूयाया अनुग्रह इति ॥ "वनवासमालिन्योपेतायास्तव स्वामिसमीपे सर्वं भूषणं भवतु" इति अत्रिपत्न्याः अनसूयाया अनुग्रहः=प्रसादः, अपि आर्यपुत्रेणाज्ञातत्वात् साम्प्रतम्, शापोऽभूत्=शापवदनर्थकारी सञ्जातः।

अथ रामः सीतावचनस्यावकाशं निषेधन्नाह—ननु ते रूपमेव कथयति ॥ प्रत्यक्षेण कामिजनानुचरितरूपदर्शनेनैव तव लङ्कावृत्तान्तो यथार्थतो ज्ञातः तत्परिचयार्थं नास्ति त्वद्वचनस्यापेक्षेति भावः।

सीता—(मन ही मन) हाय, अनुसूया का वरदान भी इस समय मेरे लिये अभिशाप बन गया।

(उसके बाद लक्ष्मण और हनूमान् प्रवेश करते हैं)

लक्ष्मण—आर्य की जय हो।

हनूमान्—देव की जय हो।

राम—लक्ष्मण ! हनूमान के साथ इसे देखो।

(दोनों सीता को देख कर मुँह फेर लेते हैं)

हनूमान्—देव ! लंका में तो इनको मैंने दूसरे रूप में देखा था।

सीता—आर्यपुत्र ! मैं कुछ कहना चाहती हूँ।

राम—तुम्हारा तो रूप ही कह रहा है।

सीता—कुमार ! तुवं मे वअणं सुणाहि । (कुमार! त्वं मे वचनं शृणु ।)

लक्ष्मणः—तव वचनश्रवणस्य फलमेतत् ।

सीता—सुणाहि पवणपुत्त ! । (शृणु पवनपुत्र ! ।)

हनूमान्—गतोऽभून् स कालः ।

रामः—इदानीमपि मम पुरतस्तिष्ठति ।

रजनीचरगूढसन्निभिः कृतसङ्केतनया दिने दिने ।
ऋजुभावजडास्त्वया वयं छलिताः पुंश्चलि ! दण्डके वने ॥ १७ ॥

सीता—(सस्मितम्) अज्जउत्तेण वि परुसवअणं भणीअदि । (आर्यपुत्रेणापि परुषवचनं भण्यते ।)

अनसूयानुग्रहेण नातः पूर्वमपि दण्डकारण्येऽलङ्कृतां सीतामनुस्मृत्य शङ्कमानो रामः परुषवचनैस्तामधिक्षिपति—रजनीचरेति ॥ पुंश्चलि ! रजनीचरगूढसन्निभिः दिने दिने कृतसंकेतनया त्वया दण्डके वने ऋजुभावजडाः वयम् छलिताः इत्यन्वयः । पुंश्चलि ! प्रतिपुरुषं चलतीति पुंश्चली = स्वैरिणी तत्सम्बोधने पुंश्चलि ! रजनीचरगूढसन्निभिः=जारभूतैः रक्षोभिः, दिने दिने=प्रतिदिनम् , कृतसङ्केतनया= कृतम् सङ्केतनम् = अभिसारसङ्केतः यस्याः तया, त्वया = सीतया दण्डके वने = दण्डकारण्ये, ऋजुभावजडाः = सरलचित्ततया दोषानभिज्ञाः, वयम् = रामादयः, छलिताः = वञ्चिताः । अतः पूर्वमपि दण्डकारण्ये निशाचरप्रेमानुरक्ता त्वमस्मान् वञ्चितवती इति भावः । सुन्दरी वृत्तम् । रूपकाऽलङ्कारः ॥ १७ ॥

आर्यपुत्रेणापि ॥ अत्र अपि शब्देन नित्यं प्रियवादिनाऽपि इति ध्वन्यते । रामप्रयुक्तपरुषवचनेनाधिक्षिप्ताया अपि देव्या ईर्ष्याऽभावेन तस्या स्वीयागुणविशिष्टोत्तमनायिकात्वं सिध्यति ।

सीता—कुमार ! तुम मेरा कहना सुनो ।

लक्ष्मण—तुम्हारी बात सुनने का यह परिणाम है ।

सीता—पवनपुत्र ! सुनो ।

हनूमान्—वह समय चला गया ।

राम—अभी भी हमारे सामने खड़ी है ?

पुंश्चलि ! प्रतिदिन लम्पट राक्षसों का संकेत प्राप्त करने वाली तुमने सीधेपन के कारण मूढ़ हम लोगों को दण्डक वन में धोखा दिया ॥ १७ ॥

सीता—(मुस्कुराती हुई) आर्यपुत्र भी कठोर वचन बोलते हैं ।

सुग्रीवः—

इदं श्रुत्वा वचो भर्तुर्यदेषा कुरुते स्मितम् ।
तदियं सर्वनारीणामवरा वा वरा यदि ॥ १८ ॥

निर्वास्यतामेषा स्वामिविषयात् । क्षीराहुतिं चिताग्निः कथमर्हति ।

लक्ष्मणः—नैषा शरीरेण गन्तुमर्हति ।

अथ सुग्रीवो मनसाप्यस्खलितचारित्राया देव्याः पुंश्चलीति सम्बोधनेन स्मितोद्भेदं दृष्ट्वा सवितर्कमाह—इदं श्रुत्वेति ॥ भर्तुः इदम् वचः श्रुत्वा एषा स्मितम् कुरुते यत् तत् इयम् सर्वनारीणाम् अवरा वरा वेत्यन्वयः । भर्तुः = स्वामिनो रामस्य, इदम् = अतिकठोरम्, वचः = वचनम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य एषा = सीता, स्मितम् = मन्दहसितम्, कुरुते = करोति, यत् = यस्मात्, तत् = तस्मात् इयम् = स्मितं कुर्वाणा सीता, सर्वनारीणाम् = सकलरमणीनाम्, अवरा = अधमा, वरा = उत्तमा वा । अव्ययानामनेकार्थत्वाद् अत्र 'यदि' शब्दो विकल्पार्थः । अग्निशुद्धायामपि मयि पुंश्चलीत्वसंदेहः आर्यपुत्रस्य कथं जात इति महदाश्चर्यमिति बुध्या यदि स्मितम् तदा सर्वनारीसूत्तमा । अथ 'मयि पुंश्चलीत्वस्य संदेहं करोति, करोतु नाम, किं तेन' इति बुद्धया यदि स्मितम् तदा अति धाष्टर्येन सर्वनारीसु अधमेति सुग्रीवाशयः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १८ ॥

स्वामिविषयात् = भर्तृसकाशात् । क्षीराहुतिम् = क्षीरम् = दुग्धम् च इदम् आहुतिश्चेति क्षीराहुतिः । आहूयतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या आहुतिशब्देन होमसाधनम्

सुग्रीव—स्वामी के इस कठोर वचन को सुन कर यदि यह मुस्कुराती है तो यह या तो सभी नारियों में नीच है अथवा उत्तम है ॥ १८ ॥

विमर्श—राम के कठोर वचन को सुनकर सीता मुस्कुरा उठी । सीता के इस व्यवहार से सुग्रीव विकल्प में पड़ गये । उनका विकल्प यों है—यदि सीता स्वामी के कठोर वचन को सुनकर उसकी परवाह न कर हँसती हुई स्वेच्छाचार को प्रश्रय देती है तव तो वह निम्नकोटि की नारी है । और यदि स्वामी के परुष वचन को सुनकर भी क्रोध या ईर्ष्या के वशीभूत न होकर अपने चरित्र बल पर विश्वास करके योगवल से अपने प्राणों के त्याग करने का निश्चय करके सामान्य भाव से हँसती है तो सभी नारियों में अपने लोकोत्तर चरित से उत्तम सिद्ध होती है ।

स्वामी के राज्य से इसे निकाल दिया जाय । चिता की अग्नि दूध की आहुति के योग्य कैसे हो सकती है ?

लक्ष्मण—इस शरीर से यह यहां से नहीं जा सकती ।

हनूमान्—शाधि देव ! यथार्हं दण्डमस्याः।

सीता—अणुमदा अज्जउत्तेण अग्गिं पविसदुकामम्हि। (अनुमतार्यपुत्रेणाग्निं प्रवेष्टुकामास्मि।)

रामः—लक्ष्मण ! अस्याः पतिव्रतायाश्छन्दमनुतिष्ठ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः। (आत्मगतम्) इदानीं प्रीतोऽस्मि। (प्रकाशम्) देवि ! इत इतः।

सीता—(आत्मगतम्) हिअअ ! अज्जउत्तपादेसु पणमेहि। (हृदय ! आर्यपुत्रपादयोः प्रणम।)

(निष्क्रान्तौ)

रामः—हरीश्वर ! त्वमपि हनूमत्प्रमुखेन सैन्येन सह हतशेषेभ्यो राक्षसेभ्यः कुमारं रक्ष।

उच्यते। चिताग्निः=श्मशानाग्निः। अत्र दृष्टान्तबलेन सीतायाश्चिताग्निसाधर्म्यं रामस्य च क्षीराहुतिसादृश्यं गम्यते। तथा च यथा निसर्गतश्शुद्धोऽप्यग्निः शवशरीरसम्बन्धात् अशुचित्वमापाद्य क्षीराहुतिसंसर्गयोग्यो न भवति तथा स्वभावतः शुद्धाऽपि सीता रक्षःसंसर्गोपाधिदूषिता सती जन्म-कर्मविशुद्धरामसंसर्गयोग्या नास्तीति भावः।

नैषा शरीरेणेति॥ शरीरेण=अलङ्कृतेन देहेन। ईदृशं वेशमवलम्ब्य स्वतंत्रा भूत्वा इतो न यातुमर्हति अतो यथाशास्त्रं दण्डार्हा इति भावः। शाधि=विधेहि।

छन्दमनुतिष्ठ=छन्दः=कामः, यथेयमिच्छति तथा कुरु इति भावः।

हनूमान्—देव ! इसके उपयुक्त दण्ड की आज्ञा दें।

सीता—आर्यपुत्र के आदेश से मैं अग्नि में प्रविष्ट होना चाहती हूँ।

राम—लक्ष्मण ! इस पतिव्रता की इच्छा का अनुसरण करो।

लक्ष्मण—आर्य की जो आज्ञा (मन ही मन) अब प्रसन्न हूँ। (प्रकट) देवि ! इधर से इधर से।

सीता—(मन ही मन) हृदय ! आर्यपुत्र के चरणों को प्रणाम करो। (दोनों जाते हैं)

राम—वानरेन्द्र ! तुम भी हनूमान् प्रमुख सेना के साथ मृत्यु के मुख से बचे-खुचे राक्षसों से कुमार की रक्षा करो।

सुग्रीवः—यदाऽज्ञापयति देवः। (निष्क्रान्तः)

रामः—किं नु खलु प्रत्यक्षमप्यप्रमाणं कृत्वा सीतां प्रति सबहुमानं मे मनः। कृतं त्यक्त्वानुशयेन। केवलं लोकहितार्थमेव मे यत्नो भविष्यति।

(ततः प्रविशति कण्टकितसर्वाङ्गो लक्ष्मणः)

लक्ष्मणः—आश्चर्यमाश्चर्यम्।

रामः—वत्स! लक्ष्मण! मेघान्तरचरमपि ते जितवतो मेघनाद-मिन्द्रजितं न कण्टकिता गात्रयष्टिः। कथय कथय, कुतस्त्योऽयमावेगः।

लक्ष्मणः—आर्यपादस्य शासनात् तीरे महार्णवस्य कासारदारुनि-करैः सन्धुक्षितो जातवेदाः।

रामः—(सादरम्) ततस्ततः।

कृतं त्यक्त्वानुशयेनेति॥ सीतां त्यक्त्वा कृतम् अनुशयेन इत्यन्वयो विधेयः। अनुशयेन = अनुतापेन, कृतम् = अलम्, नास्ति प्रयोजनम्।

कुतस्त्यः = किंनिमित्तः?

कासारदारुनिकरैः = सरसीकाष्ठसमूहैः। सन्धुक्षितः=प्रज्वालितः। जातवेदाः = अग्निः।

सुग्रीव—देव की जो आज्ञा। (चले जाते हैं)

राम—प्रत्यक्ष पर भी विश्वास नहीं करके सीता के प्रति मेरा मन इतना आदरवान् क्यों है? चिन्ता करने की जरूरत नहीं। हमारा प्रयास केवल लोककल्याण के लिये ही होगा। (अर्थात् रावण-विजय प्रभृति कार्य सीता-प्राप्ति के अभाव में लोक-कल्याणकारक मात्र होगा)

(उसके वाद समस्त रोमाञ्चित अवयव वाले लक्ष्मण प्रवेश करते हैं)

लक्ष्मण—आश्चर्य है आश्चर्य।

राम—वत्स लक्ष्मण! मेघों के वीच विचरण करने वाले इन्द्रविजयी मेघनाद को भी जीतने वाले तुम्हारे शरीर में रोमाञ्च नहीं हुआ था। कहो कहो, यह आवेग (आनन्द) कहाँ से प्राप्त हुआ है।

लक्ष्मण - आपकी आज्ञा से महासागर के किनारे सरोवर-तटवर्ती वृक्षसमूह से आग जला दी गयी।

लक्ष्मणः—ततस्सा तं संवर्तपावकमिव पावकमभिज्वलन्तं त्रिरार्या पर्यणैषीत् ।

रामः—ततस्ततः ।

लक्ष्मणः—ततस्सा खलु देवी त्वामयोध्याजुषं गुरुजनं च प्रणम्य शिरसा मामप्येवं गुरुवचनकरो भवेत्युक्त्वा भरतशत्रुघ्नाभ्यामेवमेव कथयेति चोवाच । अथ तयेदमुक्तं च "भगवन्नग्ने ! तव पुरस्तात् सत्याधिष्ठानं करिष्यामि । प्रस्थानकाले राक्षसभुजसंस्पर्शः संवृत्तः पादस्पर्शश्च लङ्कायाम्" इति निर्विशङ्कं जलमिव जलशत्रुमविशत् ।

रामः—विस्मयपदमेतत् । ततस्ततः ।

लक्ष्मणः—तदानीमाकाशे प्रवृत्ताः शङ्खपटहाः ।

संवर्तपावकम् = प्रलयाग्निम् । त्रिः पर्यणैषीत् = वारत्रयं प्रदक्षिणमकार्षीत् । अयोध्याजुषम्=अयोध्यानगर्याम् निवसन्तम् । सत्याधिष्ठानम्=सत्यवचनम् । प्रस्थानकाले = हरणसमये । निर्विशङ्कम् = देहाभिमानस्योच्छिन्नत्वेन निःशङ्कम्, सहर्षमित्यर्थः । जलशत्रुम् = अग्निम् । अविशत्=प्राविशत्, यथा ग्रीष्मतापसन्तप्तः कश्चित् सहर्षं जलं प्रविशति तथैव देवी सीताऽपि सहर्षम् प्रज्वलन्तं वैश्वानरं प्राविशदिति भावः ।

राम—(आदरपूर्वक) तब क्या हुआ ?

लक्ष्मण—तब प्रलय की आग के समान उस जलती हुई आग की आर्या ने तीन बार प्रदक्षिणा की ।

राम—उसके बाद !

लक्ष्मण—उसके बाद उस देवी ने आपको और अयोध्या में निवास करने वाले गुरुजनों को प्रणाम करके मुझे भी इसी प्रकार 'गुरुजन का आज्ञाकारी बनो' ऐसा कहकर भरत और शत्रुघ्न से भी यही कहना' यह भी कहा । उन्होंने फिर यह कहा—"भगवन् अग्नि ! तुम्हारे समक्ष सत्य की शपथ लूँगी । चलने (अपहरण) के समय राक्षस की भुजा का और लंका में चरण का स्पर्श हुआ था" । (रावण ने सीता के चरणों पर अपना मस्तक रखा था) इस प्रकार निःशंक होकर जल के समान अग्नि में प्रविष्ट हो गयी ।

राम—यह तो आश्चर्य में डालने वाली घटना है । तब क्या हुआ ?

लक्ष्मण—उस समय आकाश में शंख और नगारे बज उठे ।

रामः—ततस्ततः ।

लक्ष्मणः—ततस्तदानीम् ,

स्तिमितनयनमारात्पश्यतां नस्समन्ताद्
व्यतिकरमिव रूपं विद्युतामादधानः ।
अवनिभुवमनिन्द्यां ते पुरोधाय देवी-
ममरवदनमाविर्देवता वह्निरासीत् ॥ १९ ॥

रामः—ततस्ततः ।

लक्ष्मणः—ततः खलु,

अथ सौमित्रिरग्निप्रवेशानन्तरेतिवृत्तं कथयति—स्तिमितनयनेति ॥ समन्तात् स्तिमितनयनम् पश्यताम् नः आरात् विद्युताम् व्यतिकरम् इव रूपम् आदधानः वह्निः देवता अवनिभुवम् (अतएव) अनिन्द्याम् ते देवीम् पुरोधाय अमरवदनम् आविः आसीत् इत्यन्वयः । समन्तात् = सर्वतो दिशः, स्तिमितनयनम् = विस्मयात् स्तिमिते = निश्चले नयने यस्मिन् तथा पश्यताम् = अवलोकयताम् , नः = अस्माकम् , पश्यतोऽस्मान् अविगणय्येत्यर्थः । आरात् = समीपे (पुरस्तात्) विद्युताम् = चपलानाम् , व्यतिकरम् इव = संमिश्रणमिव रूपम् = देहम् , आदधानः = बिभ्राणः, अवनिभुवम् = वसुधोत्पन्नाम् (अतएव) अनिन्द्याम् = निन्दारहिताम् , शुद्धामिति यावत् , ते = भवतः, देवीम् = भगवतीम् सीताम् , पुरोधाय = अग्रेकृत्वा, वह्निर्देवता = अग्निदेवः, अमरवदनम् = देवमुखं यथा स्यात्तथा भूत्वा आविरासीत् = सर्वेषामस्माकं प्रत्यक्षोऽभूत् । सीतायाः चारित्र्यशुद्धौ देवमुखः अग्निरेव प्रमाणमतो देवी सर्वथा निरवद्यैवेति भावः । मालिनीवृत्तम् । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ॥ १९ ॥

राम—उसके बाद ।

लक्ष्मण—तब उस समय—

स्तब्ध नेत्रों से चारों ओर देखते हुए हम लोगों के समक्ष मानो विजलियों के सङ्गम को धारण करते हुए अग्निदेव दोषरहित आपकी देवी को आगे करके देवताओं के सम्मुख इस पृथिवी पर प्रकट हुये ॥ १९ ॥

राम—उसके बाद ।

लक्ष्मण—तब तो,

वेलावने कुसुमितान् विरहय्य वृक्षान्
कल्माषितं खमलिपङ्क्तिभिरुद्यताभिः ।
आयामवत्यमरपादपपुष्पवृष्टि-
रग्रे स्थिता सपदि हव्यभुजस्तिरोऽभूत् ॥ २० ॥

रामः—भवतु, द्रक्ष्यामस्तावत् । (उभौ परिक्रामतः)

(नेपथ्ये)—(दिव्यगन्धर्वा गायन्ति)

लोकानां यस्त्रितयमुदराधारमापद्य योगा-
दम्भोराशौ विषधरमयीं धीरमध्यास्त शय्याम् ।

वेलावने इति ॥ वेलावने कुसुमितान् वृक्षान् विरहय्य उद्यताभिः अलिपङ्क्तिभिः खम् कल्माषितम्, आयामवती अमरपादपपुष्पवृष्टिः हव्यभुजः अग्रे स्थिता सपदि तिरोऽभूत् च (हव्यभुगिति शेषः) इत्यन्वयः । वेलावने = समुद्रतटवर्तिविपिने, कुसुमितान् = पुष्पितान्, वृक्षान् = शाखिनः, विरहय्य = परित्यज्य, उद्यताभिः = उद्गताभिः, अलिपङ्क्तिभिः = भ्रमरपालिभिः, खम् = आकाशम्, कल्माषितम् = कृष्णवर्णम्, अभूत् इति शेषः । आयामवती = अविच्छिन्नधारत्वेन द्राघीयसी, अमरपादपपुष्पवृष्टिः = देवतरुकुसुमवर्षणम्, हव्यभुजः = अग्नेः, अग्रे = पुरः (स्थितायाः सीतायाः शिरसि) स्थिता = विद्यमाना, अभूत्, ततश्च सपदि = शीघ्रम्, तिरोऽभूत् = अन्तर्हितोऽभूत् हव्यभुगिति शेषः । देवपुष्पवृष्ट्यनन्तरमग्निदेवस्तिरोऽभूदित्यर्थः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २० ॥

दिव्यगन्धर्वाः = ज्ञानिनस्तुम्बुरुनारदप्रमुखाः गायन्ति = स्तुतिपदैः स्तुवन्ति ।

लोकानामिति ॥ हे पद्मास्त ! यः विष्णुः योगात् लोकानाम् त्रितयम् उदराधारम्

तटवर्ती उद्यान के फूले हुये वृक्षों को छोड़ कर उड़ते हुए भौंरों के झुण्ड ने आकाश को मलिन कर दिया। अग्नि के आगे सीता के शिर पर कल्पवृक्ष के पुष्पों की वर्षा बहुत देर तक होकर सहसा बन्द हो गयी ॥ २० ॥

अथवा सीता के ऊपर पुष्प-वर्षा हुई और उसके बाद सहसा अग्निदेव छिप गये।

राम—अच्छा, हम लोग तब तक देखेंगे। (दोनों घूमते हैं)

(नेपथ्य में) (दिव्य गन्धर्व गाते हैं)

योगबल से तीनों लोक को अपने उदर में सन्निविष्ट कर क्षीरसागर में कमलदण्ड से निर्मित शय्या पर जिसने स्थिरतापूर्वक निवास किया। नित्य वेद ने जिसे हवनकर्ता,

होता हव्यं हुतभुगिति यं प्राह शब्दः स्वयंभूः
स त्वं विष्णुर्जनकतनया सा च पद्माक्ष ! पद्मा ॥२१॥

(अपरे गायन्ति)

मदाम्भसा वियति महेन्द्रदन्तिनः
कलङ्कयन् हिमरुचिकर्णचामरम् ।

आपद्य अम्भोराशौ विषधरमयीम् शय्याम् धीरम् अध्यास्त, तथा स्वयंभूः शब्दः यम् होता, हव्यम् , हुतभुक् इति प्राह स विष्णुः त्वम् , सा पद्मा च जनकतनया (अस्ति) इत्यन्वयः । हे पद्माक्ष ! हे कमलनयन, यः विष्णुः= जगत्पालकत्वेन प्रसिद्धो नारायणः, योगात् = सृष्ट्यादिनियामिकायाः शक्तेः, लोकानाम् त्रितयम् = भूर्भुवःस्वर्भेदेन त्रिधा विभक्तम् समस्तप्रपञ्चजातम् , उदराधारम् = उदराश्रयम् , आपद्य = सम्पाद्य, अम्भोराशौ = क्षीरनिधौ, विषधरमयीम् = शेषमयीम् , शय्याम् = शयनीयम् , धीरम् = योगनिद्रावलम्बनेन निष्पन्दम् , अध्यास्त = शयनमकरोत् । तथा यम् = विष्णुदेवम् स्वयम्भूः शब्दः = स्वयमेव भवतीति स्वयम्भूः अकृतकः, शब्दः = अपौरुषेयो वेदः, होता = हवनकर्त्ता यजमानः, हव्यम् = होमसाधनम् द्रव्यम् , हुतभुक् = हव्यवाहकोऽग्निः, इति प्राह = कथयामास । सः = तथात्वेन प्रसिद्धः विष्णुः, त्वम् = भवान् रामः, सा पद्मा च = विष्णोः भार्या लक्ष्मी च जनकतनया = जानकी । लक्ष्मीविष्णू एव साम्प्रतं लोककल्याणाय सीतारामरूपेणावतीर्णौ भुवीति भावः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥

मदाम्भसेति॥ वियति महेन्द्रदन्तिनः हिमरुचिकर्णचामरम्,मदाम्भसा कलङ्कयन् नभोनदीनलिनपरागधूसरः समीरणः ते रणरुजम् आधुनोतु इत्यन्वयः । वियति = आकाशे, (स्थितस्य), महेन्द्रदन्तिनः = इन्द्रगजस्य, हिमरुचिकर्णचामरम् = तुषारशोभिश्रवणमेव चामरम् , मदाम्भसा=मदजलेन, कलङ्कयन् = अन्तरा अन्तरा

(यजमान), हव्य (हवन द्रव्य) और (अग्नि) कहा । हे कमलनयन ! तुम वही विष्णु हो और यह जनकपुत्री भी वही लक्ष्मी है ॥ २१ ॥

(दूसरे गाते हैं)

आकाश में मदजल से इन्द्र के हाथी के तुषार की कान्ति के समान कानरूपी चामर

नभोनदीनलिनपरागधूसरः
समीरणो रणरुजमाधुनोतु ते ॥ २२ ॥

रामः—अश्रुतपूर्वोऽयं ग्रामरागः ।

(उभावाकाशं विलोकयतः)

रामः—लक्ष्मण ! पश्य पश्य प्रभानुलेपादपूर्वे इव द्यावापृथिव्यौ ।

शृङ्गाणि मेरोरिव सेतुशैला
वेलावनं कल्पवनोपमानम् ।
सैन्यं कपीनां कनकप्रभाणा-
माम्रेडितच्छायमभूदिदानीम् ॥ २३ ॥

श्यामीकुर्वन् , नभोनदीनलिनपरागधूसरः = नभोनदी = आकाशगंगा, तस्याः नलिनपरागैः = कमलरजोभिः, धूसरः = ईषत्पाण्डुः, समीरणः = पवनः, ते = भवतः रामस्य, रणरुजम् = समरखेदम् आधुनोतु = शमयतु । रुचिरावृत्तम् । रूपकाऽलङ्कारः ॥ २२ ॥

शृङ्गाणीति ॥ सेतुशैलाः मेरोः शृङ्गाणि इव वेलावनम् कल्पवनोपमानम् कनकप्रभाणाम् कपीनाम् सैन्यम् इदानीम् आम्रेडितच्छायम् अभूत् इत्यन्वयः । सेतुशैलाः = समुद्रे सेतुरूपेण विद्यमानाः पर्वताः, मेरोः = सुमेरुपर्वतस्य शृङ्गाणि इव = शिखराणि इव, स्वर्णमयाः प्रतिभान्ति इति शेषः । वेलावनम् = समुद्रतटवर्तिविपिनम्, कल्पवनोपमानम्, कल्पतरुविपिनवत् हैमवर्णम् (प्रतिभाति) कनकप्रभाणाम् = स्वर्णवर्णानाम् , कपीनाम् = वानराणाम् , सैन्यम् = बलम् , सेना इति यावत् ।

को (बीच बीच में) कृष्ण वर्ण का बनाता हुआ, आकाश-गंगा के कमल के परागों से धूसर (मटमैला) वायु तुम लोगों की रण-पीड़ा को दूर करे ॥ २२ ॥

राम—यह ग्राम-राग तो पहले नहीं सुना गया ?

(दोनों आकाश की ओर देखते हैं)

राम—लक्ष्मण ! देखो देखो, प्रकाश के सम्पर्क से अन्तरिक्ष अपूर्व लग रहा है ।

सेतु पर स्थित पर्वत, सुमेरु पर्वत की चोटियों के समान लग रहे हैं । तटवर्ती उद्यान कल्पवृक्ष की वाटिका के समान प्रतीत होता है । स्वभावतः सोने के समान रंगवाली वानरों की (सेना) इस समय दूनी शोभावाली हो गयी है ॥ २३ ॥

(नेपथ्ये)—नारदोऽहमागच्छामि देवशासनेन ।

(उभौ सविनयमवलोकयतः)

(प्रविश्य)

नारदः—जयतु कारणमानुषो रावणान्तकः ।

रामः—लक्ष्मण ! पश्यद्भिरप्यश्रद्धेयमिदमाश्चर्यम् ।

नारदः—किमतः परमाश्चर्यम्, यातव्याः स्वयं रावणस्य लङ्कां यदभियास्यन्ति देवाः शक्रादयः ।

रामः—आ अतः खलु प्रभाप्रवाहः । भगवत्प्रसादात् पूतमात्मानमपरमिव पश्यामि ।

इदानीम् = अधुना, आम्रेडितच्छायम् = द्विगुणितशोभम्, अभूत् । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ उपमाऽलङ्कारः ॥ २३ ॥

अथ नारदः स्वागमनन्तत्कारणञ्च विज्ञापयति—नारदोऽहमिति ॥ कारणमानुषः= जगद्रक्षणाद् हेतोः मानुषत्वं प्राप्तो विष्णुः ।

इदम् आश्चर्यम् = मुनिवरदर्शनात्मकं विस्मयम्, पश्यद्भिरपि = साक्षात्कुर्वद्भिरपि, अश्रद्धेयम् = अविश्वसनीयम् ।

आश्चर्यशब्दस्यार्थमन्यथाकुर्वाणो देवर्षिः रामं स्तौति—किमतः परमिति ॥ यातव्याः = कल्याणाय सर्वैरेव जनैः सेव्याः शक्रादयो देवाः = इन्द्रप्रभृतयोऽमराः लङ्कां स्वयमेव त्वामनुग्रहीतुमभियास्यन्तीति यत् अतः परं किमाश्चर्यमिति भावः ।

(नेपथ्य में) देवताओं के आदेश से मैं नारद आ रहा हूँ।

(दोनों विनयपूर्वक देखते हैं)

नारद—(प्रवेश करके) संसार की रक्षा के लिए मनुष्यरूप में अवतरित और रावण के विनाशक (नारायण) की जय हो ।

राम—आश्चर्य को देखते हुए भी इस पर विश्वास नहीं होता ।

नारद—इससे बढ़कर और आश्चर्य की क्या बात कि दूसरों के द्वारा कल्याण के लिए सेवा करने योग्य इन्द्र प्रभृति देवता स्वयं रावण की लङ्का में जायेंगे ।

राम—अच्छा, तो देवताओं के आगमन से ही यह प्रकाश की धारा है । भगवन् आप की कृपा से मैं अपने को विशुद्ध आत्मावाला समझता हूँ ।

नारदः—

देवस्त्रिविष्टपजुषां पतिरेष मेषो
मेधातिथेरशनिकेतुरपां च वर्षी ।
शाखासहस्रविषयीकृतसर्वतन्त्रो
यस्यापदानमृषिरक्षरमूर्तिराह ॥ २४ ॥

रामः—प्रणमामि भगवन्तम् ।

नारदः—पश्य

सकल्माषैः कण्ठैरनलकणगर्भैश्च नयनै-

अथ देवर्षिः प्रथमं देवराजं दर्शयति—देवस्त्रिविष्टपेति ॥ त्रिविष्टपजुषाम् पतिः मेधातिथेः मेषः अशनिकेतुः अपाम् वर्षी च एष देवः (अस्ति) शाखासहस्रविषयीकृतसर्वतन्त्रः अक्षरमूर्तिः ऋषिः यस्य अपदानम् आह इत्यन्वयः । त्रिविष्टपजुषाम् = स्वर्गवासिनाम् देवानाम् , पतिः = स्वामी शासको वा, मेधातिथेः मेषः = अजः, यज्ञाङ्गे मन्त्रे मेधातिथेर्मेष इति इन्द्रसम्बोधनं दृश्यते । अशनिकेतुः = अशनिः = वज्रम् , केतुः = ध्वजो यस्य, वज्रध्वज इत्यर्थः । अपाम् = जलानाम् , वर्षी = वर्षकः एष देवः = इन्द्रः (अस्ति) वृष्टिद्वारा सर्वप्राणिनां जीवनदाता इन्द्रः । शाखासहस्रविषयीकृतसर्वतन्त्रः = शाखासहस्रेण विषयीकृतं सर्वतन्त्रम् = अग्निहोत्रादिसर्वं कर्म येन स तथोक्तः, अक्षरमूर्तिः ऋषिः = मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः, यस्य = इन्द्रस्य, अपदानम्=वृत्रवधाद्यद्भुतकर्म, आह = प्रतिपादयति । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २४ ॥

अथ रुद्रान् दर्शयति—सकल्मापैरिति ॥ सकल्माषैः कण्ठैः अनलगर्भैः नयनैः च (उपलक्षिताः) वाह्वन्तरतरलहाराहिमणयः अमी रुद्राः (सन्ति) ये हिमांशोः

नारद—देवताओं के स्वामी यह इन्द्र हैं। ये यज्ञ के मन्त्रों में मेधातिथि के मेष के रूप में पुकारे जाते हैं। वज्र इनकी ध्वजा है, जल की वर्षा करने वाले हैं। अपनी समस्त शाखाओं से सभी विषयों को स्वाधीन करने वाला वेद जिस इन्द्र के अद्भुत कर्म का वर्णन करता है। (यह वही इन्द्र है)॥ २४॥

राम—भगवान् इन्द्रदेव को प्रणाम करता हूँ।

नारद—देखो—

नीले कंठों से अग्नि की चिनगारियों से युक्त नेत्रों से भुजाओं के मध्य में हार के

रमी रुद्रा बाह्वन्तरतरलहाराहिमणयः ।
हिमांशोरापाद्य प्रतिमुकुटमेकादश कलाः
कलानां शेषाणां भसितमिव चूर्णं दधति ये ॥२५॥

रामः—नमामि वर्णोत्तमानां देवानाम् ।

नारदः—अमी वसवः । इमावश्विनौ ।

रामः—नमोऽस्तु लोकहितपरायणेभ्यो देवेभ्यः ।

एकादशकलाः प्रतिमुकुटम् आपाद्य शेषाणाम् कलानाम् चूर्णम् इव भसितम् दधति इत्यन्वयः । सकलमाषैः = नीलैः, कण्ठैः = गलैः, अनलगर्भैः = अग्निगर्भैः, नयनैः च = लोचनैः च (उपलक्षिताः) बाह्वन्तरे = वक्षःस्थले, तरलाः = चञ्चलाः हारभूतानाम् अहीनाम् = सर्पाणाम् , मणयः = रत्नानि येषाम् तथोक्ताः, अमी = एते, रुद्राः = शिवाः (सन्ति) ये = रुद्राः, हिमांशोः = चन्द्रमसः, एकादशकलाः = षोडशकलानां मध्यतः एकादशकलाः, प्रतिमुकुटम् = प्रतिकिरीटम् , आपाद्य = अलङ्कृत्य, शेषाणाम् = अवशिष्टानाम् , कलानाम् = पञ्चानाम् कलानाम् , चूर्णम् इव = क्षोदः इव, भसितम् = भस्म, दधति = धारयन्ति । सुधांशोः षोडशकलानाम्मध्ये एकादशकला रुद्राणाम्मुकुटेषु न्यस्ताः, शेषाः पञ्चकलाः चूर्णीभूय तेषामङ्गेषु भस्मरूपेणानुलिप्ताः प्रतिभान्तीति भावः । रुद्रैर्धृतं भस्मपञ्चकलानाञ्चूर्णमिव प्रतिभातीत्युत्प्रेक्ष्यते । शिखरिणी वृत्तम् । रूपकोत्प्रेक्षयोः संसृष्टिः ॥ २५ ॥

सदृश चञ्चल सर्प के मणियों वाले ये रुद्र हैं । ये अपने प्रत्येक मुकुट में चन्द्रमा की ग्यारह कलाओं को लेकर शेष पांच कलाओं के चूर्ण को मानो भस्म के रूप में धारण करते हैं ॥ २५ ॥

विमर्श—एकादश रुद्र चन्द्रमा की सोलह कलाओं में ग्यारह कला को तो अपने अपने मुकुट में धारण करते हैं और शेष पांच कलाओं का चूर्ण बनाकर उसे अपने शरीर में भस्म के रूप में ग्रहण करते हैं । यहां पर कवि ने शेष पांच कलाओं की बहुत ही सुन्दर उत्प्रेक्षा की है ।

राम—देवजाति को प्रणाम करता हूँ ।

नारद—ये वसुदेवता हैं । ये दोनों अश्विनीकुमार हैं ।

राम—लोक-कल्याण में तत्पर देवताओं को नमस्कार है ।

नारदः—

आद्यं मनुं दशरथं चरमं च कृत्वा
तिष्ठन्ति भूमिपतयः पितरस्तवैते ।
ये भूतिमिन्द्रविषयां परिभूय दत्तं
पिण्डं त्वया प्रतिदिनं प्रतिपालयन्ति ॥२६॥

(उभौ साश्रुजलं प्रणमतः)

रामः—

पश्य लक्ष्मण ! नस्तातं स्वदृष्टिपरिरम्भिणम् ।
सत्यं संरक्षता येन त्यक्तोऽहमसुभिः समम् ॥ २७ ॥

अथ पितॄन् दर्शयति—आद्यमिति ॥ एते भूमिपतयः तव पितरः मनुम् आद्यम्, दशरथम् चरमम् कृत्वा तिष्ठन्ति, ये इन्द्रविषयाम् भूतिम् परिभूय, प्रतिदिनम् त्वया दत्तम्, पिण्डम् प्रतिपालयन्ति इत्यन्वयः । एते = अमी, भूमिपतयः = राजानः तव = भवतः, पितरः = पितृत्वं प्राप्ताः पूर्वजाः, मनुम् = एतन्नामकं राजानम्, आद्यम् = प्रथमम्, दशरथम् = तव पितरम् च चरमम् = अन्तिमम्, कृत्वा = विधाय, तिष्ठन्ति = यथाक्रमं विद्यन्ते । ये = भवतः पितरः, इन्द्रविषयाम् देवराज-सम्बन्धिनीम्, भूतिम् = समृद्धिम्, परिभूय = अनादृत्य, प्रतिदिनम् = अनुदिनम्, त्वया = भवता रामेण, दत्तम् = प्रदत्तम्, पिण्डम् = भागम्, प्रतिपा-लयन्ति, प्रतिपाल्य भुञ्जते । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २६ ॥

अथ रामः स्वपितरं दशरथं लक्ष्मणं दर्शयति—पश्य लक्ष्मण इति ॥ हे लक्ष्मण ! स्वदृष्टिपरिरम्भिणम् नः तातम् पश्य, सत्यम् संरक्षता येन असुभिः समम् अहम् त्यक्तः इत्यन्वयः । हे लक्ष्मण ! स्वदृष्टिपरिरम्भिणम् = आत्मनः दृष्टिभ्याम् आवयोः आश्लेषं कुर्वाणम्, नः = अस्माकम्, तातम् = पितरम्, "तातशब्दं प्रयुञ्जीत पूज्ये पितरि चात्मजे" इति नारदवचनम् । पश्य = अवलोकय, सत्यम् = सत्य-

---

नारद—मनु को प्रारंभ में और दशरथ को अन्त में रख कर ये तुम्हारे पूर्वपुरुष राजा विराजमान हैं जो इन्द्र के वैभव का तिरस्कार करके तुम्हारे द्वारा प्रतिदिन दिये गये पिण्ड की प्रतीक्षा करते हैं ॥ २६ ॥

(दोनों हर्षातिरेक से उत्पन्न अश्रुजल से युक्त होकर प्रणाम करते हैं)

राम—हे लक्ष्मण ! अपनी दृष्टि से आलिंगित करने वाले हम लोगों के तात को देखो, जिन्होंने सत्य की रक्षा करते हुए अपने प्राणों के साथ हमें त्यागा था ॥ २७ ॥

लक्ष्मणः—आर्य ! स्वप्न इव मे प्रतिभाति ।

रामः—भगवन् ! किमागमनकारणं देवानामृषीणां पितॄणां च ।

नारदः—भवतो देव्यास्सीतायाः पातिव्रत्यानुभावः ।

रामः—अस्याद्भुतदर्शनमेव नः प्रत्ययकारणमासीत् । तथापि मां सन्देहयति तस्या रूपशोभानिमित्तम् ।

नारदः—किं न जानीषे तस्या रूपशोभानिमित्तम् ।

रामः—भगवन् ! न जाने ।

नारदः—तस्या महर्षिपत्न्यास्तावदनसूयायाः वरप्रदानवशात् खलु ।

रामः—आः दण्डकेऽपि मम सन्देहपदमिदमासीत् न पृष्टं परमार्थतः ।

धर्मम्, संरक्षता = परिपालयता, येन = तातेन, असुभिः = स्वप्राणैः, समम् = सह, अहम् = रामः, त्यक्तः = विसर्जितः । माम् प्राणान् च परित्यज्य सत्यधर्मं रक्षितवानिति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् । सहोक्तिरलङ्कारः ॥ २७ ॥

पातिव्रत्यानुभावः = चारित्रप्रभावः । तथापि मामिति ॥ विरहदशायामपि सीतायाः रूपशोभानिमित्तज्ञानं प्रति व्याकुलं मे चेतः न तु तस्याः पातिव्रत्यमुद्दिश्य संदेह इति भावः । सन्देहपदम् = कथमेवमस्या रूपमिदं जातमिति जिज्ञासा । तव दर्शनपथे = त्वत् सविधे, तव दर्शनमार्गे इत्यर्थः ।

लक्ष्मण—आर्य ! मुझे तो स्वप्न सा लग रहा है ।

राम—भगवन् ! देवताओं, ऋषियों और पितरों के आने का क्या कारण है ?

नारद—आपकी धर्मपत्नी सीता देवी के पातिव्रत-धर्म का प्रभाव ।

राम—इसके विश्वास का कारण देवताओं का विलक्षण दर्शन ही था. फिर भी इस सीता के रूप-सौन्दर्य का कारण मुझे संदेह में डाल रहा है ।

नारद—क्या इसके रूप-सौन्दर्य के कारण को नहीं जानते हो ?

राम—भगवन् ! नहीं जानता हूँ ।

नारद—ऋषि की पत्नी अनसूया के वरदान से (इसका रूप-सौन्दर्य है)

राम—आह ! दण्डक वन में भी मुझे सन्देह हुआ था किन्तु मैंने यथार्थ बात पूछी नहीं थी ।

नारदः—तस्याश्शरीरगतं तव दर्शनपथे सर्वं मण्डनरूपं भविष्यति। तथा हि,

वसुधारजश्शयनकालसञ्चितं
स्तनमण्डले मलयजत्वमागतम्।
समपद्यताश्रयमहीरुहच्युतं
परिणामि पर्णमलकस्य भूषणम्॥ २८॥

रामः—कृतं देवशासनेन। ननु भवान् सत्यवादी समाधिचक्षुरेव प्रमाणम्।

लक्ष्मणः—(आत्मगतम्) अहो नु खलु मन्दैरस्माभिः वचनविस्फुलिङ्गैराहतापि महादेवी नापद्यत विकृतिम्।

अथ नारदोऽनसूयावरदानं विवृणोति—वसुधेति॥ शयनकालसञ्चितम्, वसुधारजः स्तनमण्डले मलयजत्वम् आगतम्, आश्रयमहीरुहच्युतम् परिणामि पर्णम् अलकस्य भूषणम् समपद्यत, तव दर्शनपथे इति योजनीयम् इत्यन्वयः। शयनकालसञ्चितम्=स्वप्नसमयैकत्रीभूतम्, वसुधारजः=धराधूलिः (तव दर्शनपथे) स्तनमण्डले=कुचप्रदेशे, मलयजत्वम्=चन्दनानुलेपनत्वम्, आगतम्=प्राप्तम्, आश्रयमहीरुहच्युतम्=सीतानिवासाश्रयभूतवृक्षपतितम्, परिणामि=पक्वम्, पर्णम्=पत्रम्, अलकस्य, केशस्य भूषणम्=मण्डनम्, समपद्यत=सम्पन्नं जातम्। अनसूयाप्रसादात् सीताशरीरसंसक्तं तुच्छमपि वस्तु तव नयनपथे भूषणमेव सञ्जातमिति भावः। मञ्जुभाषिणी वृत्तम्॥ २८॥

कृतं देवशासनेनेति॥ "सीता पतिव्रतैवेति रामं प्रति उच्यताम्" इति यद्देव-

---

नारद—उसके शरीर में संलग्न सभी चीजें तुम्हारी दृष्टि में आभूषण हो जायगीं। जैसे कि—शयन के समय एकत्रित पृथिवी की धूलि इसके स्तन का चन्दन बन गयी। जिस वृक्ष के नीचे सोयी थी उस वृक्ष के गिरे हुए पके पत्ते इसके केशों के अलंकार बन गये॥ २८॥

राम—देवताओं के आदेश सुनाने की आवश्यकता नहीं। सत्यवादी और दिव्य-दृष्टि वाले आप ही इसके प्रमाण हैं।

लक्ष्मण—(मन ही मन) अहो! मन्दबुद्धि वाले हम लोगों के वचनरूपी चिनगारियों से चोट खाकर भी महादेवी विकृत नहीं हुई।

रामः—भगवन् ! किमाज्ञापयन्ति देवाः महर्षयश्च ।

नारदः—सह रावणजीवितैस्समाप्तस्ते वनवासकालः । तस्मात् सार्धं देव्या नगर्ययोध्या प्रवेष्टव्येति ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

नारदः—तेन हि आनयनार्थं देव्या लक्ष्मणमाज्ञापय ।

रामः—(जनान्तिकम्) लक्ष्मण ! का नामात्र प्रतिपत्तिः ।

लक्ष्मणः—आर्य ! किमत्र परीक्षितव्यम् । अस्याश्शुद्धिसाक्षिणो देवाः पितरो महर्षयश्च ।

रामः—(प्रकाशम्) लक्ष्मण ! अनुतिष्ठ महर्षिशासनम् ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (निष्क्रान्तः)

शासनम् तत्र वक्तव्यम् प्रयोजनाभावात् इति भावः । समाधिचक्षुरिति ॥ समाधिशब्दो योगाभ्यासजनितदिव्यज्ञानवाचकः । दिव्यज्ञानमेव चक्षुः । सत्यवादिभवद्वचनादेव जानक्याः पातिव्रत्ये निश्चिते न तत्र देवसंवादरूपप्रमाणान्तरापेक्षेति भावः ।

अहो नु खल्विति ॥ मन्दैः = अज्ञैः, वचनविस्फुलिङ्गैः = अग्निकणस्वरूपैः वचोभिः, आहताऽपि = विक्षुभिताऽपि, विकृतिम् = विकारम् , नापद्यत = न प्राप्तवती, महति विकारहेतौ सत्यपि विकाराभावेन बहुमानातिशयो द्योत्यते अतएव 'महादेवी' इत्युक्तम् ।

का प्रतिपत्तिः = किं कर्त्तव्यम् ।

राम—भगवन् ! देवता, पितर और महर्षि क्या आज्ञा देते हैं ?

नारद—'रावण के जीवित रहने तक तुम्हारे वनवास की अवधि थी। अतएव सीता देवी के साथ अयोध्या नगरी में प्रवेश करो ।''

राम—अनुगृहीत हूँ ।

नारद—इसलिए सीता देवी को लाने के लिये लक्ष्मण को आदेश दो ।

राम—(एकान्त में लक्ष्मण से) लक्ष्मग यहाँ पर क्या कत्तर्व्य है ?

लक्ष्मण—आर्य ! यहाँ पर क्या परीक्षा करने योग्य है ? इसकी पवित्रता के साक्षी तो देवता, पितर और ऋषिजन हैं ?

राम—लक्ष्मण ! महर्षि के आदेश का पालन करो ।

लक्ष्मण—आर्य की जो आज्ञा । (जाते हैं)

नारदः—अहो नु खलु तवानुभावो विस्मयनीयः। पश्य—

कार्मुकेण शमिते तवाधुना रावणे त्रिभुवनैककण्टके।
वासवस्य रघुवीर! केवलं जातमम्बुधरमण्डनं धनुः ॥२९॥

रामः—ननु तस्य देवा मुनयश्च कारणम्।

(ततः प्रविशति सीता लक्ष्मणश्च)

सीता—हिलिआमि अहं एदेण वुत्तंतेण। ण हि ण हि तुस्सामि एव्व। तस्स पापस्स पत्थाणसमए केण वि हत्थप्परिसो लंकाअं वि पादप्परिसो संवुत्तो। तस्स पापस्स सरीरप्परिसपंसुलाणि गत्ताणि अग्गि वज्जिअ कहं परिसुद्धाणि भविस्सन्ति। (परिक्रम्यावलोक्य) जेदु अज्जउत्तो। (जिह्रेम्यहमनेन वृत्तान्तेन। न हि न हि तुष्याम्येव। तस्य पापस्य प्रस्थानसमये केनापि हस्तस्पर्शो लङ्कायामपि पादस्पर्शः संवृत्तः। तस्य पापस्य शरीर-

---

अथ देवर्षिः सीतानयनार्थं गते लक्ष्मणे कृतार्थः सन् प्रसंगाद् रामं प्रशंसति—कार्मुकेणेति॥ हे रघुवीर! तव कार्मुकेण त्रिभुवनैककण्टके रावणे शमिते (सति) अधुना वासवस्य धनुः केवलम् अम्बुधरमण्डनम् जातम् इत्यन्वयः। हे रघुवीर! = रघुश्रेष्ठ! तव = भवतः, कार्मुकेण = शरासनेन, त्रिभुवनैककण्टके = भुवनमण्डलस्य कण्टकवद् दुःखप्रदे रावणे, शमिते=शान्तं प्रापिते (सति) अधुना=सम्प्रति लक्ष्याभावात् वासवस्य = इन्द्रस्य, धनुः = कार्मुकम् केवलम् अम्बुधरमण्डनम् = जलधरभूषणम्, जातम्। त्रिभुवनपीडकस्य दशग्रीवस्य विनाशे जाते नास्ति साम्प्रतं वासवशरासनस्य प्रयोजनमिति भावः। रथोद्धता वृत्तम् ॥ २९ ॥

नारद—तुम्हारा प्रभाव तो आश्चर्यजनक है। देखो—हे रघुवीर! संसार के कण्टक रावण के आपके धनुप के द्वारा विनष्ट किये जानेपर इन्द्र का धनुप केवल बादलों का आभूषण मात्र बन गया है २९॥

राम—इसमें तो देवता और मुनिजन ही कारण हैं।

(उसके बाद सीता और लक्ष्मण प्रवेश करते हैं)

सीता—अग्निप्रवेश की घटना से मैं लज्जित हो रही हूँ। नहीं नहीं, मैं तो संतोष ही पा रही हूँ। प्रस्थान के समय उस पापी का किसी प्रकार हाथ से स्पर्श और लंका में चरण का

स्पर्शपांसुलानि गात्राणि अग्निं वर्जयित्वा कथं परिशुद्धानि भविष्यन्ति। जयत्वार्यपुत्रः।)

रामः—देवि! इत इतः।

शङ्कितासि मया देवि! धर्मशीलापि जानकि!।
विश्वास्यन्ते कथं शेषा योषितः प्रोषिताः प्रियैः ॥३०॥

अथ रामः सीतां दृष्ट्वा लज्जासंतापानन्दविवशो भूत्वा आह—देवि इति॥ शङ्किताऽसीति॥ हे देवि! जानकि! धर्मशीलाऽपि त्वम् मया शङ्किता असि, (अन्यथा) शेषाः प्रोषिताः योषितः प्रियैः कथम् विश्वास्यन्ते? इत्यन्वयः। हे देवि जानकि!=हे भगवति जनकतनये! धर्मशीलाऽपि=चारित्रशीलत्वेन स्वीकृताऽपि त्वम्, मया=रामेण, शङ्कितासि=बुद्धिपूर्वकं सन्देहपदमानीताऽसि। धर्मशीलाऽपि कथं शङ्किता इति जिज्ञासायामाह—विश्वास्यन्ते इति॥ यदि दोषशङ्कानिवृत्त्यर्थं परीक्षां विनैव त्वं परिगृह्यसे तर्हि चिरकालम् प्रोषिताः=पतिवियुक्ताः, शेषाः=त्वद्व्यतिरिक्ताः, योषितः=नार्यः, प्रियैः=स्वामिभिः, कथम्=केन प्रकारेण विश्वास्यन्ते=विश्वस्ताः भविष्यन्ति।

अथवा प्रियैः प्रोषिताः योषितः कथम् लोकैः विश्वास्यन्ते इत्यन्वयो विधेयः। विप्रयुक्ताः पतिव्रताः स्त्रियः परीक्ष्यैव भर्तृभिः परिग्राह्येति न्यायं लोके प्रतिष्ठापयितुं मया त्वत्परीक्षा कृता न तु त्वयि दोषाशंकयेति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३० ॥

स्पर्श हुआ था। उस पापी के शरीर से अपवित्र ये शरीर अग्नि को छोड़ कर किससे शुद्ध हो सकेगें? (घूमकर और देखकर) आर्यपुत्र की जय हो।

राम—देवि! इधर से इधर से।

हे देवि! हे जानकि! पातिव्रतधर्म का पालन करने वाली तुम्हारे ऊपर भी जब मैंने सन्देह किया है तो तुम्हारे अतिरिक्त अन्य स्त्रियाँ वहुत दिनों तक पति से वियुक्त रह कर किस प्रकार विश्वास का पात्र बनेगीं॥ ३० ॥

विमर्श—दोप की शंका का परिमार्जन किसी प्रकार से करना चाहिये। यदि विना परीक्षा किये ही चिरकाल तक राक्षस के घर में निवास करने वाली तुम्हें ग्रहण कर लूँ तो अन्य स्त्रियों पर लोग किस प्रकार विश्वास करेंगे। प्रिय से वियुक्त स्त्री की परीक्षा करके उसे ग्रहण करना चाहिये, इस न्याय की प्रतिष्ठा के लिये मैंने तेरी परीक्षा ली है। तुम्हारे चरित पर शंका करके नहीं। लोक-मर्यादा का पालन करना हम लोगों का परम कर्त्तव्य है।

सीता—अज्जउत्तो एव्व परमत्थदो जाणादि। (आर्यपुत्र एव परमार्थतो जानाति।)

रामः—देवि! स्निग्धस्यापि विप्रतिपत्तिः फलवती संवृत्ता यया देवा महर्षयश्च प्रत्यक्षीकृताः।

(ततः प्रविशति कृताभिषेको विभीषणः)

विभीषणः—जयतु देवः।

रामः—विभीषण! का वार्ता लङ्कायाम्।

विभीषणः—देवमाक्रोशति लङ्कावासी महाजनः।

रामः—किमिति किमिति। (पर्याकुलस्तिष्ठति)

विभीषणः—पयो मद्यस्पर्शं परिशङ्क्यते। नामिश्रं हिरण्यं हिरण्यरेतसमर्हति। कथं दीपिकां तमः कलङ्कयतीति।

विप्रतिपत्तिः = विरुद्धा प्रतिपत्तिः = भ्रान्तिज्ञानम्। आक्रोशति = निन्दति।

अथ विभीषण आक्रोशप्रकारं दर्शयति—पयो मद्यस्पर्शमिति॥ यथा कश्चित् निर्दोषमपि पयो मद्यस्पर्शं शङ्कते तथा सीतां प्रति महाजनस्य दोषशङ्काभावेऽपि स्वजनेन भर्त्रादिना दोषभ्रमेणापरिग्रहात् शङ्कोत्पादिता इति भावः।

देव्याः अग्निपरीक्षाऽपि निष्फलैवेत्याह—नामिश्रमिति॥ अमिश्रम् = शाणोल्लेखादिना शुद्धत्वेन निश्चितम्, हिरण्मयम्=सुवर्णम्, न हिरण्यरेतसम्=अग्निम्,

---

सीता—आर्यपुत्र ही यथार्थ रूप से जानते हैं।

राम—देवि! तुम में स्नेह रखने वाले मेरा भ्रमात्मक ज्ञान भी सफल हुआ है जिससे देवताओं और महर्षियों के दर्शन हुए। (उसके बाद राज्याभिषिक्त विभीषण प्रवेश करते हैं।)

विभीषण—देव की जय हो।

राम—विभीषण! लङ्का का क्या समाचार है?

विभीषण—लंका में रहने वाले श्रेष्ठजन आपकी निन्दा करते हैं।

राम—क्या क्या? (व्याकुल हो जाते हैं)

विभीषण—शुद्ध जल में मद्य की शंका की जाती है। शुद्ध सोने को अग्नि में तपाने की जरूरत नहीं होती। अंधकार अत्यन्त प्रकाशशील दीपक को दूषित नहीं करता। (अर्थात् सीता के प्रति आपकी दोष-शंका उचित नहीं है। उनकी अग्नि-परीक्षा व्यर्थ है। रावण के घर में निवास करना सीता जैसी पवित्र रमणी के लिए शंका का विषय नहीं)

रामः—इदानीमाश्वासितोऽस्मि जनवादश्रवणेन ।

विभीषणः—देव ! महादेवीं प्रत्यवनतानि शिरांसि नागरिकाणामद्यापि नोत्तिष्ठन्ति ।

रामः—जाने कियाननुभावो जानक्याः ।

विभीषणः—पश्य भगवतो वैश्रवणस्य,

पुष्पायुधप्रतिम ! पुष्पकनामधेया
सेयं विमानवसतिर्वसते ! गुणानाम् ।
यां स्वीकृतत्रिभुवनामपि सावकाशा-
माशामिवाहुरपरस्य परिग्रहाय ॥ ३१ ॥

अर्हति । शुद्धसुवर्णस्याग्निसंस्कारो यथा निरर्थकस्तथा शीलगुणादिभिर्निश्चितचारित्रायाः देव्याः अग्निप्रवेशोऽपि निष्फल एवेति भावः । रक्षोगृहनिवासजनितदोषशंकां परिहरति—कथं दीपिकामिति ॥ यथा तमः अत्युज्ज्वलां दीपिकां न कलङ्कयति प्रत्युत दूरमपसरति तथा रावणः स्वतः शुद्धां शीलसम्पन्नां सीतां दूषयितुमसमर्थः सन् स्वयमेव अपसृत इति पौरजनाः देवीं शङ्कमानं भवन्तमाक्रोशन्तीति भावः ।

विभीषणो रामं पुष्पकं दर्शयति—पश्येति ॥ वैश्रवणस्य = कुबेरस्य । पुष्पायुधप्रतिमेति ॥ हे पुष्पायुधप्रतिम ! हे गुणानाम् वसते ! (भगवतो वैश्रवणस्य) पुष्पकनामधेया विमानवसतिः इयम् (विद्यते) स्वीकृतत्रिभुवनाम् अपि याम् अपरस्य परिग्रहाय आशाम् इव सावकाशाम् आहुः इत्यन्वयः ।

हे पुष्पायुधप्रतिम = कामदेवोपम !, हे गुणानाम्=शीलार्जवादीनाम् , वसते= नित्यमाश्रयभूत, (भगवतः कुबेरस्य) पुष्पकनामधेया = पुष्पकसंज्ञया प्रसिद्धा विमानवसतिः = वायुयानम् , इयम् = परिदृश्यमाना (अस्ति) एनां भवान् पश्यतु इति पूरणीयम् । स्वीकृतत्रिभुवनाम् = अङ्गीकृतभुवनमण्डलाम् अपि

राम—इस समय लोक-निन्दा को सुनने से आश्वस्त हूँ ।

विभीषण—देव ! महादेवी के प्रति नागरिकों के झुके हुये मस्तक अभी भी नहीं उठ रहे हैं ।

राम—मैं जानकी के महान् प्रभाव को जानता हूँ ।

विभीषण—देखिये भगवान कुबेर का—

वह यह पुष्पक नाम का विमान है। हे कामदेव के समान सुन्दर ! हे गुणों के निधान ! त्रिभुवन तक विस्तृत भी जिसको दूसरे लोक के ग्रहण करने के लिये तृष्णा की भांति सावकाश कहा गया है ॥ ३१ ॥

रामः—प्रेषय भगवते लोकपालाय वैश्रवणाय।

नारदः—मा मा राक्षसचिरानुभवान्मलीमसमिदं विमानं देव्याः तवारोहणेन च पवित्रीकृत्य पश्चात्साकेतात् कैलासमुपनय।

रामः—उपपन्नमिदम्। लक्ष्मण! प्रथमं देवीमारोपय रथम्।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः।

सीता—हं। (हम्।)

रामः—(स्मितं कृत्वा) देवि!

यास्=विमानवसतिम्, अपरस्य=अन्यस्य त्रिभुवनस्य परिग्रहाय=स्वीकरणाय, आशाम् इव=तृष्णाम् इव, सावकाशाम्=अवस्थानाय अवकाशं दातुं पर्याप्ताम्, आहुः उक्तवन्तः। यथा आशा स्वीकृतमण्डलाऽपि अपरत्रिभुवनपरिग्रहगोचरा भवति तथा इयं विमानवसतिरपि अपरभुवनस्यावकाशदानाय पर्याप्ताऽस्ति। अतिमहानयं पुष्पकविमान इति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ उपमाऽलङ्कारः॥ ३१॥

हमिति विषादजनितो वाग्रूपोऽनुभावः।

विमर्श—जिस प्रकार तृष्णा नित्य बढ़ी ही रहती है। एक वस्तु को प्राप्त करलेने पर पुनः दूसरी वस्तु को प्राप्त करने की अभिलाषा हो जाती है। उसी प्रकार यह पुष्पक विमान अत्यन्त विस्तृत होकर अपने में त्रिभुवन को समेट कर भी पुनः किसी दूसरे लोक के लिये खाली ही है। पुष्पक विमान की विशालता का वर्णन किया गया है।

राम—इसे लोकरक्षक कुबेर के लिए भेज दो।

नारद—नहीं नहीं, राक्षस के यहाँ बहुत दिनों तक रहने के कारण अपवित्र इस विमान को आप अपने तथा सीता के आरोहण से पवित्र बनाकर तब अयोध्या से कैलाश भेज देना।

राम—यह उपयुक्त है। लक्ष्मण! पहले देवी को रथ पर चढ़ाओ।

लक्ष्मण—आर्य की जो आज्ञा।

सीता—हैं।

राम—(मुस्कुराकर) देवि! मैं सच्चा राम हूँ मायावी रावण नहीं। हे चण्डवदने!

अहं सत्यं रामः शशिमुखि ! न मायी दशमुखो
रथं भ्राता मे त्वां नयति न सूतो नृपसुते ! ।
कृतं वाचा भूयस्सरसिजपलाशच्छविमुषा
कराङ्गुल्या धत्से ननु सकिरणं मण्डनमिदम् ॥ ३२ ॥

सीता—एसो अञ्जली अच्चरीअरअणाणं । अण्णहा कहं दाणिं अज्जउत्तं रक्खसं अ परमत्थदो जाणामि । (एषोऽञ्जलिः आश्चर्यरत्नयोः । अन्यथा कथमिदानीमार्यपुत्रं राक्षसं च परमार्थतो जानामि ।)

अथ रथारोहणप्रसंगेन सहसा रावणकृतां वञ्चनां स्मृतवत्या आत्मनि मायारामभ्रमेण लक्ष्मणे च मायालक्ष्मणभ्रमेण समुत्पन्नं विषादमनुभावमुखेन संलक्ष्य तमपनेतुं रामः सस्मितमाह—अहमिति ॥ शशिमुखि ! अहम् सत्यं रामः (अस्मि) मायी दशमुखो न, नृपसुते ! मे भ्राता त्वाम् रथं नयति न सूतः, भूयः वाचा कृतम् , ननु सरसिजपलाशच्छविमुषा कराङ्गुल्या सकिरणम् इदम् मण्डनम् धत्से इत्यन्वयः । हे शशिमुखि ! हे चन्द्रवदने !, अहम्=तव पुरो वर्तमानः सत्यम्= यथार्थः, रामः=तव भर्ता दशरथसुतः, (अस्मि) मायी=छद्मवेषी, दशमुखः= रावणः, न=नास्मि, च=अपि, मे=मम, भ्राता=अनुजो लक्ष्मणः, त्वाम्=सीताम् , रथम्=स्यन्दनम् , नयति = आरोपयति, सूतः = रावणसारथिः न (त्वाम् रथं नयति) भूयः वाचा कृतम्=अधिककथनेन अलम् , प्रयोजनं नास्ति । ननु=यतः, (त्वम्) सरसिजपलाशच्छविमुषा=कमलदलशोभापहारिण्या, कराङ्गुल्या=हस्तशाखया, सकिरणम्=रश्मियुतम् , इदम् मण्डनम्=परिदृश्यमानं मदीयं मुद्रिकारूपं भूषणम् , धत्से=धारयसि । यतो हि अस्मद्विषये सत्यासत्यपरीक्षासाधनन्त्वत्स्वाधीनमेवातोऽस्मिन् विषये मया न किमपि वक्तव्यमिति भावः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ३२ ॥

तुम्हे मेरा भाई लक्ष्मण रथ पर चढाता है रावण का सारथी नहीं । हे राजकन्ये ! अधिक कहने से क्या ! कमलदल की शोभा चुरानेवाली अपनी अंगुली में तुम किरणसहित इस आभूषण को धारण करती हो । (अर्थात् ऐसे अंगूठी के द्वारा तुम सच्चे राम का पता लगा सकती हो) ॥ ३२ ॥

सीता—दोनों आश्चर्यरत्नों को यह अञ्जलि है । अन्यथा इस समय आर्यपुत्र और राक्षस को यथार्थ रूप से किस प्रकार जानती हूँ ।

लक्ष्मणः—आर्ये ! तव शासनाद्दण्डकेषु प्रस्थिते मयि,

संरक्षिता मम समाधिरिषुर्न दैवं
साक्षीति यत्कथितमत्र तथैव जातम् ।
सामान्यदर्शनजडेन मया यदुक्तं
त्वं तत्क्षमस्व शरणं चरणौ ममैतौ ॥३३॥

(प्रणमति)

अथ सीता आश्चर्यरत्नयोर्माहात्म्यं कथयति—एषोऽञ्जलिरिति ॥ अन्यथा = अनयोः रत्नयोः असंनिधाने ।

अथ सौमित्री रामेण परिगृहीतायां देव्यां कृतार्थो भूत्वा तस्या अलौकिकं महिमानमालोच्य ससम्मानमाह—आर्ये तव शासनादिति ॥ शासनात् = आदेशात्, दण्डकेषु प्रस्थिते मयि = दण्डकाख्यान् वनप्रदेशान् उद्दिश्य प्रस्थातुमुपक्रान्ते लक्ष्मणे । संरक्षितेति ॥ समाधिः मम संरक्षिता न इषुः, दैवम् साक्षी इति (त्वया) यत् कथितम् , अत्र तथैव जातम् , सामान्यदर्शनजडेन मया यत् उक्तम् तत् त्वम् क्षमस्व, एतौ (तव) चरणौ मम शरणम् इत्यन्वयः । "एकाकिनीं कथमहं भवतीं त्यजामि" इति मद्वचनं श्रुत्वा समाधिः = चित्तस्थैर्यम् मम=सीतायाः, संरक्षिता = संरक्षकः, न (तव) इषुः = बाणः, इति यत् कथितम् , अत्र = लङ्कायाम् , तथैव जातम् = यत एकाकिनी एव त्वम् लङ्कायां समाधिबलेन दुर्धर्षादपि रावणात् स्वात्मानं संरक्षितवती अतस्तव वचनं सत्यं सञ्जातम् । अपि च यत् त्वया दैवम् = भाग्यम् , देवसमूहो वा, साक्षी = द्रष्टा, सत्यासत्यप्रत्यक्षकर्तेति यावत् । इति कथितम् ,तदपि अत्र तथैव जातम्=यतो भगवान् पावकः, देवर्षिर्नारदः, इन्द्रादयो देवाः, पितरः, महर्षयश्च त्वत्समाधिमहिम्ना नीतास्त्वद्वृत्तान्तसाक्षित्वेनास्माभिः प्रत्यक्षीकृताः, अतस्तदपि सत्यमेव जातम् । सामान्यदर्शनजडेन = अन्यनारीसादृश्यबुद्ध्या त्वत्प्रभावमजानानेन, मया=लक्ष्मणेन, यदुक्तम् = अविवेकमदाक्षिण्यमि-

---

लक्ष्मण—आर्ये ! आपकी आज्ञा से दण्डकवन से मेरे प्रस्थान करने पर—

"मेरा आत्मवल ही हमारा रक्षक है तुम्हारा वाण नहीं। देवता ही मेरे साक्षी हैं" यह जो आपने कहा था, इस लंका में वे दोनों वातें सत्य हुइ ।

अन्य स्त्री की समता से मन्दवुद्धि मैंने जो कुछ कहा था उसे आप क्षमा करें । आपके दोनों चरण मेरी शरण हैं ॥ ३३ ॥

(प्रणाम करते हैं)

सीता—कुमार ! उट्ठेहि उट्ठेहि । को एत्थ दोसो । रक्खससीसप्परिसपंसुलाणि पादाणि दाणिं कुमारेण पक्खालिदाणि विअ परिसुद्धाणि होंति । (कुमार ! उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ । कोऽत्र दोषः । राक्षसशीर्षस्पर्शपांसुलौ पादौ कुमारेण इदानीं प्रक्षालिताविव परिशुद्धौ भवतः ।)

(नेपथ्ये)

देवयोरुभयोर्दृष्टं माहात्म्यमतिमानुषम् ।
यः स्वधैर्यं निराकार्षीन्निर्विकारा च यानले ॥ ३४ ॥

त्यादिवचस्त्वामुद्दिश्य यत् कथितम्, तदपि मिथ्यैव जातम् अतः त्वम्, तत् = तादृशं कटुवचःप्रयुक्तमपराधम्, क्षमस्व = क्षमाङ्कुरु । एतौ = इमौ, चरणौ = भवत्याः पादौ, मम = लक्ष्मणस्य, शरणम् = आश्रयणम् (स्ताम्) शरणागतोऽहन्त्वया क्षन्तव्य इति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३३ ॥

अथ सीता लक्ष्मणं सान्त्वयति—कुमार इति ॥ कोऽत्र दोषः = तदानीन्त्वद्वचनमनाद्रियमाणया मया महती दुरवस्था प्राप्तेति न कश्चित् तवापराध इति भावः ।

अथ "निर्दोषा देवी मया वृथा परित्यक्ता" इति राघवस्य सन्तापमपनेतुं काचिद् वागाकाशे प्रवृत्ता आह—देवयोरिति ॥ उभयोः देवयोः अतिमानुषम् माहात्म्यम् दृष्टम्, यः स्वधैर्यम् निराकार्षीत्, या च अनले निर्विकारा अभूत् इत्यन्वयः । उभयोः = एतयोः, देवयोः = देवश्च देवी च देवौ, तयोः सीतारामयोरिति यावत् । अतिमानुषम् = लोकोत्तरम्, माहात्म्यम् = महत्त्वम्, दृष्टम् = अवलोकितम्, यः = देवो रामः, स्वधैर्यम् = स्वचित्तस्थैर्यम्, निश्चयमिति यावत् । लोकापवाद-

---

सीता—कुमार ! उठो उठो । इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? राक्षस के शिर के स्पर्श से अपवित्र मेरे दोनों चरणों को कुमार ने मानो धोकर विशुद्ध कर दिया है ।

(नेपथ्य में) देव राम और देवी सीता के मनुष्य-दुर्लभ महत्त्व को देखा गया, जिसने अपने धैर्य को छोड़ दिया और जो अग्नि में भी विकृत नहीं हुई ॥ ३४ ॥

विमर्श—सीता को पवित्र मानते हुए भी लोकापवाद के भय से सीता की राम ने अग्नि-परीक्षा ली । साधारण मनुष्य इस तरह का कार्य नहीं कर सकता । सीता ने भी अपनी शुद्धता को प्रमाणित करने के लिए अग्नि में प्रवेश किया । यह कार्य भी साधारण नारी के वश के बाहर ही है । अतः दोनों का चरित सर्वथा लोकोत्तर है ।

नारदः—भद्रमुख ! भगवानग्निरेव तवाधुना साक्षित्वं प्रतिपन्नः ।

(आकाशे प्रध्वनन्ति शङ्खपटहाः । सर्वे सविस्मयमवलोकयन्ति)

नारदः—भद्रमुख ! स्वनिष्क्रमणेन देवाः तव निष्क्रमणं चोदयन्ति ।

रामः—एहि देवि ! वैदेहि ! ।

नमस्व देवि ! देवर्षिं देवशासनशंसिनम् ।
सोपवेदस्य वेदस्य यः प्रतिष्ठा स्वयंभुवः ॥ ३५ ॥

(हस्तमवलम्ब्य दर्शयति)

भयेन, निराकार्षीत् = उपेक्षितवान्, लोके नहि कश्चित् अपवादभयमात्रेण निर्दोषां प्रियतमामुपेक्षितुं समर्थ इति रामस्य प्रियतमोपेक्षा तस्य लोकोत्तरमाहात्म्ये प्रमाणम् । या च = सीता च, अनले = हुताशने, निर्विकारा = विकाररहिता, शुद्धाऽभूदिति तदपि तस्या लोकोत्तरमहत्त्वसूचकमिति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥३४॥

अथ रामो नारदवन्दनाय सीतां प्रेरयति—नमस्व देवि ! इति ॥ हे देवि ! देवशासनशंसिनम् देवर्षिम् नमस्व, यः स्वयंभुवः सोपवेदस्य वेदस्य प्रतिष्ठा (अस्ति) इत्यन्वयः । हे देवि ! देवशासनशंसिनम् = देवादेशवाचकम्, देवर्षिम् = नारदम्, नमस्व, नमस्कारं विधेहि यः = देवर्षिः, स्वयम्भुवः = ब्रह्मणः, सोपवेदस्य, आयुर्वेदाद्युपवेदसहितस्य, वेदस्य = श्रुतेः, प्रतिष्ठा = आश्रयः । ब्रह्मा प्रथमान्तेवासिनि अस्मिन् नारदे सर्वां विद्यां प्रतिष्ठापितवान् इति प्रसिद्धिः । अथवा स्वयंभुवः = नित्यवेदस्य इत्यर्थोऽपि ग्राह्यः । अनुष्टुब्वृत्तम् । यमकाऽलङ्कारः ॥ ३५ ॥

नारद—कल्याणमुख ! भगवान् अग्नि ही इस समय तुम्हारे साक्षी हो गये हैं ।

(आकाश में शङ्ख और नगारे वज उठते हैं)

नारद—भद्रमुख ! अपने प्रयाण के साथ ही देवगण तुम्हारे प्रयाण की प्रेरणा देते हैं ।

राम—देवि जानकि ! आओ ।

हे देवि ! देवताओं के आदेश की सूचना देने वाले देवर्षि नारद को प्रणाम करो, जो नारद ब्रह्मा के अंग सहित वेद के प्रतिष्ठा हैं। अथवा अंग-सहित नित्य वेद के संरक्षक हैं ॥ ३५ ॥ (ब्रह्मा ने सर्वप्रथम नारद को ही वेद का उपदेश दिया था ।)

(हाथ पकड़ कर दिखाते हैं)

सीता—दाणिं अज्जउत्तहत्थप्परिसं उवलम्भिअ पमाणं होइ अब्भुदङ्गुलीअअं। रक्खसमाआदो मोइदं अत्ताणमवगच्छामि। (इदानीमार्यपुत्रहस्तस्पर्शमुपलभ्य प्रमाणं भवत्यद्भुताङ्गुलीयकम्। राक्षसमायातो मोचितमात्मानमवगच्छामि।)

रामः—पूर्वं राक्षसीमायाविप्रलब्धस्य मे देव्याः प्रत्ययकारणमासीदाश्चर्यचूडामणिः।

नारदः—भद्रमुख! देवाननुगच्छामि। किं ते भूयः प्रियमुपहरामि।

रामः—सिद्धार्थोऽहं किमतः परमिच्छामि। तथाप्येतावदस्तु भरतवाक्यम्।

मन्त्रैरावर्ज्यमानं हविरमरपतेरस्तु कल्याणवृष्ट्यै

पूर्वं राक्षसी माया विप्रलब्धस्य इति ॥ पूर्वम् = दण्डकारण्ये, राक्षसीमायाविप्रलब्धस्य = शूर्पणखाकपटवञ्चितस्य, मम = रामस्य।

भद्रमुख इति ॥ भद्रम् = सुन्दरम् नित्यप्रसन्नं च मुखं यस्य स तथोक्तः। देवान् अनुगच्छामि = यन्नियोगादहमागतस्तान् देवान् प्रसाधितकार्यं निवेदयितुमनुसरामि। भूयः = अतः परम्। उपहरामि = उपकरोमि।

सिद्धार्थोऽहमिति ॥ भवदनुग्रहसम्पादिताद् रावणवधाज्जगदनुग्रहसम्पादनेन निःशंकतया जानकीपरिग्रहेण च साम्प्रतं लब्धमनोरथोऽहमिति भावः।

भरतवाक्यमिति ॥ अत उत्तरं परित्यक्तानुकार्यभावस्य नर्तकस्य वाक्यम् इत्यर्थः। एतावदस्तु = इदम् इदम् फलं भवतु। तानि तानि फलानि कामयमान आह—मन्त्रैरिति ॥ मन्त्रैः आवर्ज्यमानम् हविः अमरपतेः कल्याणवृष्ट्यै अस्तु, धन्वी

सीता—इस समय आर्यपुत्र के हाथ का स्पर्श प्राप्त कर आश्चर्यभूत यह अंगूठी प्रमाणित होती है। राक्षस की माया से अपने को मैं मुक्त समझती हूँ।

राम—पहले राक्षसी की माया से धोखा खाये मेरे पास देवी के विश्वास का कारण यह आश्चर्य-चूड़ामणि था।

नारद—भद्रमुख! मैं देवताओं का अनुगमन करता हूँ। तुम्हारा और दूसरा कौन प्रिय कार्य करूँ?

राम—मैं कृतार्थ हूँ। मुझे और क्या चाहिए? फिर भी यह भरतवाक्य हो। मन्त्रों से दीयमान हवि इन्द्र की कल्याणवृष्टि के लिये हो। धनुषधारी कामदेव, शीघ्र

धन्वी सङ्कल्पजन्मा सरभसमपथे सायकान् संहरेत ।
राजानो राजधर्मप्रणिहितमनसो मौलिभारं वहन्तां
प्रज्ञा यातु प्रसादं प्रतिदिनमवधूयान्तराबद्धमौनम् ॥ ३६ ॥

संकल्पजन्मा सरभसम् अपथे सायकान् संहरेत, राजधर्मप्रणिहितमनसः राजानः मौलिभारम् वहन्ताम्, प्रज्ञा अन्तराबद्धमौनम् अवधूय प्रसादं यातु, प्रतिदिनमित्यस्य सर्वत्रान्वयः । इत्यन्वयः । मन्त्रैः = द्रव्यदेवतासम्बन्धरूपकर्मप्रकाशनसमर्थैः वैदिकमन्त्रैः, आवर्ज्यमानम् = दीयमानम्, हविः = हवनद्रव्यम्, अमरपतेः = देवराजस्य, कल्याणवृष्ट्यै = शुभवर्षणाय, अस्तु = भवतु, यथा रघुनाथस्य लोकोत्तरं कर्म जगदभ्युदयाय सम्वृत्तम्, तथा मया कृतस्तत्प्रयोगोऽपि जगत्कल्याणाय भूयादिति नटस्याभिप्रायः । संकल्पजन्मा = कामदेवः, धन्वी = धनुर्धारी, (सन्) सरभसम् = शीघ्रम्, अपथे = परदारान्, परपुरुषान् चोद्दिश्य पुरुषेषु नारीषु च सायकान् = बाणान् संहरेत = मा प्रहरतु, यथा दशग्रीवः परदाराभिलाषात् समूलं विनष्टः, अतः परं तथा कश्चिन्मा भूदित्याशयः । राजधर्मप्रणिहितमनसः = राजधर्मे = प्रजापालनादिराजकर्मणि प्रणिहितम् = सुनिहितम्, मनः = चेतः येषाम् तथाविधा भूत्वा, राजानः = नृपतयः, मौलिभारम् = किरीटभारम्, वहन्ताम् = धारयन्ताम्, प्रज्ञा = यथार्थज्ञानम्, अन्तराबद्धमौनम् = अन्तः = स्वाश्रये आत्मनि, आबद्धम् = दृढनिबद्धम्, मौनम् = मोहालस्यादिकृतेन जाड्येन स्वाधिकृतकर्मानुष्ठानं प्रति तूष्णींभावम्, अवधूय = दूरीकृत्य, प्रसादम् = प्रसन्नताम्, उचितकर्मानुष्ठानजागरूकत्वम् यातु = लभताम् । अथवा अन्तः आबद्धमौनम् = राजसं तामसञ्च भावमवधूय प्रसादं यातु = सात्त्विकं भावमवाप्नोतु । स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ३६ ॥

कुमार्ग में अपने बाणों का प्रहार न करे । राजागण प्रजापालनादि राजधर्म में अपने मन को लगाकर मुकुट को धारण करें । ज्ञान अन्तःकरण में विद्यमान आलस्यादि मौन-भाव को त्याग कर प्रतिदिन प्रसन्नता को प्राप्त करे !

विमर्श—इन्द्र मेघ के स्वामी हैं । उनकी प्रसन्नता से वर्षा होती है । उनको प्रसन्न करने के लिए यज्ञविधान की आवश्यकता है । यज्ञसे वर्षा होती है । यथाकाल जलवर्षण से लोक में कल्याण होता है अतः विधिपूर्वक हवन होना चाहिये । कामदेव किसी भी अन्य पुरुष के प्रति अन्य नारी में और अन्य नारी के प्रति अन्य पुरुष में अपने पुष्पबाण का प्रयोग न करें । ऐसा करने से ही लोक में मर्यादा-भंग होता है । साथ ही लोकहृदय में

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति शक्तिभद्रविरचिते चूडामणिनाटके सप्तमोऽङ्कः ।

इत्याश्चर्यचूडामणिः समाप्तः ।

पर्णशाला शूर्पणखा मायासीता ततः परम् ।
जटायुषो वधोऽशोकवनिकाप्यङ्गुलीयकम् ॥
सप्तमोऽङ्कस्ततश्चेत्थं चूडामण्यङ्ककीर्तनम् ।

निष्क्रान्ताः सर्वे = सर्वे नटादयो रङ्गशालातो बहिर्गताः ।

इत्याश्चर्यचूडामणे 'रमा'टीकायां सप्तमोङ्कः ।

पितामहं दिवं प्राप्तं, काश्यपं लक्ष्मणात्मजम् ।
नमामि शिरसा पूज्यं माधवाख्यं महागुरुम् ॥
यस्यानुकम्पया प्राप्ता, विद्या ज्ञप्तिर्मतिर्मया ।
नौमि तं यमुनाकान्तं पितरं वेदपारगम् ॥
ख्यातो मुद्गलमण्डले सुविदिते विद्वद्भिरासेवितो,
ग्राम'स्तेतरि' संज्ञको विजयते यत्राऽपगा गण्डकी ।
तत्रेयं ललिता मया निवसता टीका 'रमा' पूरिता,
काव्यानन्दप्रकाशकस्य नितरामाश्चर्यचूडामणेः ॥

इति मुद्गलमण्डलान्तःपाति-'तेतरी'-ग्रामवासिना व्याकरण-वेदान्त-साहित्याचार्येण एम० ए० इत्युपाधिप्रसाधिना पंडितश्रीरमाकान्तझाशर्मणा विरचिता आश्चर्यचूडामणे 'रमा'भिधाना टीका समाप्ता ।

शुभमस्तु ।

अव्याहत ज्ञान-ज्योति का विकाश हो । जिस प्रकार श्रीराम अपने मनोरथ-सिद्धि में सफल हुए हैं उसी प्रकार हम नटोंके द्वारा अभिनीत प्रस्तुत नाटक भी सफल हो ।

(सभी चले जाते हैं)

आश्चर्यचूडामणि की 'मालती' नामक हिन्दी टीका समाप्त ।

श्लोकानुक्रमणिका

आश्चर्यचूडामणिस्थ-सुभाषितानि

१—गुणाः प्रमाणं न दिशां विभागः ।

२—न समाधिः स्त्रीषु लोकज्ञः ।

३—तपोभृतः क्व तपसां शत्रुः क्व सङ्कल्पजः ।

४—न सन्त्यगुणा गुणवताम् ।

५—अहो ! सन्तोषबाह्यानामधर्मैकरतं मनः ।

६—एष लोकस्वभावः बहुपुत्राणामेकस्मिन् ईषत्पक्षपातः ।

७—विदूरे सर्वं विस्मयनीयतया श्रूयते ।

८—अयमनिर्बन्धविषयो राशिः ।

९—हताः स्त्रियः पापे कर्मणि पण्डितानतिशेरते ।

१०—यस्य नैसर्गिकी शोभा तत्र संस्कारमर्हति ।

११—ननु स्त्रीणां विशेषानुपलभ्य संतोषिणी बुद्धिः ।

१२—यत्र श्रियस्तत्र ननु द्विषन्तः ।

१३—न बाहवः प्रमाणं पौरुषस्य ।

१४—परिवर्तते प्रकृतिरापदि हि ।

१५—समाधी रक्षति स्त्रीजनं न बाणः ।

१६—अहो ! बलवान् भर्तृपिण्डः ।

१७—अपि बन्धुषु नार्थिता वरम् ।

१८—प्रभवति कुतोऽनर्थः प्रज्ञा न चेदपथोन्मुखी ।

१९—अहो नु खलु कामो निर्मर्यादः ।

२०—अहो नु खलु बलवानसंस्तवः ।

२१—क्व मनोभवः क्व गुणसंग्रहणम् ।

२२—न कदापि शार्दूले मृगीणां विस्रम्भ आसीत् ।

२३—अवस्थया बलमबलोऽपि नीयते ।

२४—ननु साध्यापेक्षः साधनपरिग्रहः ।

२५—अहो ! बालाः परप्रत्ययाः ।

२६—सुजनः शंसति पथ्यमेव भर्तुः ।

२७—कर्म नूनमुचितं लोकोऽयमालम्बते ।

२८—सुखाभिलाषी स्त्रीभावः ।

२९—क्षीराहुतिं चिताग्निः कथमर्हति ।

३०—नामिश्रं हिरण्यं हिरण्यरेतसमर्हति ।

३१—कथं दीपिकां तमः कलङ्कयति ।